सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार: नई दिशाएं

अंक: 22 (वर्ष 2025)

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
भारत

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार : नई दिशाएं

अंक - 22, वर्ष - 2025

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

प्रधान संपादक : श्रीमती सैंडिगपुई छकछुआक

© 2025 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

मूल्य : ₹ 50/-

ISSN : 0973-7588

अस्वीकरण : प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मंडल या संपादक मण्डल का इन से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

वेबसाइट : www.nhrc.nic.in

ई-मेल : adol.nhrc@nic.in,
adp-nhrc@gov.in

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री वी. रामासुब्रमण्यन

सदस्य

न्यायमूर्ति (डॉ.) श्री बिद्युत रंजन षड़ंगि

श्रीमती विजया भारती सयानी

श्री प्रियंक कानूनगो

महासचिव

श्री भरत लाल

महानिदेशक (अन्वेषण)

श्री आनंद स्वरूप

संयुक्त सचिव

श्रीमती सैडिंगपुई छकछुआक

रजिस्ट्रार (विधि)

श्री जोगिन्दर सिंह

संयुक्त सचिव

श्री समीर कुमार

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार: नई दिशाएं

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अंक - 22 वर्ष - 2025

सलाहकार मंडल

श्रीमती विजया भारती सयानी
माननीय सदस्या, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

श्री भरत लाल महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**डॉ. राकेश बी. दुबे** वरिष्ठ सलाहकार, भारतीय गुणवत्ता परिषद
श्रीमती सैडिंगपुई छकछुआक संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**प्रो. सुधा सिंह** हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
ले. कर्नल वीरेन्द्र सिंह निदेशक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**प्रो. चंद्रदेव यादव** जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
श्रीमती अंजलि सकलानी सहायक निदेशक (हिंदी) राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**प्रो. शान्तेष कुमार सिंह,** जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
श्री सुनील कुमार त्रिवेदी विशेष कर्त्तव्य अधिकारी, राष्ट्रपति सचिवालय	**श्री आशीष उपेंद्र मेहता** परामर्श संपादक, गवर्नेंस नाउ

प्रधान संपादक

श्रीमती सैडिंगपुई छकछुआक

सह-संपादक

श्रीमती अंजलि सकलानी

संपादन सहयोग

सुश्री मीरा रानी

कम्प्यूटरीकरण

श्री नवीन कुमार

मानव अधिकार: नई दिशाएं
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अंक - 22 वर्ष - 2025

अनुक्रम

पुरोवाक्
न्यायमूर्ति श्री वी. रामासुब्रमण्यन
अध्यक्ष,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

दो शब्द
श्रीमती विजया भारती सयानी
माननीय सदस्या,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

आमुख
श्री भरत लाल
महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

संपादकीय
श्रीमती सैडिंगपुई छकछुआक
संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

खंड -I
आलेख

क्र. सं.	लेखक का नाम	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	न्यायमूर्ति श्री वी. रामासुब्रमण्यन	भारतीय लोकाचार और मूल्य एवं मानव अधिकार	3
2.	श्रीमती विजया भारती सयानी	महिला उत्पीड़न - आधी आबादी के लिए भय-मुक्त परिवेश (कार्यस्थल एवं सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की सुरक्षा के विशेष संदर्भ में)	7
3.	श्री भरत लाल	भारत में डिमेंशिया और वृद्ध जनों की देखभाल चुनौती का स्वरूप और आगे की राह	15
4.	श्री सुनील कुमार त्रिवेदी	मा कश्चित दुखभाग भवेत	23
5.	प्रो. सुधा सिंह	स्त्री श्रम- सम्मान समानता और पितृसत्ता	31
6.	प्रो. चंद्रदेव यादव	वायु प्रदूषण और पराली : समस्या और समाधान	41
7.	प्रो. शांतेश कुमार सिंह	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार: समकालीन चुनौतियां और नवाचार	47
8.	प्रो. राजीव कुमार सिंह	भारत में मैला प्रथा एवं मानव अधिकार : समस्या और चुनौतियां	59
9.	डॉ. राकेश बी. दूबे	ट्रांसजेंडर्स - रीति, नीति और चुनौतियां	67
10.	डॉ. लीना गोविंद गाहाने	डिजिटल युग में मानव अधिकारों का उल्लंघन	75
11.	श्री चंद्र मिश्रा	'जीने के अधिकार' की भिक्षा	81
12.	श्री बेजवाड़ा विल्सन	सफाई कर्मियों के मानव अधिकार	87
13.	डॉ अलका भारती एवं डॉ राकेश राणा	भूमंड़लीकरण के दौर में मानवाधिकार	91
14.	शेख सलाउद्दीन एवं श्री बासुदेव बर्मन, स्वतंत्र शोधकर्ता	अदृश्य जंजीरें: भारत में राइड-हेलिंग ड्राइवरों का एल्गोरिथ्मिक प्रबंधन और शोषण	99
15.	प्रो. राज कचरू	रैगिंग : मानवाधिकारों का हनन- न्यायिक मान्यता से प्रणालीगत रोकथाम तक	107
16.	डॉ शोभना राधाकृष्ण	• मानव अधिकार और नैतिकता: महात्मा गांधी का दृष्टिकोण	113
		• सरदार वल्लभभाई पटेल: एकता और समावेशन के शिल्पकार, मानवाधिकारों के प्रणेता	121

17.	श्री संदीप चचरा	पलायन, प्रवासन और मानव अधिकार: न्यायसंगत भविष्य का निर्माण	129
18	श्री अजय सिंह	मीडिया एवं मानव अधिकार	137
19	डॉ हेमलता आर.	खाद्य सुरक्षा: भारत में प्रगति और प्रमुख चुनौतियाँ	141
20	डॉ विद्या देवधर	महिलाओं द्वारा कानून निर्माण और महिला अधिकार	147
21	प्रो. (डॉ.) निमेश जी. देसाई'	मानसिक स्वास्थ्य सेवा की पहुंच: मानवतावाद से मानव अधिकार तक	157
22	डॉ. शुचिता चतुर्वेदी	बाल अधिकार: मानव अधिकारों का विशेष और विस्तृत रूप	163
23	श्रीमती अरूणा सारस्वत	पर्यावरण एवं महिला	169

खंड - II
कविता

1.	श्री अरविंद मिश्र	बचाकर रखो बंधुत्व	175
2.	श्री अरविंद मिश्र	मिट्टी से जुड़ना, जडों से जुड़ना है	177

खंड - III
कहानियां

1.	डॉ वन्दना मिश्रा	खिड़कियाँ	181
2.	डॉ वन्दना मिश्रा	रेवा	191

खंड - IV

अन्य लेखकों से प्राप्त आलेख			
1.	श्रीमती छाया शर्मा, आईपीएस	ट्रांसजेंडर, जेंडर परिवर्तन और मानवाधिकारों से संबंधित मुद्दे	197
2.	श्री हरिलाल चौहान, आईपीएस	भारतीय समाज में सेक्स एवं जेंडर की अवधारणा [कांसेप्ट ऑफ़ सेक्स एंड जेंडर इन इंडियन सोसाइटी]	205
3.	श्री विवेक किशोर, आईपीएस	पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में ड्रग्स आदि की समस्या	211
4.	डॉ. वीरेंद्र मिश्रा, आईपीएस	डिजिटल युग में मानव दुर्व्यापार से निपटना	217
5.	डॉ. धनंजय चोपड़ा	रैगिंग मुक्त कैम्पस ही 'सृजनात्मक हो सकता है	222

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमण्यन
अध्यक्ष

पुरोवाक्

भारत की सांस्कृतिक परम्परा एवं सभ्यता के कारण मानव अधिकारों का संरक्षण अभिन्न भाग होने से, मानव अधिकार के संरक्षण में भारत ने अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है। हमारी संस्कृति के मूल में मानव अधिकारों की अवधारणा है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तथा देश की निष्पक्ष अदालतें इन अधिकारों और मूल्यों की रक्षा करती हैं।

भारतीय लोकाचार विभिन्न विश्वासों, सिद्धांतों, मूल्यों और प्रथाओं का एक समूह है जो भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान और विरासत को दर्शाता है। इसमें सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक आयाम शामिल हैं, जो वेदों, उपनिषदों और भगवद् गीता जैसे ग्रंथों से प्रभावित हैं। भारतीय लोकाचार का उद्देश्य नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्राप्त करना है, जिसमें "वसुधैव कुटुंबकम" (विश्व एक परिवार है) जैसी अवधारणाएँ शामिल हैं, और यह प्रबंधन, व्यक्तिगत चरित्र निर्माण और सामाजिक कार्यों में मानवीय और नैतिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सतत कार्यरत है। आयोग ने हाल ही में कई परामर्शियां जारी की, जिनमें बच्चों के प्रति इंटरनेट पर होने वाले यौन अपराधों को रोकना, ट्रांसजेंडर समुदाय, बंधुआ मजदूरों, ट्रक ड्राईवरों के हितार्थ, चिकित्सालयों के सुधार, आंखों का अंधापन रोकने हेतु, जेल में कैदियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्यों को रोकने तथा सीवर एवं सेप्टिक टैंक की यांत्रिक सफाई के संबंध में दिशा-निर्देश शामिल हैं। पर्यावरण क्षरण कम करने की दिशा में भी आयोग निरंतर प्रयासरत है।

आयोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन के साथ-साथ देशभर में विभिन्न संस्थानों के सहयोग से कई कार्यक्रम जैसे राष्ट्रीय सेमिनारों आदि एवं विभिन्न मानव अधिकारों के प्रकाशनों के माध्यम से मानव अधिकारों के संबंध में समाज में जागरूकता फैलाने हेतु निरंतर प्रयत्नशील है। हाल ही में आयोग ने वृद्धावस्था, ट्रांसजेंडर पर सम्मेलन साथ ही विदेश मंत्रालय के सहयोग से क्षमता निर्माण कार्यक्रम आयोजित किए हैं।

मानव अधिकारों के प्रति रूचि रखने वाले बुद्धिजीवियों, लेखकों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े महानुभावों ने हमें जो रचनात्मक सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम उनका हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। आयोग की 'मानव अधिकार: नई दिशाएं' का नवीन अंक भी मानवीय गरिमा के संवर्धन का एक प्रयास है। मुझे विश्वास है कि यह अंक पाठकों के लिए रोचक और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा।

[न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमण्यन]

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

विजया भारती सयानी
सदस्या

दो शब्द

विश्व में प्रकृति की रची सभी चीजें सहअस्तित्व में रहें, सबकी गरिमा बनी रहे, यह जिम्मेदारी मानव की है। इसके साथ ही मानव अधिकारों के संरक्षण की जिम्मेदारी भी हम मनुष्यों पर ही है। बिना किसी भेदभाव के इस दुनिया के हर इंसान को सम्मान के साथ जीने का अवसर मिले इसको ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा को अंगीकार किया। मनुष्य होने के नाते जो अधिकार मानव को सहज उपलब्ध हैं, वे मानव अधिकार हैं। किसी भी मानव के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए मानव अधिकार आवश्यक हैं।

हालांकि भारतीय परंपरा और संस्कृति तो सनातनकाल से मानव कल्याण की सीख देती रही है। यही कारण है कि इस धरती पर भारत हमेशा एक आदर्श देश के रूप में देखा जाता रहा है। हमारी शिक्षाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आत्मसात किया गया है। अब मानव अधिकारों के लिए पूरे विश्व में जागरुकता फैल रही है। 'मानव अधिकार: नई दिशाएं' के नवीन अंक को भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं मानव अधिकारों के महत्व को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

इस अंक को तैयार करते हुए एक बात की पुनः पुष्टि हुई कि मानव अधिकारों के साथ ही हम भावी मानव समाज का स्वप्न देख सकते हैं, जहां मनुष्य अपने मानवत्व की निरन्तर सिद्धि करता रह सके। जल संरक्षण और जल के अधिकार, छोटे कामगारों के अधिकार किस तरह संरक्षित किए जा सकते हैं, ऐसे तमाम पहलुओं को इस अंक में समेटा गया है। साथ ही मानव अधिकार से जुड़ी कवितायें एवं कहानियों को भी प्रस्तुत किया गया है। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों का इंतजार रहेगा ताकि आगामी अंक हम आपके समक्ष और बेहतर रूप में प्रस्तुत कर सकें।

[विजया भारती सयानी]

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

भरत लाल
महासचिव

आमुख

भारतीय संस्कृति में सनातन काल से ही अहिंसा, शांति और सद्भाव का सर्वोच्च स्थान रहा है। हमारे यहां न केवल मनुष्य अपितु समस्त प्राणियों के प्रति करुणा एवं दया का भाव रहा है। वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों को वैधानिक पहचान बहुत बाद में मिली है जबकि हमारे शास्त्र (जैसे कि वेद, पुराण, गीता आदि) पुरातन काल से ही मानव अधिकारों के पैरोकार रहे हैं। हमारी संस्कृति सर्वे भवन्तु सुखिन: की भावना से ओत-प्रोत है जो मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की आधारशिला है तथा हमारा देश आज भी इसी परम्परा के पथ पर अग्रसर है।

भारत में 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना हुई। इन तीन दशकों में आयोग ने यह लगातार प्रयास किया कि भारत में लोगों को संविधान प्रदत्त अधिकारों के उपभोग की पूरी आजादी मिले, साथ ही उनके मानव अधिकारों की भी रक्षा हो। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अपनी स्थापना के साथ ही देश में मानव अधिकारों के प्रति जागरुकता के प्रसार का कार्य भी किया। इस कड़ी में मानव अधिकारों से जुड़े ज्वलंत मुद्दों पर आयोग हर वर्ष 'मानव अधिकार : नई दिशाएं' नाम की पत्रिका भी प्रकाशित करता है।

इस वर्ष यह पत्रिका भारतीय लोकाचार एवं मानव अधिकारों पर मुख्य रूप से केन्द्रित है। साथ ही मानव अधिकारों और भाषा के परस्पर संबंधों वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की समकालीन चुनौतियां एवं नवाचार पर भी सारगर्भित आलेख हैं। इसके अतिरिक्त ट्रांसजेंडर के मुद्दे, डिजिटल युग में मानव अधिकार जैसे विषयों पर इस बार की पत्रिका में प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा कविताएं एवं कहानियां भी पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं। आशा है मानव अधिकार आयोग का यह प्रयास आपके लिए लाभदायक होगा।

[भरत लाल]

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110 023 भारत

सैंडिगपुई छकछुआक
संयुक्त सचिव

संपादकीय

मानव अधिकार मानव के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक हैं। इन अधिकारों के बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। हर लोककल्याणाकारी सरकार का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास है।

'मानव अधिकार: नई दिशाएं' का अंक हर बार मानव अधिकार के नए नए पहलुओं के साथ सामने आता रहा है। इस बार इसका विषय है: 'भारतीय लोकाचार एवं मानव अधिकार'। मानव अधिकार के उल्लंघन के अनेक पहलुओं जैसे भारतीय संस्कृति में मानव अधिकार, महिलाओं के लिए भयमुक्त वातावरण, वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकार, ट्रांसजेंडर के मुद्दे, डिजिटल युग में मानव अधिकारों का उल्लंघन आदि को इस अंक में शामिल किया गया है। इसके व्याप्त मानव अधिकार के अन्य सूक्ष्म पहलुओं पर भी पर्याप्त रोशनी डाली गयी है।

हम मानते हैं कि मानव अधिकारों के बूते ही हम वस्तुतः एक ऐसे भावी मानव समाज का स्वप्न देख सकते हैं, जिसमें मनुष्य अपने मानवत्व की निरन्तर सिद्धि करता रह सके। समाज मे समस्त बाधाओं के बावजूद इस चुनौतीपूर्ण समय में भारत ने मानव अधिकारों की विभिन्न कसौटियों पर खरा उतरकर मानवीय गरिमा के संरक्षण व संवर्धन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत है।

हिंदी में मानव अधिकार के मुद्दे पर निकलने वाली यह एक मात्र ऐसी पत्रिका है जो मानव अधिकार विषयों पर अनुसंधान एवं चिंतनपरक सामग्री मुहैया कराती है। यह अंक भी इन विशिष्टताओं से लैस है। हाल के वर्षों में इसके अंक देश दुनिया में होने वाले

मानव अधिकार उल्लंघन पर चिंतन विवेचन एवं उसके अनेक कारकों की पहचान एवं विश्लेषण के लिए जाने जाते रहे हैं इस अंक में कुछ कहानियां एवं कविताएं भी दी गयी हैं जो मानव जीवन की गतिविधियों में गहराई में जाकर जीवन के कुछ अनछुए प्रसंगों के साथ निरंतर गतिशील प्रतीत होती हैं।

आशा है पिछले अंकों की तरह इस अंक का भी पाठक स्वागत करेंगे तथा इसकी सामग्री शोध संदर्भ के रूप में ग्रहण की जाएगी।

[सैंडिगपुई छकछुआक]

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

खंड-I

आलेख

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

भारतीय लोकाचार, मूल्य और मानव अधिकार

लेखक: न्यायमूर्ति श्री वी. रामासुब्रमण्यन*
सहलेखन: स्वर्णा सिंह**

जब सूर्य की पहली किरणें वाराणसी में गंगा को स्पर्श करती हैं, तो वह केवल एक नदी को नहीं बल्कि भारत की आध्यात्मिक कल्पना के जीवंत प्रतीक को उजागर करती हैं जहाँ आध्यात्मिकता, सामाजिकता और नैतिकता की धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती हैं। यही करुणा और चेतना की निरंतरता भारतीय जीवन-दर्शन का सार है। यह वह जीवन-दर्शन है जो प्रत्येक जीव में दिव्यता देखता है और यह सिखाता है कि "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् समस्त विश्व एक परिवार है। सहस्राब्दियों से भारतीय चिंतन ने व्यक्ति की गरिमा, शक्तिशाली की निर्बल के प्रति जिम्मेदारी, और अधिकारों तथा कर्तव्यों के संतुलन पर बल दिया है। ये मूल्य अतीत की विरासत मात्र नहीं हैं, बल्कि आधुनिक मानवाधिकारों की आधारशिला और हमारे संविधान की जीवंत आत्मा हैं।

जब भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की, तब संविधान निर्माताओं ने इन्हीं सभ्यतागत आदर्शों से प्रेरणा लेकर अधिकारों के एक सुसंगठित ढाँचे का निर्माण किया। संविधान की प्रस्तावना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, आस्था और उपासना की स्वतंत्रता; समानता और अवसर की गारंटी देते हुए व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करती है। ये केवल शब्द नहीं हैं ये भारतीय लोकतंत्र की नैतिक भाषा हैं। संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकार अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध), अनुच्छेद 19 (विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) तथा अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण) भारतीय जीवनदर्शन में निहित करुणा, न्याय और समानता को विधिक रूप देते हैं। साथ ही, राज्य के नीति निर्देशक तत्व और अनुच्छेद 51A में वर्णित

*अध्यक्ष, (एन.एच.आर.सी.),
**पूर्व कनिष्ठ अनुसंधान सलाहकार

मूल कर्तव्य नागरिकों को यह स्मरण कराते हैं कि अधिकारों का अस्तित्व तभी सार्थक है जब वे उत्तरदायित्व और नैतिक कर्तव्य से संतुलित हों।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर संविधान की व्याख्या करते हुए भारतीय नैतिक विरासत को नए युग के संदर्भ में पुनर्जीवित किया है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) में न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए कहा कि "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए इस प्रकार जीवन के अधिकार को गरिमा और न्यायपूर्ण प्रक्रिया से जोड़ा गया। ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन (1985) में यह घोषित किया गया कि आजीविका का अधिकार जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग है, जिससे शहरी गरीबों और बेघर नागरिकों को संवैधानिक संरक्षण मिला। इसके बाद विषाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) में कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न की रोकथाम हेतु दिशा-निर्देश जारी कर न्यायालय ने महिलाओं की गरिमा को संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 के मूल भाव से जोड़ा।

जैसे-जैसे समाज विकसित हुआ, न्यायपालिका ने भी इन संवैधानिक मूल्यों को नई परिस्थितियों में लागू किया। राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) बनाम भारत संघ (2014) के ऐतिहासिक निर्णय में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को स्व-परिभाषा का अधिकार दिया गया और यह कहा गया कि लैंगिक पहचान व्यक्ति की गरिमा और स्वायत्तता का अभिन्न हिस्सा है। न्यायमूर्ति के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) में निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया गया, जिससे डिजिटल युग में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ। वहीं नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (2018) में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को निरस्त कर समानता और गरिमा के सिद्धांत को सभी नागरिकों तक विस्तारित किया गया, चाहे उनकी यौन पहचान कुछ भी हो।

ये सभी निर्णय इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भारत में मानव अधिकार केवल अंतरराष्ट्रीय मानकों से ग्रहण नहीं किए गए हैं, बल्कि वे हमारी अपनी सभ्यतागत चेतना से उपजे हैं। भारतीय न्यायशास्त्र ने "धर्म" अर्थात् न्याय, करुणा और उत्तरदायित्व को आधुनिक अधिकारों की भाषा में रूपांतरित किया है।

भारतीय दृष्टिकोण यह भी मानता है कि अधिकार प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि परस्पर सम्बद्ध हैं एक व्यक्ति की गरिमा सभी की गरिमा से जुड़ी है। इसीलिए भारतीय संविधान राज्य और नागरिक दोनों पर समान दायित्व रखता है राज्य को न्यायपूर्ण कानून, समान नीतियाँ और मानवतावादी शासन देना चाहिए, जबकि नागरिकों को सहिष्णुता, सहानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व का पालन करना चाहिए। अनुच्छेद 51A के मूल कर्तव्यों में यही संतुलन दिखाई देता है, जो प्रत्येक भारतीय से राष्ट्र की

एकता बनाए रखने, सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करने और सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता के लिए प्रयास करने का आग्रह करता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, भारत का सभ्यतागत दृष्टिकोण मानव अधिकार दर्शन को एक अनूठा योगदान देता है। जहाँ 1948 की सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा (UDHR) व्यक्ति के अधिकारों पर केंद्रित है, वहीं भारत का दृष्टिकोण व्यक्तिगत अधिकारों को सामूहिक कर्तव्य से जोड़ता है। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय अर्थात् सबका कल्याण यह सिद्ध करता है कि कोई भी विकास तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक वह समाज के सबसे कमजोर वर्ग को साथ न ले। गांधीजी का “अहिंसा” का सिद्धांत केवल हिंसा से परहेज़ नहीं बल्कि दूसरे की मानवता की स्वीकृति है वही सिद्धांत आज के वैश्विक न्याय, शांति और सामंजस्य की नीतियों की आत्मा है।

नैतिक कर्तव्य और विधिक अधिकार का यह समन्वय भारतीय लोकतंत्र की दृढ़ता का आधार है। भाषाई, धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद भारत इस सिद्धांत पर कायम है कि प्रत्येक जीवन पवित्र है और हर आवाज़ का सम्मान होना चाहिए। भारत में मानव अधिकार कोई बाहरी विचार नहीं बल्कि हमारी सभ्यता की उस अंतर्निहित आस्था का विस्तार हैं, जिसमें व्यक्ति और समाज एक साझा नैतिक व्यवस्था में बंधे हैं।

आज जब भारत तकनीकी परिवर्तन, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक असमानता और वैश्विक प्रवासन जैसी नई चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब यह नैतिक नींव पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो उठी है। 21वीं सदी में मानव अधिकारों की रक्षा केवल नए कानूनों से नहीं, बल्कि एक नई नैतिक कल्पना से संभव है। भारतीय लोकाचार हमें यही दृष्टि प्रदान करता है शासन को सेवा के रूप में देखने की, स्वतंत्रता को उत्तरदायित्व के साथ जोड़ने की, और विविधता को शक्ति के रूप में अपनाने की।

अंततः भारतीय लोकाचार और मानव अधिकारों की कहानी निरंतरता की कहानी है एक ऐसी सभ्यतागत संवाद यात्रा, जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच पुल का कार्य करती है। अशोक के शिलालेखों से लेकर संविधान तक, भारत का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि अधिकार राज्य द्वारा प्रदत्त नहीं होते, बल्कि वे स्वयं जीवन की पवित्रता से प्रवाहित होते हैं। इसलिए मानव अधिकारों की रक्षा केवल कानूनी दायित्व नहीं, बल्कि एक नैतिक कर्तव्य है वही सनातन सत्य जिसने भारत को सदियों से मार्गदर्शन दिया है: “सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः” सब सुखी हों, सब निरोग हों।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

महिला उत्पीड़न : आधी आबादी के लिये भययुक्त परिवेश

विजया भारती सयानी*

महिला समाज का आधा हिस्सा हैं, और उनका योगदान केवल परिवार तक सीमित नहीं है। वे शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति, अर्थव्यवस्था और विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ रही हैं। इसके बावजूद आज भी महिलाओं को अपने जीवन में अनेक प्रकार की हिंसा और भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, कार्यस्थलों पर भेदभाव, दहेज प्रथा और मानव तस्करी जैसी समस्याएं महिला सुरक्षा और सम्मान के लिए बड़ी चुनौती हैं। महिला उत्पीड़न केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। भयमुक्त वातावरण केवल महिलाओं के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे समाज के स्वास्थ्य और प्रगति के लिए अनिवार्य है। महिला सुरक्षित होगी तभी समाज और राष्ट्र सुरक्षित व समृद्ध होंगे।

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्व भारतीय संस्कृति में शक्ति की आराधना प्रमुख मानी जाती है। महिला को शक्ति स्वरूपिणी कहा गया है। प्रकृति में भी अनेक शक्तियों को मातृ रूप में ही देखा गया है। उदाहरण के लिए - भू-माता, गंगा-माता, गो-माता आदि के रूप में संबोधित किया जाता है। केवल इतना ही नहीं, भारतीय परंपरा में "मातृदेवो भव" कहकर माँ को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

स्त्रियों में विद्यमान सात सद्गुणों का भगवत गीता भी उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार, प्रकृति को भी स्त्री-पुरुष स्वरूप में वर्णित किया गया है। यह सभी उदाहरण इस

*सदस्या- राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि भारतीय संस्कृति में स्त्री को कितना उच्च स्थान और सम्मान प्राप्त है। नारी केवल परिवार की धुरी नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा है।

ऐतिहासिक दृष्टि:

समाज और विश्व में हुए अनेक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप स्त्रियों के प्रति देखने का दृष्टिकोण भी बदल गया है। लगभग आठ सौ वर्षों तक विदेशी शासन के दमन के कारण हमारे देश में भी स्त्रियों की स्थिति प्रभावित हुई। परंतु इसके बाद भारतीय महिलाओं ने प्रशासनिक अधिकारियों, वीरांगनाओं, न्यायमूर्तियों, साहित्यकारों, कला-साधिकाओं और विभिन्न व्यवसायों की आधारशिला के रूप में अपनी पहचान स्थापित की।

भारतीय नारी का जीवन अनेक उतार-चढ़ावों से गुज़रा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत इस देश में महिलाओं के पूर्व गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए न केवल उन्हें संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए, बल्कि उनकी प्रगति और सुरक्षा के लिए अनेक क़ानून भी बनाए गए।

भारतीय संविधान महिलाओं को समान अधिकार और सुरक्षा प्रदान करने का माध्यम

भारतीय संविधान महिलाओं को समान अधिकार और सुरक्षा प्रदान करने का एक सशक्त माध्यम है। विशेष रूप से अनुच्छेद 14, 15, 21 और 23 महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान और अवसर सुनिश्चित करते हैं।

अनुच्छेद 14 - समानता का अधिकार

अनुच्छेद 14 प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता का अधिकार देता है। इसका अर्थ है कि महिलाएँ और पुरुष समान अधिकार रखते हैं। यह महिलाओं को भेदभाव और असमानता से सुरक्षा प्रदान करता है।
उदाहरण के लिए:

- रोजगार में लिंग के आधार पर भेदभाव न होना
- समान वेतन का प्रावधान
- सरकारी नौकरी और अवसरों में महिलाओं के लिए समान अधिकार

अनुच्छेद 15 - भेदभाव निषेध और विशेष प्रावधान अनुच्छेद 15(3) विशेष रूप से महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों की अनुमति देता है। इसका उपयोग महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार और अन्य अवसरों में आरक्षण या लाभ देने के लिए किया जा सकता है।

उदाहरण:

- सरकारी नौकरियों में महिलाओं के लिए आरक्षण
- शिक्षा संस्थानों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाओं के लिए सीटें
- विशेष प्रशिक्षण योजनाएँ

अनुच्छेद 21 - जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार
अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने, स्वतंत्र निर्णय लेने और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अनुभव करने का अधिकार देता है। महिलाओं के लिए इसका अर्थ है:

- सुरक्षित वातावरण में बाहर आना, पढ़ना और काम करना

अनुच्छेद 23 - मानव व्यापार और दासता निषेध अनुच्छेद 23 मानव व्यापार, दासता और जबरन श्रम निषेध करता है। महिलाओं के लिए यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है:

- अनिच्छित संबंधों में काम करने से सुरक्षा
- व्यावसायिक, फैक्ट्री या अन्य क्षेत्रों में शोषण कम करना
- यौन उत्पीड़न और तस्करी से सुरक्षा
- विशेष प्रावधान और अवसर
- सरकारी नौकरियों में महिलाओं के लिए आरक्षण
- महिलाओं की शिक्षा, प्रशिक्षण और आर्थिक सहायता के लिए योजनाएं
- महिला उद्यमिता के लिए ऋण और सब्सिडी, हिंसा और सामाजिक उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए

विशेष कानून

अनुच्छेद 14, 15, 21 और 23 महिलाओं को समानता, सुरक्षा और विशेष अवसर प्रदान करते हुए समाज में उनकी सशक्तिकरण को मजबूती देते हैं। लेकिन समाज, सरकारी व्यवस्था और परिवार स्तर पर अभी भी बदलाव आवश्यक हैं। ये बदलाव महिलाओं को भयमुक्त, आर्थिक रूप से स्वतंत्र और समाज में समान स्थिति में खड़ा होने में सक्षम बना सकते हैं।

बालिकाओं से वृद्ध महिलाओं तक सुरक्षा: भारत के कानून और लाभ

भारत में महिलाओं की सुरक्षा, आर्थिक, सामाजिक और स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए कई कानून और योजनाएं लागू हैं। ये हर आयु वर्ग की महिलाओं को उनके अधिकार और

सुरक्षा प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं।

1. बालिकाएं (0-18 वर्ष)

Child Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986: 14 वर्ष से कम की उम्र के बच्चों को काम में लगाना वर्जित। 14-18 वर्ष तक जोखिम रहित कार्यों की अनुमति।

Prohibition of Child Marriage Act, 2006: 18 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों का विवाह प्रतिबंधित।

Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015: बालिकाओं को हिंसा और उत्पीड़न से सुरक्षा।

Right to Education Act, 2009: 6-14 वर्ष की बालिकाओं के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा।

ICDS (Integrated Child Development Services): 0-6 वर्ष की बालिकाओं के लिए पोषण और स्वास्थ्य सेवाएँ।

2. युवा और मध्यवयस्क महिलाएं (18-60 वर्ष)

- Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005: घरेलू हिंसा से सुरक्षा।
- Sexual Harassment of Women at Workplace Act, 2013: कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकना।
- Maternity Benefit Act, 1961: गर्भवती महिलाओं के लिए वेतन सुरक्षा और मातृत्व अवकाश।
- Equal Remuneration Act, 1976: समान कार्य के लिए समान वेतन।
- National Commission for Women (NCW): महिलाओं के अधिकारों की निगरानी और सुरक्षा।

3. वृद्ध महिलाएं (60 वर्ष से अधिक)

- Indira Gandhi National Old Age Pension Scheme (IGNOAPS): Varishtha Pension Scheme: वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष पेंशन।
- Maintenance and Welfare of Parents and Senior Citizens Act,

2007: वृद्ध महिलाओं को परिवार से उचित देखभाल।

- National Programme for Health Care of the Elderly (NPHCE): वृद्ध महिलाओं के स्वास्थ्य सेवाएँ।
- महिला उत्पीड़न की वर्तमान स्थिति और NHRC की भूमिका आज भी भारत सहित पूरे विश्व में महिलाओं पर हिंसा की घटनाएं चिंता का विषय हैं।
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़े यह दिखाते हैं कि महिला उत्पीड़न की घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है।
- घरेलू हिंसा: कुल अपराधों का लगभग 30%
- दहेज मृत्यु: प्रति वर्ष लगभग 25,000
- कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न: हजारों मामले प्रतिवर्ष
  तस्करी और अमानवीय प्रथाएँ भी व्यापक

महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा में एन.एच.आर.सी. की भूमिकाः

1. स्वतः संज्ञान (Suo Motu Action):

एन.एच.आर.सी. महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों पर स्वयं कार्रवाई करता है। उदाहरण के लिए, दहेज हत्या, बालिकाओं के खिलाफ यौन अपराध, आदिवासी महिलाओं की जबरन बिक्री जैसी घटनाओं में एन.एच.आर.सी. तुरंत जांच शुरू कर सकता है। इससे न्याय प्रक्रिया में देरी या प्रशासनिक विफलता नहीं होती।

2. न्याय और मुआवजा:

एन.एच.आर.सी. केवल अपराधों की जांच तक सीमित नहीं है, बल्कि पीड़ित परिवारों को मुआवजा देने में भी सक्रिय है। अपराध में शामिल व्यक्ति को दंडित करना और पीड़ित परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान करना एन.एच.आर.सी. के माध्यम से संभव होता है। उदाहरण के लिए, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न के मामलों में पीड़ित परिवार को न्याय और आर्थिक मदद दी जाती है।

3. प्रशासनिक निगरानी:

एन.एच.आर.सी. राज्यों और पुलिस प्रशासन पर निगरानी रखता है। यह सुनिश्चित करता है कि महिलाओं के खिलाफ अपराधों में कोई प्रशासनिक लापरवाही न हो। एन.एच.आर.सी. सरकार और संबंधित विभागों को रिपोर्ट प्रदान करके महिला सुरक्षा के लिए आवश्यक सुधारों का सुझाव देता है।

4. जागरूकता और सामाजिक समर्थन:

महिलाओं के अधिकार, सुरक्षा और समाज में महिला समानता के प्रति जागरूकता बढ़ाना एन.एच.आर.सी. की मुख्य जिम्मेदारी है। यह स्कूलों, कॉलेजों और स्थानीय समुदायों में महिला सुरक्षा, शिक्षा और कानूनी अधिकारों पर प्रशिक्षण और कार्यक्रम आयोजित करता है।

एन.एच.आर.सी. और महिला अधिकार: व्यापक दृष्टिकोण

सुरक्षित जीवन का अधिकार:

- प्रत्येक महिला- चाहे वह बच्ची हो, युवा हो, ग्रामीण क्षेत्र या शहरी क्षेत्र से आई हो, को सुरक्षित, सम्मानजनक और स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है। एन.एच.आर.सी. यह सुनिश्चित करता है कि ये अधिकार वास्तविक जीवन में लागू हों।
- हेल्पलाइन और ऑनलाइन शिकायत पोर्टल: महिलाओं को तुरंत सहायता मिल सके, इसके लिए विशेष हेल्पलाइन नंबर और ऑनलाइन शिकायत सुविधा शुरू की गई हैं।
- सहयोग नेटवर्क: एन.एच.आर.सी., एन.जी.ओ. और महिला अधिकार संगठनों के साथ मिलकर शिकायतों के त्वरित समाधान पर कार्य करता है।
- सुरक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम: महिलाओं के लिए आत्म-रक्षा प्रशिक्षण और कानूनी ज्ञान प्रदान करने हेतु विशेष प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाते हैं।
- अनुसंधान और डेटा संग्रह: महिलाओं के खिलाफ अपराधों और उत्पीड़न के आंकड़े एकत्र करके उनका विश्लेषण किया जाता है, और नीतिगत सुधारों के लिए सुझाव दिए जाते हैं।

सारांश:

- बालिकाएं: शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह से सुरक्षा।
- युवा और मध्यवयस्क महिलाएं: हिंसा से सुरक्षा, रोजगार और मातृत्व सुरक्षा। वृद्ध महिलाएं: आर्थिक, सामाजिक और स्वास्थ्य सुरक्षा।
- भारत इन कानूनों और योजनाओं के माध्यम से सभी आयु वर्ग की महिलाओं के लिए समग्र सुरक्षा और लाभ सुनिश्चित करता है।
- एन.जी.ओ. - महिला समाख्या, जागोरी, प्रजा प्रगति वेदिका

फास्ट ट्रैक कोर्ट और हेल्पलाइन

- इन सबके माध्यम से महिलाओं को कानूनी सुरक्षा, सहायता और न्याय प्राप्त करने का अवसर दिया गया है।
- महिलाओं के लिए भयमुक्त वातावरण बनाने में एनजीओ और परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका एनजीओ (NGOs) महिलाओं के अधिकारों, यौन और पारिवारिक हिंसा, भेदभाव के बारे में जागरूकता बढ़ाते हैं।
- हिंसा का सामना कर रही महिलाओं को मानसिक, शारीरिक और आर्थिक सहायता प्रदान करने के साथ-साथ परामर्श प्रदान करते हैं।
- पुलिस और न्याय प्रणाली में महिलाओं को न्यायिक सहायता प्रदान करते हैं।
- सरकारी कानूनों और नीतियों को महिलाओं के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सुरक्षित वातावरण के लिए कार्यक्रम, कार्यशालाएं और प्रचार आयोजित करते हैं।
- परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह महिला के लिए निजी और सार्वजनिक दोनों तरह के सुरक्षित वातावरण का निर्माण करता है।
- घर में बच्चियों से लेकर सभी उम्र की महिलाओं को स्वतंत्र रूप से जीने और बोलने का अवसर देना चाहिए।
- मानसिक समस्याओं का सामना करते समय परिवार का सहारा होना चाहिए। महिलाओं की शिक्षा, रोजगार और निर्णय लेने की स्वतंत्रता का सम्मान करना चाहिए। घर में किसी भी प्रकार की हिंसा को अनुमति नहीं देना चाहिए।
- आत्मरक्षा, मानसिक शक्ति और निष्कर्षः महिलाओं के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं और उन्हें अधिकार प्रदान किए गए हैं। लेकिन इन सबके बावजूद सबसे पहले महिला को अपनी आंतरिक शक्ति को पहचानना आवश्यक है। उसे ऐसी स्थिति तक पहुँचना होगा जहाँ वह अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा स्वयं कर सके।
- आज समाज में विभिन्न प्रकार की मार्शल आर्ट्स और आत्मरक्षा प्रशिक्षण उपलब्ध हैं। सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए महिलाओं को भी इन कार्यक्रमों में भाग लेकर
- अपने कौशल को विकसित करना चाहिए, ताकि वे मानसिक रूप से सशक्त और आत्मरक्षा के योग्य बन सकें। महिला को केवल अपने आत्मसम्मान की रक्षा ही नहीं करनी है, बल्कि अपने शारीरिक स्वास्थ्य और दृढ़ता का भी निर्माण स्वयं करना है। इसके लिए आवश्यक है कि वह सही दिशा में प्रयास करे

और निरंतर स्वयं को सशक्त बनाती रहे।

स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हमने 77 वर्ष पूरे कर लिए हैं, फिर भी समाज में संदेशखाली की तरह घटनाएं होती रहती हैं। उम्र या स्थिति की परवाह किए बिना छोटे बच्चों और युवतियों के साथ अत्याचार, परिवार में सुरक्षा का अभाव, समाज में सुरक्षा का अभाव, नौकरी करने के स्थान पर भी सुरक्षा का अभाव, गुमशुदा होना, अंग व्यापार, वृद्ध महिलाओं की दुःखद परिस्थितियाँ- ये सभी हमारे देश को आज भी पीड़ा पहुंचाते हैं।

इन्हें समाप्त करने के लिए केवल कानून, नियम, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (NHRC), गैर सरकारी संगठन (NGO) पर्याप्त नहीं हैं। व्यक्ति में खुद पर विश्वास, अपनी शक्ति और साहस होना आवश्यक है। जब महिला अपने हक के लिए खड़ी होती है, तभी वह उत्पीड़न से बाहर निकल सकती है और समाज को एक सहायक भूमिका देने में सक्षम बन सकती है। आज की जरूरत असमानता को कम करना - रोजगार, वेतन, राजनीति और शिक्षा में महिलाएँ अभी भी पीछे हैं। समान वेतन और अवसर सुनिश्चित करना आवश्यक है।

आरक्षण का सही कार्यान्वयन - कई जगह आरक्षण मौजूद होने के बावजूद उसका सही क्रियान्वयन नहीं हो रहा। इसे सख्ती से लागू करना चाहिए।

भयमुक्त वातावरण - महिलाएँ परिवार और समाज के डर के बिना काम, पढ़ाई और राजनीति में भाग ले सकें।

आर्थिक स्वतंत्रता - महिलाओं को ऋण, व्यवसाय और आर्थिक साधनों तक आसान पहुँच प्रदान करनी चाहिए।

कानून का क्रियान्वयन और जागरूकता - महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना और कानूनों को कड़ाई से लागू करना आवश्यक है।

भयमुक्त महिला समाज ही स्वस्थ समाज और विकसित राष्ट्र की पहचान है। महिला उत्पीड़न का उन्मूलन केवल कानून या प्रशासन की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि यह पूरे समाज का दायित्व है। एन.एच.आर.सी., सरकारी संस्थाएँ, एन.जी.ओ. और नागरिकों की संयुक्त जिम्मेदारी है कि वे शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक समर्थन के माध्यम से महिलाओं को सशक्त करें। जब महिलाएँ स्वतंत्र और सुरक्षित होंगी, तभी समाज और राष्ट्र वास्तविक प्रगति करेंगे।

*****

भारत में डिमेंशिया और वृद्ध जनों की देखभाल चुनौती का स्वरूप और आगे की राह

भरत लाल*
स्तुति जोशी**

जैसे-जैसे भारत में वृद्धजनों की आबादी बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे यह प्रश्न सामाजिक प्रगति और लोकनीति की एक निर्णायक कसौटी बनता जा रहा है कि भारत अपनी वृद्धजन आबादी - विशेषकर डिमेंशिया से प्रभावित लोगों की सहायता और सुरक्षा का काम किस प्रकार से करता है। यहां, केवल उनकी हेल्थकेयर या नीति की बात नहीं हो रही है; बल्कि इससे यह पता चलता है कि हम किस प्रकार का समाज बनना चाहते हैं। क्या हम एक ऐसा समाज बनना चाहते हैं जो अपने वृद्धजनों को आश्रित के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान, अनुभव और बुद्धिमत्ता के स्रोत के रूप में याद करता है या किसी अन्य प्रकार का।

जीवन यात्रा और अस्तित्व के बदलते अर्थ

पिछले दशकों के दौरान, भारत में जीवन और आजीविका के अर्थ में क्रांतिकारी बदलाव आया है। पहले के कृषि प्रधान समय में, लोगों का जीवन अपने समाज, परिवार और अपनी जमीन के इर्द-गिर्द सिमटा होता था। लोग मिल-जुलकर काम करते थे, एक-दूसरे के साथ अपनी फसलों को साझा करते थे, और परस्पर निर्भरता पर आधारित रिश्ते बनाते थे। घर के बड़े-बूढ़े कहानियां सुनाया करते थे, मुसीबत में सांत्वना देते थे और पूरे परिवार को नैतिकता की राह दिखाते थे।

जैसे-जैसे औद्योगिक क्रांति ने अपने पांव पसारे और लोगों ने शहरों में प्रवास

*महासचिव एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत
**कनिष्ठ अनुसंधान परामर्शदाता, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

करना शुरू किया, वैसे-वैसे यह ताना-बाना बिखरने लगा। परिवार छोटे होते गए, नौकरियाँ मोबाइल होती गईं और जीवन की गति तेज़ होती गई। आधुनिक डिजिटल युग में, तकनीक ने हमारे उपकरणों को तो आपस में जोड़ दिया है, लेकिन हमारे दिलों को अक्सर अलग करने का काम किया है। जैसे-जैसे शहरों में रोजगार और नौकरियों के अवसर बढ़ रहे हैं, कामगारों के माता-पिता पीछे गाँवों में छूट गए हैं। बच्चे घर-गांव से दूर काम कर रहे हैं और पीछे छूट गए माता-पिता के दिल चुपचाप इंतज़ार की घड़ियां गिन रहे हैं।

पोषक आहार और हेल्थकेयर में हुई प्रगति ने जीवन प्रत्याशा में तो सुधार किया है, लेकिन इसने नई चुनौतियों को भी जन्म दिया है। लोगों का जीवन लंबा हो रहा है, लेकिन यह जीवन अक्सर बीमारियों, सामाजिक अलगाव और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रस्त हो रहा है। इन समस्याओं के बारे में पहले शायद ही कभी बात करने की जरूरत होती थी। बिना देखभाल के, लंबी उम्र एक बोझ बन जाती है, और इस स्थिति का निदान करना, हमारी मानवीयता की असली परीक्षा है।

जनसांख्यिकी में परिवर्तन : बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा भारत

भारत इस समय एक बड़े जनसांख्यिकीय परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा है। नीति आयोग की सीनियर केयर रिफॉर्म्स रिपोर्ट (2024) और संकल्प फाउंडेशन की 'एजिंग इन इंडिया : चेलैंजिज एंड ऑपर्च्यूनिटीज़' (2025) के अनुसार, 60 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों की आबादी पहले ही 14.9 करोड़ की संख्या को पार कर चुकी है और अनुमान है कि वर्ष 2050 तक यह संख्या लगभग 34.7 करोड़ तक पहुँच जाएगी। इसका मतलब है कि जल्द ही हर पाँच में से एक भारतीय व्यक्ति, बूढ़ों की आबादी का हिस्सा होगा।

बढ़ती जीवन प्रत्याशा को विकास की विजय कहा जा सकता है लेकिन, यह सतर्क हो जाने का आह्वान भी है। वृद्धों की आबादी जैसे-जैसे बढ़ रही है वैसे-वैसे पुरानी बीमारियाँ, आर्थिक निर्भरता और डिमेंशिया जैसे संज्ञानात्मक विकारों की चुनौतियाँ भी बढ़ रही हैं। यह माना जा रहा है कि डिमेंशिया, हमारे समय की सबसे गंभीर लोक स्वास्थ्य चुनौतियों में से एक के रूप में उभरी है।

इंडिया डिमेंशिया रिपोर्ट (2024) के अनुसार, वर्तमान में 88 लाख से ज़्यादा भारतीय डिमेंशिया से पीड़ित हैं, और अनुमान है कि यह संख्या, वर्ष 2036 तक दोगुनी होकर लगभग 1.7 करोड़ तक पहुँच जाएगी। डिमेंशिया से पीड़ित प्रत्येक व्यक्ति के कारण, उसकी देखभाल में लगने वाले कम से कम दो देखभालकर्ताओं का जीवन

प्रभावित होता है। यह प्रभाव भावनात्मक, शारीरिक और आर्थिक - किसी भी प्रकार का हो सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि 2036 तक लगभग 5 करोड़ भारतीय सीधे तौर पर डिमेंशिया के कारण किसी न किसी रूप में प्रभावित होंगे।

ये केवल आंकड़े मात्र नहीं हैं। इन आंकड़ों के पीछे वास्तविक कहानियाँ छिपी हैं। ये कहानियां ऐसे पिताओं की हैं जो अपने बच्चों के नाम भूल जाते हैं। ऐसी माताओं की हैं जो घर का रास्ता भूल जाती हैं, और ऐसे परिवारों की हैं जो बिना किसी सहारे या समझ के चुपचाप इन डिमेंशिया पीड़ितों की देखभाल का बोझ उठाए जा रहे हैं। डिमेंशिया केवल मस्तिष्क की बीमारी नहीं है; यह इस बात का आईना है कि कोई समाज, अपने सबसे नाजुक वर्ग के साथ कैसा व्यवहार करता है।

बुजुर्गों के सामने खड़ी चुनौतियाँ

भारत में वृद्धों के सामने आने वाली चुनौतियाँ बहुआयामी और गहन रूप से मानवीय संवेदना को स्पर्श करने वाली हैं। लॉन्गिट्यूडिनल एजिंग स्टडी ऑफ इंडिया (LASI, 2021) जैसे अध्ययनों से पता चलता है कि हर चार में से तीन बुजुर्ग भारतीय एक या एक से अधिक पुरानी बीमारियों से ग्रस्त हैं, और लगभग 70 प्रतिशत बुजुर्ग, आर्थिक रूप से अपने परिवारों पर निर्भर हैं। इन बुजुर्गों को निम्नलिखित पाँच प्रमुख क्षेत्रों में बढ़ती कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है:

I.) शारीरिक देखभाल: सीमित गतिशीलता, सहायक उपकरणों तक अपर्याप्त पहुँच, और प्रशिक्षित देखभालकर्ताओं की कमी, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

ii.) संरक्षा और सुरक्षा: दुर्व्यवहार, उपेक्षा और वित्तीय धोखाधड़ी के मामले बढ़ रहे हैं। डिजिटल घोटालों में वृद्धों को निशाना बनाने की घटनाएं तेजी से बढ़ रही हैं।

iii.) स्वास्थ्य सेवा और आरोग्य : केवल 18 प्रतिशत वरिष्ठ नागरिकों के पास स्वास्थ्य बीमा कवरेज है। अधिकांश लोगों को बीमारी पर खर्च, अपनी जेब से करना पड़ता है, जिससे अक्सर परिवार कर्ज में डूब जाते हैं।

iv.) मानसिक स्वास्थ्य और डिमेंशिया : अवसाद, चिंता और संज्ञानात्मक गिरावट की पहचान अक्सर हो नहीं पाती और यदि हो भी पाती है तो इसे एक कलंक मानकर छिपाया जाता है। डिमेंशिया देखभाल को अभी भी लोक स्वास्थ्य की प्राथमिकता न मानकर एक 'पारिवारिक समस्या' के रूप में देखा जाता है।

v.) डिजिटल और वित्तीय बहिष्कार: जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था ऑनलाइन होती जा रही है, अनेक बुजुर्गों को डिजिटल अलगाव या अज्ञानता का सामना करना पड़ता है और इस कारण से वे, आवश्यक सेवाओं तक पहुँच बनाने या साइबर अपराध से खुद को सुरक्षित रखने में असमर्थ हो जाते हैं।

ये वास्तविकताएँ हमें याद दिलाती हैं कि आज भारत में वृद्धावस्था का मतलब सिर्फ़ लंबा जीवन जीना नहीं है - बल्कि गरिमापूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और समुचित सहारे के साथ जीवन जीना है।

दुनिया से सीख: वृद्धजनों की देखभाल में वैश्विक अनुभव

यह चुनौती केवल भारत के सामने नहीं है बल्कि दुनिया भर के देशों को इसी प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। यह अलग बात है कि अलग-अलग देशों की प्रतिक्रियाएँ भी अलग-अलग रही हैं।

जापान में, जहाँ लगभग 30% आबादी 65 वर्ष से अधिक आयु की है, वहां समुदाय-आधारित स्वास्थ्य सेवा, रोबोटिक्स और आयु-अनुकूल शहरी नियोजन ने समावेशिता का वातावरण तैयार किया है। इटली और स्पेन ने भावनात्मक और शारीरिक सहायता सुनिश्चित करने के लिए घर-आधारित देखभाल और स्वयंसेवी प्रणालियों का एक मज़बूत नेटवर्क विकसित किया है। दक्षिण कोरिया ने वरिष्ठ नागरिकों के लिए डिजिटल प्रशिक्षण और पुनर्नियोजन कार्यक्रमों में भारी निवेश किया है, जिससे उन नागरिकों को ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में एकीकृत किया जा सके।

हालांकि, इस मामले में भारत के सामने चुनौती दोहरी है। एक तो हमारी विशाल जनसंख्या और दूसरे- सीमित संसाधन। हमारे समाधान केवल आर्थिक आधार पर काम नहीं कर सकते; उन्हें हमारी सांस्कृतिक संपदा - अर्थात हमारे पारिवारिक जुड़ाव, पीढ़ियों के बीच परस्पर सम्मान और सामाजिक करुणा - से प्रेरणा लेनी होगी। भारतीय कार्यनीति का आधार, केवल बुनियादी ढाँचे तक सीमित न होकर परिवार और समुदाय-केंद्रित होना चाहिए।

नई गाथा का सृजन : हमारे बुजुर्गों किसी के आश्रित नहीं बल्कि योगदानकर्ता के रूप में देखे जाएं

अब समय आ गया है कि वृद्धजनों को आश्रितों के रूप में देखने से तौबा की जाए। ज्ञान-संचालित अर्थव्यवस्था में, वरिष्ठ नागरिकों के पास अनुभव, कौशल,

बुद्धिमत्ता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता की अमूल्य संपत्ति है। वे हमारे लिए मार्गदर्शक, नवप्रवर्तक और नैतिक मूल्यों के वाहक हैं और उनके जीवन-मूल्य, अगली पीढ़ी को सौंपे जाने की आवश्यकता है।

भारतीय शिष्ट परंपरा में हमेशा बुजुर्गों को भरपूर सम्मान दिया जाता रहा है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित आश्रम व्यवस्था से लेकर आपसी सहयोग को पोषित करने वाली संयुक्त परिवार परंपरा तक यही सूत्र काम करता रहा है। महात्मा गांधी का मानना था कि 'किसी राष्ट्र की महानता इस बात से मापी जाती है कि वह अपने सबसे कमजोर सदस्यों के साथ कैसा व्यवहार करता है।' इस कसौटी के आलोक में देखें तो हमारे बुजुर्गों की देखभाल करके हम कोई उपकार नहीं करते बल्कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। यही न्यायसंगत भी है।

यदि 20वीं सदी को नव-स्वतंत्र भारत के युवाओं की सदी माना जाए, तो 21वीं सदी भी, उसी भाव से उन लोगों की होनी चाहिए जिन्होंने इसे बनाया यानि कि हमारे पूर्वज और हमारे बुजुर्ग; जिनके जीवन-मूल्यों ने हमारे गणराज्य को आकार दिया। वे वृद्धजन, जिन्होंने परिवारों और अपने बच्चों के भविष्य का निर्माण करने के लिए कड़ी मेहनत की, और देश को विश्व मंच पर आसीन किया।

भविष्य की राह : युवाओं और वृद्धजनों के बीच सेतु का निर्माण

भारत की सबसे बड़ी ताकत उसके युवा हैं। लेकिन एक युवा राष्ट्र तब तक फल-फूल नहीं सकता जब तक वह अपने बुजुर्गों को अपनी स्मृतियों का अविस्मरणीय हिस्सा न बनाए रखे। हमारा भविष्य, किसी एक पीढ़ी पर अवलंबित न रहे, उसे दोनों पैरों का मजबूत सहारा मिलना चाहिए यानि अपनी युवा पीढ़ी का उत्साह और अपने बुजुर्गों का अनुभव उसे मिलना ही चाहिए।

देश के शैक्षणिक संस्थान और सामुदायिक संगठन, पीढ़ियों को जोड़ने वाले सेतु बन सकते हैं। ऐसे ग्रामीण युवा क्लब संचालित किए जाएं जहां बुजुर्गों से मेल-मुलाकात की स्वयंसेवा की व्यवस्था हो, जहां उन्हें मोबाइल एप्लिकेशन या पेंशन प्रक्रियाओं में सहायता प्रदान की जाए, और जहां उन बुजुर्गों से हमारी युवा पीढ़ी यह सीख सके कि हमारा इतिहास क्या रहा है और कि हमारा देश किस प्रकार संकटों पर विजय पाकर आगे बढ़ा है।

इस प्रयास को बल देने के लिए राष्ट्रीय सेवा योजना (एनएसएस) और एनवाईकेएस स्वयंसेवकों को 'सिल्वर कम्पैनियन' के रूप में प्रशिक्षित किया जा सकता है। सिल्वर कम्पैनियन यानि समानुभूति के दूत जो बुजुर्गों की देखभाल को, उनकी निजी कशमकश न मानकर सामुदायिक ज़िम्मेदारी के रूप में स्वीकार करें। देश की युवा शक्ति और अनुभवसिद्ध ज्ञान के बीच तालमेल, भारत की अगली पीढ़ी की नैतिक शक्ति को परिभाषित करेगा।

भारत की नीतिगत तैयारी और आगे का मार्ग

भारत ने बुजुर्गों की देखभाल को राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में मान्यता देने में सराहनीय प्रगति की है। सरकार ने अनेक प्रयास आरंभ किए हैं, जिनमें निम्नलिखित भी शामिल हैं:

I.) माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम (2007), जिसमें कानूनी संसाधन और पारिवारिक जवाबदेही का प्रावधान किया गया है।

ii.) राष्ट्रीय वृद्धजन स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनपीएचसीई), निवारक और पुनर्वास देखभाल पर केंद्रित है।

iii.) आयुष्मान भारत - प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएम-जेएवाई), जिसका विस्तार अब 70 वर्ष से अधिक आयु के सभी नागरिकों के लिए कर दिया गया है, जिससे हेल्थकेयर में गरिमा और वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित हुई है।

iv.) राष्ट्रीय वृद्धजन नीति, जिसमें सक्रिय और सफल वृद्धावस्था पर बल दिया गया है।

v.) राज्य-स्तरीय नवाचार, विशेष रूप से केरल में, जहाँ समुदाय-आधारित वृद्धजन देखभाल मॉडल और पैलिएटिव होम विजिट ने राष्ट्रीय मानक स्थापित किए हैं।

इसके अतिरिक्त, नीति आयोग द्वारा प्रवर्तित सीनियर केयर रिफॉर्म्स इन इंडिया (2024) के अंतर्गत वरिष्ठजन देखभाल प्रणालियों को मज़बूत करने के लिए चार-स्तंभों वाला फ्रेमवर्क तैयार किया गया है। ये स्तंभ हैं - स्वास्थ्य, सामाजिक, आर्थिक और डिजिटल सशक्तीकरण। रिपोर्ट में मंत्रालयों के बीच तालमेल, निजी क्षेत्र की भागीदारी और एक समावेशी 'सिल्वर इकोनॉमी' के निर्माण का भी आह्वान किया गया है।

लेकिन सिर्फ़ नीतियाँ बना देना ही पर्याप्त नहीं है। सच्चा सुधार तब शुरू होता है जब प्रत्येक नागरिक, वृद्धजनों की संरक्षा को अपना नैतिक कर्तव्य समझे। हमारे समाधान केवल सरकारी संस्थानों से नहीं, बल्कि परिवार और समुदाय से आने चाहिए।

डिमेंशिया से संघर्ष : कलंक से सहायता तक

बढ़ती आयु-संबंधी सभी विकारों में , डिमेंशिया रोग के प्रति समझ सबसे कम बनी है। इसे अक्सर 'भूलने की बीमारी' या 'पागलपन' कहकर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इस कारण से, डिमेंशिया पीड़ित व्यक्ति का परिवार अलग-थलग पड़ जाता है और शर्मिंदगी का अनुभव करता है।

भारत को आवश्यकता है - एक राष्ट्रीय डिमेंशिया कार्य योजना की। इस कार्य-योजना में प्राथमिक स्वास्थ्य प्रणालियों में जागरूकता, निदान और देखभालकर्ता प्रशिक्षण को एकीकृत किया जाना होगा। आयुष्मान भारत के तहत स्वास्थ्य और आरोग्य केंद्रों में मेमोरी क्लीनिक और परामर्श सेवाएँ शामिल की जा सकती हैं। आशा कार्यकर्ताओं और सामुदायिक स्वास्थ्य अधिकारियों को शुरुआती लक्षणों की पहचान करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

देखभाल करने वालों की भी हमें रक्षा करनी होगी। देखभाल करने वालों में ज़्यादातर महिलाएँ होती हैं, जो संस्थागत सहायता के बिना अपने प्रियजनों की देखभाल का भावनात्मक और शारीरिक बोझ उठाती हैं। अनुमानों के अनुसार, ऐसे परिवार, सामूहिक रूप से हर साल अनौपचारिक डिमेंशिया देखभाल पर न्यूनतम सरकारी सहायता के साथ लगभग ₹1.18 लाख करोड़ खर्च करते हैं। डिमेंशिया देखभाल न केवल एक चिकित्सीय दायित्व है, बल्कि एक नैतिक अनिवार्यता भी है। डिमेंशिया से पीड़ित प्रत्येक व्यक्ति गरिमा, धैर्य और प्रेम का पात्र है - दया का नहीं।

एक गरिमापूर्ण वृद्धजन समाज की ओर

भविष्य की दृष्टि स्पष्ट और समावेशी होनी चाहिए:

हमें एक ऐसा भारत बनाना है जहाँ वृद्धावस्था से डर न मानकर उसे अपनाया जाता हो। जहाँ, प्रत्येक वरिष्ठ नागरिक को हेल्थकेयर, सान्निध्य और सार्थक जीवन का अधिकार प्राप्त हो। जहाँ, हमारे गाँव और शहरों को इस प्रकार अभिकल्पित किया जाए कि वे सभी उम्र के लोगों के लिए उपयोगी हों। जहाँ बेंच, लाइटें और पैदल मार्ग बुज़ुर्गों के निर्वाह के अनुकूल हों और सबसे बढ़कर जहां वृद्धजनों का स्वागत करने वाले दिल हों।

इस कार्य में प्रौद्योगिकी की सहायता ली जा सकती है। यह कार्य, टेलीमेडिसिन, वियरेबल हेल्थ डिवाइसिज और डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा सकता है। लेकिन कोई भी नवाचार, मानवीय करुणा की जगह नहीं ले सकता। देखभाल का आधार समुदाय और समानुभूति ही होना चाहिए।

दिवंगत राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने कहा था, 'अगर आप सूरज की तरह चमकना चाहते हैं, तो पहले उसकी तरह जलें।' हमारे युवाओं को अब स्वयं को इस सेवाकार्य में तपना होगा, ताकि उस तपोबल की रोशनी से उन लोगों का जीवन रोशन हो सके जिन्होंने कभी अपनी आगे आने वाली पीढ़ी का जीवन रोशन किया था।

निष्कर्ष: हमारे प्रयास करुणा-आधारित हों

बुढ़ापे की समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान किया जाना है बल्कि यह एक ऐसी घटना है, एक विशेषाधिकार है जिसका सम्मान किया जाना चाहिए। आज के बुजुर्गों ने उन संस्थानों, मार्गों और परिवारों का निर्माण किया है जिन पर हम आज खड़े हैं। उनका कुशलक्षेम, कल्याण का कार्य नहीं है; यह कृतज्ञता का कार्य है।

भारत को यह संकल्प लेना होगा कि वह, केवल तकनीक और युवा शक्ति के मामले में ही नहीं अपितु मानवीय करुणा में भी दुनिया का नेतृत्व करेगा। आइए, हम सब मिलकर एक ऐसा राष्ट्र बनाएँ जहाँ हर बुजुर्ग व्यक्ति को महसूस हो कि उसकी हस्ती को देखा, सुना और महत्व दिया जाता है। जब हमारे युवा, अपने बुजुर्गों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलेंगे, तो एक विकसित, मानवीय और समावेशी समाज की ओर भारत की विजय यात्रा आगे बढ़ती ही जाएगी।

हमारा आग्रह है कि हर पाठक यह सरल प्रतिज्ञा ले:

- कि वह बुजुर्गों के साथ, पहले से अधिक मेल मुलाकात रखेगा
- उनकी बातें धैर्यपूर्वक सुनेगा।
- उनके अधिकारों के लिए उनके साथ खड़ा होना।

और याद रखें कि आज हम अपने बुजुर्गों के साथ जैसा व्यवहार करते हैं, कल वैसा ही व्यवहार हमारे साथ किया जाएगा।

संदर्भ

1. सांकला फाउंडेशन (2025)। एजिंग इन इंडिया : चेलैंजिज एंड ऑपचर्यनिटीज़ - एक स्थिति रिपोर्ट। नीति आयोग, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय

और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा समर्थित।

2. नीति आयोग (2024)। सीनियर केयर रिफॉर्म्स इन इंडिया - री-इमेजिनिंग दि सीनियर केयर पैराडाइम : ए पोजीशन पेपर।

3. अल्जाइमर एंड रिलेटिड डिसऑर्डर सोसायटी ऑफ इंडिया (2024)। भारत में डिमेंशिया और वृद्ध देखभाल।

4. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (2021)। लोंगीट्यूडिनल एजिंग स्टडी इन इंडिया (LASI): नेशनल रिपोर्ट।

5. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2023)। वृद्धावस्था और स्वास्थ्य पर वैश्विक रिपोर्ट। जिनेवा: विश्व स्वास्थ्य संगठन।

6. यूएनएफपीए (2023)। इंडिया एजिंग रिपोर्ट । संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष, नई दिल्ली।

7. भारत सरकार (2023)। आयुष्मान भारत - पीएम-जेएवाई वार्षिक रिपोर्ट। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय।

8. इरुदया राजन, एस. और मिश्रा, यू.एस. (2022)। एल्डरली केयर इन इंडिया : दि चेंजिंग कॉन्टेक्स्ट ऑफ एजिंग एंड सपोर्ट। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।

9. अल्जाइमर डिजीज इंटरनेशनल (2023)। वर्ल्ड अल्जाइमर रिपोर्ट: होप थ्रू एक्शन। लंदन।

10. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डिफेंस (2024)। माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम - स्थिति और कार्यान्वयन रिपोर्ट।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्

सुनील कुमार त्रिवेदी*

गीता पर हाथ रखकर कसम खाना व्यक्तिगत जीवन के सच को सार्वजनिक रूप से विश्वसनीय सिद्ध करने का स्वीकृत फिल्मी मुहावरा इसीलिए बना कि अधिकांश देशवासियों द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता, भारतीय जीवन-मूल्यों का आधार-ग्रन्थ मानी जाती है।

गीता को समाज, मनोविज्ञान और नैतिकता से जुड़ी साहित्यिक कृति के रूप में समझना अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। गीता के अनुसार जो लोग 'सर्वभूतहिते रता:' हैं, अर्थात जो लोग सभी के हित में कार्य करने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, वे सत्य को प्राप्त करते हैं। सभी के सुख, स्वास्थ्य, सुविचार तथा दुख से मुक्ति की हमारी अत्यंत लोकप्रिय प्रार्थना है:

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे संतु निरामया:
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

हमारी इस प्रार्थना में व्यक्त सबके कल्याण की भावना अंत्योदय की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति है। यह प्रार्थना मानव अधिकार की समावेशी अवधारणा को भी व्यक्त करती है।

1940 के दशक में जब संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा Universal Declaration of Human Rights का मसौदा तय किया जा रहा था तब उसके आरंभिक अनुच्छेद के

*विशेष कर्तव्य अधिकारी, राष्ट्रपति सचिवालय

शब्द थे: All men are born free and equal in dignity and rights.

जो समिति, मसौदे को अंतिम स्वरूप प्रदान कर रही थी उसमें श्रीमती हंसाबेन मेहता भारत की प्रतिनिधि थीं। वे हमारे संविधान सभा की सदस्य भी थीं। श्रीमती हंसा मेहता ने यह ऐतिहासिक सुझाव दिया कि Declaration के इस पहले वाक्य में Men की जगह Human Beings लिखा जाना चाहिए। उनके सुझाव पर ही उस Declaration का पहला वाक्य बदला गया। वह संशोधित और अंततः स्वीकृत वाक्य है: All human beings are born free and equal in dignity and rights.

मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा में महिलाओं का लिखित समावेश एक भारतीय महिला के हस्तक्षेप के कारण संभव हो सका, यह सभी भारतवासियों के लिए गर्व की बात है। मानव अधिकारों के प्रति यह समावेशी चेतना और संवेदना हमारे संविधान में भी दिखाई देती है।

'मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम' के अनुसार भारत के 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' द्वारा निम्नलिखित अधिकारों को मानव अधिकारों में शामिल किया जाता है:

- संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकार,
- भारत द्वारा अंगीकृत किए गए अंतरराष्ट्रीय समझौतों में शामिल अधिकार तथा,
- भारत में न्यायालयों द्वारा परिभाषित किए गए व्यक्ति के अधिकार।

इस प्रकार, कुछ अधिकार जो भारतीय संविधान के अंतर्गत भाग 3 में उल्लिखित मूल अधिकारों में शामिल नहीं हैं, वे भी न्यायालयों द्वारा मानव अधिकार की व्यापक परिभाषा में शामिल किए जाते रहे हैं।

उदाहरण के लिए 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ तथा अन्य' के मामले में उच्चतम न्यायालय ने फोन टैपिंग को निजता के मानव अधिकार का उल्लंघन बताया था। तब यह संविधान के मूल अधिकारों में शामिल नहीं था। बाद में, वर्ष 2017 में उच्चतम न्यायालय ने 'पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ' के मामले में निजता को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत 'Life and Personal Liberty' के मूल अधिकार में शामिल किया।

समाज के वंचित वर्गों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'शोषण के विरुद्ध अधिकार' को संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 के तहत मूल अधिकार का दर्जा दिया

गया है। ये अधिकार स्वतः ही भारत मानव अधिकार आयोग के कार्यक्षेत्र में शामिल हो जाते हैं।

वर्ष 1982 में 'पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ' के मामले में उच्चतम न्यायालय ने श्रमिक अधिकारों को मानव अधिकार का दर्जा दिया तथा संविधान के अनुच्छेद 21 और 23 के तहत बलात श्रम करवाने को असंवैधानिक करार दिया।

भारत का आधुनिक न्याय-शास्त्र सामाजिक अधिकारों के महत्व को रेखांकित करता है। न्यायालयों द्वारा महिलाओं, बच्चों, गरीब तबके के लोगों तथा ऐसे अन्य वंचित वर्गों के लोगों को मिलने वाली सुविधाओं को अब केवल Aspirational Directives नहीं माना जा रहा है। इसी प्रकार, स्वास्थ्य से जुड़ी बुनियादी सुविधाओं को भी यथासंभव नागरिकों तक पंहुचाने के निर्देश दिये जा रहे हैं। संविधान के अनुच्छेद 21(क) के तहत 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों को शिक्षा का मूलभूत अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा वर्ष 2021 में Rights of Prisoners नामक एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। मानवीय करुणा तथा अधिकार की व्यापक परिधि में कैदी भी आते हैं। न्यायालयों ने भी कई बार यह विचार व्यक्त किया है कि किन्हीं परिस्थियों में अपराध करने वाले सजायाफ्ता कैदी भी मनुष्य हैं। उन्हें भी मानवीय गरिमा और अधिकार उपलब्ध हैं। कारावासों में सुधार तथा कैदियों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए न्यायालयों तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा अनेक प्रयास किए जाते रहे हैं।

भारत के संविधान के भाग 4 में शामिल किए गए राज्य के नीति निदेशक तत्व 'मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्' की सर्वसमावेशी भावना को संवैधानिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। संविधान की प्रस्तावना तथा भाग 4 में उल्लिखित निर्देशों को Non-Justiciable मानने की विचारधारा में धीरे धीरे बदलाव आता रहा है। इन प्रावधानों को लागू करने पर ज़ोर दिया जा रहा है। समान न्याय और निःशुल्क कानूनी सहायता के लिए व्यवस्थाएं की गई हैं। ग्राम पंचायतों से जुड़े अनुच्छेद (243क से 243ण) तथा नगर पालिकाओं से जुड़ा नया भाग 9(क), स्थानीय स्वशासन के लिए व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं। वर्ष 2024 तक पंचायत व्यवस्था के तहत चुनी गयी महिला प्रतिनिधियों की संख्या 14 लाख से ऊपर पहुंच गई है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन महिलाओं को अवसर, अभिव्यक्ति तथा शक्ति प्रदान करता है।

'महिला शक्ति वंदन अधिनियम' के तहत, संसद एवं विधानसभाओं में, भविष्य में, महिलाओं के 30 प्रतिशत प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के द्वारा हमारे लोकतन्त्र को विश्व के सबसे अधिक समावेशी लोकतन्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकेगा।

यह सामान्य मान्यता है कि महिलाओं के निर्णय अधिक समावेशी होते हैं एवं परिवार तथा समाज के लिए अधिक हितकारी होते हैं। जिस परिवार में महिलाएं शिक्षित होती हैं उन परिवारों का कायाकल्प हो जाता है। महिलाओं का सशक्तीकरण समाज के समावेशी विकास में सहायक सिद्ध होता है। हमारे प्रबुद्ध संविधान निर्माताओं ने काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए व्यवस्था करने को संवैधानिक महत्व दिया। वर्तमान सरकार ने Maternity Leave की अवधि बढ़ाने सहित प्रसूति सहायता के लिए अनेक कार्य किए हैं।

कृषि, उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों के लिए जीवन निर्वाह हेतु समुचित मजदूरी, जीवन स्तर, अवकाश, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर उपलब्ध कराने जैसे आयामों का संविधान में उल्लेख करके मानव अधिकार के विस्तृत आयामों को महत्व दिया गया है।

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा संबंधी तथा आर्थिक हितों की वृद्धि को भी संविधान में शामिल किया गया है। यही नहीं, पोषण के स्तर को बेहतर बनाने तथा स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार को भी संविधान में स्थान दिया गया है। संविधान निर्माताओं की समावेशी सोच में पशुओं की विभिन्न नस्लों की रक्षा और सुधार भी शामिल हैं। संविधान निर्माताओं की इसी सोच को आगे बढ़ाते हुए वन्य जीवों की रक्षा हेतु संविधान संशोधन किया गया। इस प्रकार, मनुष्यों तथा जीव जंतुओं को दुख से बचाने का कर्तव्यबोध हमारे संविधान तथा हमारी व्यवस्थाओं को प्रेरित करता रहा है।

निर्धनता, मानव अधिकार की सबसे बड़ी शत्रु है। पिछले दशक में लगभग 27 लाख लोगों को गरीबी रेखा से बाहर निकालकर मानव अधिकार के अनेक आयामों की रक्षा की जा सकी है।

अंत्योदय की भावना, भारत सरकार के काम काज में Saturation Approach के रूप में, सभी जन-हितैषी योजनाओं को लागू करने में अपनायी जाती है। इस अप्रोच के तहत यह सुनिश्चित किया जाता है कि कल्याण योजनाओं के क्रियान्वयन में कोई भी लक्षित व्यक्ति छूटने न पाये। शत-प्रतिशत लाभार्थियों तक सुविधाएं पहुंचाना इस कार्यपद्धति की विशेषता है। सरकार की यह सोच है कि बुनियादी नागरिक सुविधाओं पर सभी देशवासियों का हक बनता है।

बहुत से लोगों का दुख, मानसिक अस्वस्थता का रूप ले लेता है। विश्व समुदाय ने तथा हमारे देश के हितधारकों ने मानसिक स्वास्थ्य की समस्या को मान्यता दी है तथा इसके समाधान को प्राथमिकता दी है। वर्ष 2023 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका विषय है: Mental Health-Concern for All: In Context of the Mental Healthcare Act, 2017.

इस विस्तृत रिपोर्ट में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े कुछ बड़े चिकित्सालयों, तथा अन्य हितधारकों की भूमिका के बारे में ज्ञानवर्धक और उपयोगी जानकारी तथा सुझाव देखे जा सकते हैं। लोगों के मानसिक स्वास्थ्य की प्रभावी देखभाल से मानसिक रोगों से प्रभावित व्यक्ति फिर से स्वस्थ हो सकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य-लाभ के बहुआयामी फायदे होते हैं। इससे व्यक्ति और परिवार के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था पर भी अच्छा असर पड़ता है।

'मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्' का कल्याणकारी संदेश केवल एक आदर्श नहीं है, एक प्रार्थना मात्र नहीं है। यह एक उपयोगी सिद्धांत भी है। हमारे यहां राम राज्य की परिकल्पना को जन-भाषा में व्यक्त करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखा:

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥

इस पंक्ति का भावार्थ सदैव प्रासंगिक रहेगा। शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्ति तथा बुनियादी भौतिक सुविधाओं का उपलब्ध होना प्रत्येक व्यक्ति के मानवीय अधिकार हैं। इन अधिकारों को सुनिश्चित करना कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका, गैर सरकारी संस्थानों, प्रबुद्ध एवं कर्तव्य-परायण नागरिकों सहित सभी हितधारकों की प्राथमिकता होनी चाहिए। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' सहित 'मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्' की शुभाशंसाओं को कार्यरूप देने की दिशा में बहुआयामी प्रयास किए जा रहे हैं। मानव अधिकारों का संरक्षण करना देशवासियों को, विशेषकर कमजोर वर्ग के लोगों को, दुख से बचाने का महत्वपूर्ण कार्य है। यह कार्य विकसित भारत के निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ भी है।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

स्त्री श्रम - सम्मान समानता और पितृसत्ता

प्रो. सुधा सिंह*

2015 में, संयुक्त राष्ट्र संघ में महिला लैंगिक समानता और महिला अधिकारों से संबंधित कई गतिविधियों को शामिल किया गया था।

संयुक्त राष्ट्र ने सन् 2030 तक स्थायी विकास का लक्ष्य रखा है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका और स्थिति में सुधार का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए छह मुख्य तरीक़े सुझाए गए हैं जिससे इस लक्ष्य को निश्चित समय तक पूरा कर लिया जाए। ये लक्ष्य इस प्रकार हैं–

स्त्रियों के ऊपर की जाने वाली हिंसा को ख़त्म करना, निर्णय लेने में स्त्रियों की बराबर भूमिका, स्त्री, शांति और सुरक्षा। हालाँकि इन लक्ष्यों में स्त्री को अलग से मुद्दा बनाया गया है लेकिन देखा जाए तो अन्य सभी लक्ष्य इस एक लक्ष्य पर ही केंद्रित हैं। इन लक्ष्यों को पाने के लिए सभी क़दम किसी न किसी रूप में जेंडर समानता के साथ जुड़ते हैं। भोजन , इनमें से प्रमुख मुद्दा है।

भोजन के लिए उपयुक्त संसाधन जुटाने से लेकर उसके निर्माण तक घर के अंदर और बाहर, स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन-व्यवस्था में उत्पादक, मज़दूर, भोजन निर्माण की प्रक्रिया, वितरक, व्यापारी और उपभोक्ता के रूप में –स्त्रियों की बहुत बड़ी भूमिका है। वे घर के सदस्यों की पोषकता का ज़िम्मा भी लेती हैं।

लेकिन कृषि उत्पादों से लेकर अन्य सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को लिंगभेद का शिकार

*प्रो. दिल्ली विश्वविद्लाय

होना पड़ता है। एक ही काम के लिए कम मज़दूरी, और ज़मीन पर स्वामित्व का हक़ तुलनात्मक रूप से कम होना-बहुत बड़ी समस्या है। आज भी स्त्रियों के नाम पर कृषि ज़मीन पुरुष की तुलना में कम है। ये सभी तथ्य स्त्रियों में ग़रीबी और बेरोज़गारी और भोजन के अनुचित प्रतिशत को दिखाते हैं।

महत्वपूर्ण है कि सन् 2023 में 26.7% वयस्क स्त्रियाँ कम या ज़्यादा भोजन असुरक्षा से त्रस्त रहीं।

छोटे किसान जिनमें ज़्यादातर औरतें शामिल हैं, दुनिया के एक तिहाई खाद्य उत्पादन का काम करती हैं। लेकिन कुल कृषि नीतियों का केवल 19 प्रतिशत ही जेंडर आधारित है। इनमें से केवल 13 प्रतिशत ही ग्रामीण महिलाओं को संबोधित है। दुनिया भर में जो आँकड़े उपलब्ध हुए हैं उनके आधार पर यह पाया गया है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अधिकार कृषि योग्य भूमि पर कम है।

ऊर्जा संसाधन तक पहुँच और अधिकार

जलवायु परिवर्तन का बड़ा कारक वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन है। कुल वायुमंडल प्रदूषण का 75 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस से होता है बाक़ी में अन्य प्रदूषण हैं। लेकिन आँकड़े यह भी बताते हैं कि सन् 2022 में 685.2 मिलियन लोगों के पास बिजली की सुविधा नहीं थी। 2.1 प्रतिशत लोगों ने खाना बनाने के लिए ज़्यादा प्रदूषण फैलाने वाले ईंधन का इस्तेमाल किया, विशेषकर अफ़्रीका और एशिया के देशों ने। संसाधन के रूप में ऊर्जा की इन कमियों ने स्त्रियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्रभावित किया, उनकी आजीविका को सीमित किया और बिना पारिश्रमिक देख-रेख और घरेलू कामों में इज़ाफ़ा किया। एक संसाधन के रूप में ऊर्जा का क्षेत्र पुरुष प्रमुखता का रहा है। इस क्षेत्र में स्त्रियाँ नेतृत्वकारी भूमिका और रोज़गार में नगण्य संख्या में होती हैं। तकनीक और प्रबंधन के क्षेत्र में पुरुष बड़ी भूमिकाओं में होते हैं जबकि महिलाएँ अमूमन क्लर्क या प्रशासकीय पदों पर होती हैं जो सीमित प्रभाव और सीमित निर्णय क्षमता वाले होते हैं। सन् 2024 में स्त्रियाँ 23.3 प्रतिशत मंत्री पदों पर थीं लेकिन इनमें से केवल 12 प्रतिशत ही ऊर्जा, प्राकृतिक संसाधन, ईंधन और खनिज के लिए ज़िम्मेदार हैं।

लड़कियों और औरतों को ऊर्जा संसाधन की उपलब्धता और अनुपलब्धता से बहुत फ़र्क़ पड़ता है। यह अपरोक्ष और परोक्ष रूप से उनके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करता है। यह देखा गया है कि जब कोई घर बिजली की सुविधा से जुड़ जाता है तो 9 से 23 प्रतिशत स्त्रियाँ घरों से बाहर रोज़गार प्राप्त करती हैं। स्वच्छ रसोई ईंधन और रसोई जल, प्रदूषण फैलाने वाले ईंधनों से मुक्ति महिला और परिवार वालों को कई बीमारियों और मृत्यु से भी बचाता है। साथ ही गृहस्थी में लगने वाले स्त्री-श्रम के लगभग

40 घंटे प्रति सप्ताह की बचत करता है। जो वैसे रसोई के लिए ईंधन जुटाने और भोजन बनाने में खर्च होते हैं।

ऊर्जा क्षेत्र को सफल होने के लिए ज़्यादा नए उपाय, नए और दुस्साहसी ऊर्जा-तंत्र और समुचित जेंडर संवेदी अर्थव्यवस्था की ज़रूरत है। औरतों और बच्चों को इस क्षेत्र में हर स्तर पर परिवर्तनकारी, नेतृत्वकारी, संचालक और ऊर्जा की उपभोक्ता के रूप में ज़्यादा से ज़्यादा शामिल करने की ज़रूरत है।

सन् 2019 में डेढ़ करोड़ लड़कियाँ घर के प्रदूषण की वजह से अकाल मृत्यु की शिकार हुईं। घर का प्रदूषण , स्त्रियों की अकाल मृत्यु का तीसरा बड़ा कारण है।

अगर विद्युतीकरण होता है घर की स्त्रियाँ तुलनात्मक रूप से 9-23 % तक ज़्यादा रोज़गार के लिए बाहर निकलती हैं।

स्वच्छ रसोई की सुविधा स्त्रियों का हफ़्ते में कम से कम 40 घंटे बचा सकता है।

डिजिटल संबद्धता-

संयुक्त राष्ट्र संघ ने न्यायसंगत ई-प्रसारण सेवाएँ प्रदान करने और डिजिटल संबद्धता को ज़्यादा आर्थिक अनुदान देकर आर्थिक विकास के अवसर के रूप में उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया है। डिजिटल तकनीक निश्चित रूप से बहुत से अवसरों को जन्म दे रही है । साथ ही जेंडर समानता और स्त्री सशक्तिकरण के लिए ख़तरा भी पैदा कर रहे हैं। बढ़ती हुई कंप्यूटर निर्भरता औरतों और लड़कियों को ज़्यादा शैक्षणिक, रोज़गार संबंधी, व्यवसाय संबंधी अवसर उपलब्ध करवाती है और अपनी आमदनी और स्वास्थ्य पर अपने नियंत्रण के लिए आवाज़ उठाने का ज़्यादा अवसर प्रदान करती है। साथ ही साथ नई उभरती तकनीक, जिसमें कृत्रिम मेधा भी शामिल है, स्त्री के प्रति तकनीक आधारित हिंसा की संभावनाओं को कई गुना बढ़ा देता है। अगर इसे हल नहीं किया गया तो इंटरनेट के उपयोग में वैश्विक जेंडर विषमता निम्न और मध्य आय वाले देशों को अनुमानतः $500 खरब का आने वाले पाँच वर्षों में नुक़सान पहुँचाएगा।

'सम्मिट ऑफ द फ्यूचर' में लाए गए 'ग्लोबल डिजिटल कॉम्पैक्ट' में स्थायी विकास के लिए डिजिटल तकनीक को बढ़ावा देने की बात की गई। तकनीक के लिए सामूहिक कार्य और जेंडर समानता के लिए संधान ने जेंडर समानता को एक मुख्य मुद्दा बनाने में मदद की। इसमें सभी औरतों और लड़कियों को डिजिटल क्षेत्र में पूरी बराबरी और अर्थपूर्ण तरीक़े से भाग लेने का अवसर मिला।इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि जेंडर डिजिटल बँटवारे को गंभीरता से लिया जाएगा और तकनीक से संबंधित

ख़तरों पर काम किया जाएगा। इसी सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि औरतों और लड़कियों की विज्ञान, तकनीक और अनुसंधान के क्षेत्र में बराबरी में रुकावट बनने वाली तमाम बाधाओं को दूर किया जाएगा।

सन् 2023 में 70% पुरुषों की तुलना में 65% स्त्रियाँ इंटरनेट का इस्तेमाल करती हैं।

सन् 2020 में पुरुषों की तुलना में 10% स्त्रियों के पास मोबाइल फ़ोन नहीं था।

इंटरनेट के प्रयोग में वैश्विक स्तर पर जेंडर गैप निम्न और मध्य आय वाले देशों को आनेवाले पाँच साल में अनुमानतः $500 बिलियन का नुक़सान देगा।

शिक्षा - डिजिटल समृद्धि के लिए सबके लिए शिक्षा और डिजिटल समृद्धि दिया जाना ज़रूरी है। शिक्षा और जेंडर समानता में गहरा संबंध है। वैश्विक स्तर पर 119.3 लाख लड़कियाँ स्कूल नहीं जातीं। हालाँकि यह प्रतिशत 2015 के बाद से कम हुआ है। युवा लड़कियों में 39 प्रतिशत लड़कियाँ उच्च माध्यमिक स्कूल की शिक्षा पूरी करने में असफल रहती हैं। पढ़ाई और सीखने का खर्च बढ़ता जा रहा है। यूनेस्को के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार सन् 2030 तक वैश्विक आधारभूत कौशल के वार्षिक सामाजिक मूल्य का कुल घाटा 10 ट्रिलियन डॉलर तक पहुँच जाएगा। इसके लिए ज़रूरी है कि जेंडर समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों को लागू किया जाए। लड़कियों को पढ़ने के लिए नक़द पैसे दिए जाएँ, उनके लिए सुरक्षित वातावरण तैयार किया जाए और लिंग आधारित हिंसा को रोकने के लिए सभी कदम उठाए जाएँ। सुसंगत रूप से लैंगिक शिक्षा प्रदान करना, शिक्षकों में जेंडर बैलेंस और विविधता को सुनिश्चित करना और जागरुकता फैलाना आदि मुख्य उपाय हैं जिनसे लड़कियों का स्कूल छूटने के दर को कम किया जा सकता है और उनके बीच कौशल का विस्तार कर सार्वजनीन शिक्षा के उद्देश्य को हासिल किया जा सकता है।

आज भी लगभग 39% लड़कियाँ उच्च माध्यमिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर पातीं।

मूलभूत कौशल कार्यों को सीखने में असफल बच्चों पर किया जानेवाला वैश्विक खर्च 10 खरब डॉलर है।

अगर स्कूल छूटने के दर में महज़ 1% की कमी हो जाए तो वैश्विक श्रम आय में 470 बिलियन (अरब) डॉलर की कमी हो जाती है।

नौकरी और सामाजिक सुरक्षा-

असंगठित रोज़गार और कम मज़दूरी की समस्या को सामाजिक सुरक्षा प्रणाली को मज़बूत करके दूर किया जा सकता है और ग़रीबी को कम किया जा सकता है।

वैश्विक लैंगिक आय के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ अभी भी पुरुषों की तुलना में 20 प्रतिशत कम कमाती है।

सन् 2023 तक दुनिया की 52.4 प्रतिशत आबादी के पास कम से कम एक सामाजिक सुरक्षा की योजना थी। लगभग 2 मिलियन औरतें और लड़कियाँ ऐसी थीं जिनके पास कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं थी।

कम आय वाले देशों में 91.1% पुरुष वर्ग और 86.2% महिला वर्ग असंगठित क्षेत्रों में काम करते हैं। जो राज्य के द्वारा नियमित नहीं हैं।

2 अरब महिलाएँ और लड़कियों को कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं मिली हुई थी।

देखभाल के क्षेत्र में निवेश सन् 2035 तक कम से कम 300 मिलियन रोज़गार सृजित करेगा।

जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि और प्रदूषण–

स्थायी परिवहन, उद्योग धंधों का डिकार्बनाइजेशन, उपभोग और उत्पादन की स्थायी समुचित आदतें जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि और प्रदूषण के तिहरे संकट को कम कर सकता है।

लैंगिक असमानता औरतों और लड़कियों को जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, प्रदूषण के प्रति अरक्षित बनाता है। यह उनके लिए अच्छी जीवनशैली के लिए भिन्न क़िस्म का संकट पैदा करता है, साथ ही जलवायु परिवर्तन को कम करने, उसके अनुकूलन साथ ही ऊर्जा और अर्थ के रूपान्तरण के क्षेत्र में उनके निर्णय लेने की क्षमता और अवसर को प्रभावित करता है।

जलवायु और स्त्रियां

संयुक्त राष्ट्र संघ (यू एन) महिला समिति ने धरती को एक स्वस्थ और स्थायी उपग्रह बनाए रखने के लिए चार स्तंभों की बात की है–

1) पहचानः कृषि के स्थायी विकास के लिए और पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए स्त्रियों के अधिकार, श्रम और ज्ञान का भरपूर उपयोग किया जाए। स्त्रियाँ कृषि और पारिस्थितिकी के प्रश्नों पर अपना विशेष नज़रिया रखती रही हैं।

2) पुनर्वितरण-, जलवायु प्रभाव के प्रति महिलाओं की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने स्थायी आर्थिक मॉडल में न्यायपूर्ण लिंग समानता लाने के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रणाली में निवेश करना।

3) प्रतिनिधित्व- यह सुनिश्चित करना कि पर्यावरणीय निर्णय लेने में विविध क्षेत्रों की महिलाओं की आवाज़ सुनी जाए। सामाजिक आंदोलनों, मंत्रालयों के निर्णयों या अंतरराष्ट्रीय जलवायु वार्ता का प्रतिनिधिमंडल हो, सभी पटलों पर महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित किया जाए।

4) क्षतिपूर्ति– अस्थायी ऋण को रद्द करके, जलवायु वित्त प्रतिबद्धताओं को पूरा करके और हानि और क्षति पहलूओं को आर्थिक सहायता देकर देश के भीतर और विभिन्न देशों के बीच ऐतिहासिक अन्याय पर ध्यान देना।

मुनाफ़े से ज़्यादा लोगों और पृथ्वी को वरीयता देकर एक ज़्यादा भेद-भाव रहित और स्थायी दुनिया का निर्माण संभव है।

सन् 2050 तक 158 मिलियन औरतें और बच्चियाँ चरम ग़रीबी की ओर धकेल दिए जाएँगे।

कम से कम 236 मिलियन और औरतें और बच्चियाँ खाद्य असुरक्षा से ग्रसित होंगे।

सतत विकास के तहत लैंगिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकासशील देशों को प्रतिवर्ष अतिरिक्त 360 बिलियन अमेरिकी डॉलर की आवश्यकता है।

संपत्ति और वित्त में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ाना उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिए महत्वपूर्ण है, वहीं सामाजिक वस्तुओं और सतत विकास में सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं का निर्माण भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए पाँच चीजें सुनिश्चित हैं–

1. संसाधन - स्त्रियों को वित्तीय संसाधनों पर अधिकार दिया जाना चाहिए। यह उनकी बुनियादी ज़रूरतों और व्यवसाय को बढ़ाने में मददगार होगा। लेकिन यह देखा गया है कि वैश्विक स्तर पर सूक्ष्म, लघु और मध्यम आकार के व्यवसाय जो महिलाओं द्वारा चलाए जाते हैं, उन्हें आवश्यकता से कम वित्तीय मदद मिलती है। वित्तीय सहायता को कम करके सन् 2030 तक 12% वार्षिक आय किया जा सकता है।

2. वित्तीय संसाधनों के अलावा स्त्रियों के लिए ज़रूरी है कि उनकी पहुँच ज़मीन, सूचना, तकनीक और नैचुरल संसाधनों तक होनी चाहिए। सन् 2022 तक 2.7

अरब लोगों के पास इंटरनेट की सुविधा नहीं थी, जो कि नौकरी अथवा व्यापार की मूलभूत शर्त है।

उदाहरण के लिए तुर्कमेनिस्तान के अश्गाबात शहर में व्यापार और बाज़ार तथा छोटी-मोटी नौकरियों में ज़्यादातर महिलाएँ शामिल हैं।भारत, चीन, तुर्की आदि पड़ोसी देशों से सूटकेस भरकर मेकअप, फ़ैशनेबल वस्त्र, ऊनी सामान, चाँदी आदि के गहने, चमड़े के बैग, जैकेट, जूते, सिगरेट, मसाले आदि लाकर स्थानीय बाज़ार में बेचना, मुनाफा कमाना , उन पैसों से घर चलाना और पुनः उनसे वस्तुएँ ख़रीदना और बेचना– यह चक्र चलता है। महिलाओं के इस श्रम से न केवल घरेलू अर्थव्यवस्था बल्कि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में भी योग होता है।

जब स्त्रियों को संसाधनों के स्वामित्व, प्रयोग और व्यवहार में बराबरी का अधिकार मिलेगा तब वे अपने पर खर्च कर सकेंगी, अपना जीवन स्तर, शिक्षा, व्यापार के अवसर, रोज़गार आदि पर खर्च कर सकेंगी और एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकेंगी जो उनके लिए काम करता हो।

लैंगिक हिंसा के कारण स्त्री के आर्थिक अधिकारों का संकुचन होता है। स्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण के प्रभाव से दुनिया भर में यह देखा गया है कि लिंग आधारित हिंसा में कमी आती है, राजनीतिक सामाजिक भागीदारी और नेतृत्व में बढ़त हासिल होती है और आपदा जोखिम में कमी आती है।

नौकरीः

जब स्त्रियाँ काम पर घर से बाहर निकलती हैं तब वे अपने अधिकारों और सत्ता के उपयोग की सबसे बेहतर स्थिति में होती हैं। लेकिन सभी काम नहीं बल्कि वे काम जो उत्पादक हों और स्वतंत्रता, समानता, सुरक्षा और सम्मान वाले हों।

वैश्विक स्तर पर 60% महिलाएँ अनौपचारिक क्षेत्र में काम कर रही हैं। कम आय वाले देशों में यह दर और भी ज़्यादा है। महिलाओं को नौकरी के दौरान एक ही काम के लिए पुरुषों से कम तनख़्वाह पर रखा जाता है।

वेतन में पारदर्शिता, समान काम के लिए समान वेतन और देखभाल सेवाओं तक पहुँच जैसे उपाय वेतन में लिंग अंतर को कम करने में मदद करते हैं। इससे कार्यस्थल में लैंगिक समानता आ सकती है।

जहाँ महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम है, या नहीं है, वहाँ उनकी अर्थवान भागीदारी को बढ़ाया जा सकता है, जैसे विज्ञान, तकनीक, अभियांत्रिकी आदि।

दुनिया में अगर केवल रोज़गार के क्षेत्र में लैंगिक असमानता दूर कर दिया जाए तो कुल जीडीपी का 20% बढ़ जाएगा। जब स्त्री उद्यमी सफल होंगी तो वे स्वयं रोज़गार का निर्माण और संधान कर सकेंगी।

समयः घर की देखभाल, खाना खाने की ज़रूरत, परिवेश की सफ़ाई, अपनी और अपने पर निर्भर लोगों की सुरक्षा और संरक्षण करने की आवश्यकता सबको पड़ती है। यह केवल किसी एक लिंग विशेष का काम नहीं है। वर्तमान सामाजिक संस्थाएँ जो देखभाल के लिए मौजूद हैं उनके अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि महिलाओं और लड़कियों के श्रम सत्ता और अवस्था का भेद तो है ही उनके श्रम का भयंकर दोहन भी है। एक औसत स्त्री बिना पारिश्रमिक के तीन गुना अधिक श्रम देखभाल के कामों, घरेलू कामों में खर्च करती है।

– अवैतनिक देखभाल वाले कार्य में लैंगिक असमानता एक बड़ा कारण है, जो महिलाओं और लड़कियों के लिए शिक्षा, अच्छे वेतन वाले काम, सार्वजनिक जीवन, आराम और अवकाश के समय और अवसरों को सीमित करती है।

– अवैतनिक काम का मूल्य कम आँका गया है। घरेलू कामों का कम भुगतान किया गया है।

वैश्विक स्तर पर महिलाओं के अवैतनिक देखभाल कार्य का मौद्रिक मूल्य सालाना कम से कम 10.8 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर है, जो दुनिया के तकनीकी उद्योग के आकार का तीन गुना है।

देखभाल प्रणालियों को बदलने के लिए निवेश करना एक तिहरी जीत है: यह महिलाओं को देखभाल क्षेत्र में नौकरियां पैदा करने और जरूरतमंद लोगों के लिए देखभाल सेवाओं तक पहुंच बढ़ाने के साथ-साथ अपना समय पुनः प्राप्त करने की अनुमति देता है। यह अनुमान लगाया गया है कि देखभाल सेवाओं में मौजूदा अंतराल को कम करने और अच्छे कार्य कार्यक्रमों का विस्तार करने से 2035 तक लगभग 300 मिलियन नौकरियां पैदा होंगी।

जब देखभाल तक पहुंच को एक अधिकार माना जाता है, और सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के प्रावधान के माध्यम से राज्य के साथ जिम्मेदारी साझा की जाती है, और मातृत्व अवकाश और शिशु देखभाल सुविधाओं जैसे समर्थन के माध्यम से निजी क्षेत्र के साथ, महिलाओं को औपचारिक श्रम बाजार में भाग लेने के लिए सक्षम किया जाता है। तब महिलाओं को अवसर मिलता है कि वे आय उत्पन्न करने के लिए अपने समय का उपयोग करें।

सुरक्षा

–स्त्रियों की सुरक्षा का मसला बहुआयामी है। लैंगिक असुरक्षा का मसला तो है ही, जिसमें यौन हिंसा आती है, इसके साथ ही खाद्य असुरक्षा, दंगा-फसाद, सामाजिक असुरक्षा भी शामिल है। स्त्री के साथ कार्यस्थल या घर में की गई हिंसा, उसके अधिकारों का उल्लंघन है और उसकी आर्थिक भागीदारी को संकुचित करता है।

सन् 2022 में दंगाग्रस्त, विवादित क्षेत्रों में रहने वाली औरतों और लड़कियों की संख्या 614 मिलियन थी, यह आँकड़ा 2017 के आँकड़े से 50% ज़्यादा था।

– इस तरह की चीजें समाज में पूर्वमौजूद आर्थिक असमानता को बढ़ा देती हैं जैसे अवैतनिक श्रम में महिलाओं की अनुपातहीन भागीदारी। महिलाओं के बीच मौजूद वैविध्य के कारण यह संकट और बढ़ जाता है जैसे प्रवासी महिलाओं में गैर-प्रवासी महिलाओं की तुलना में हिंसा से गुजरने का दर ज़्यादा होता है।

– शोध बताते हैं कि अगर महिलाओं के हाथ में नगद धन दिया जाए तो उनके बीच मृत्यु का दर कम किया जा सकता है। यह आर्थिक सशक्तिकरण और सुरक्षा के संबंध को दर्शाता है।

– असुरक्षा किसी भी रूप में स्त्री की आर्थिक शक्ति को कम करती है, उन्हें ग़रीबी में ढकेलती है और उन्हें उनके अधिकार और संभावनाओं का बोध होने से रोकती है।

– यह ज़रूरी है कि स्त्री की सुरक्षा के संदर्भ में सभी क्षेत्रों में विशेषकर निजी क्षेत्रों में काम किया जाए, उन सामाजिक नियमों में बदलाव किए जाएँ जो महिलाओं को आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों से कम करके देखती हैं।

अधिकांश स्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण के मूल में मानव अधिकार है। अन्यायपूर्ण, पितृसत्तात्मक आर्थिक व्यवस्था जेंडर असमानता और विभाजनकारी सामाजिक नियमों को बढ़ावा देती है और सूचना, नेटवर्क, रोज़गार और संपत्ति हासिल करने के स्त्री के प्रयासों के आड़े आती है।

–- महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण जिसके मूल में मानव अधिकार है के महत्व को स्वीकार करते हुए समाज और अर्थव्यवस्थाओं द्वारा महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में बाधक स्थितियों पर नज़र रखना भी महत्वपूर्ण है।

–- महिला मानव अधिकार रक्षकों द्वारा महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा और

समर्थन के साथ-साथ ही उनके अधिकारों के हनन के लिए जवाबदेह तत्वों पर अंकुश लगाने की दिशा में काम करने की आवश्यकता है। महिलाओं के अधिकारों के हनन का दस्तावेज़ीकरण करना, लिंग आधारित आँकड़े एकत्र करना, उनके लिए अदालती कार्रवाइयाँ करना साथ ही यह सुनिश्चित करना कि सभी निर्णायक क्षेत्रों में महिलाओं की आवाज़ को प्रोत्साहन दिया जाए।

*****

वायु प्रदूषण और पराली : समस्या और समाधान

प्रो. चंद्रदेव यादव*

वर्तमान समय सूचना और प्रौद्योगिकी तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता का है। इनके बल पर दुनिया विकास के शीर्ष पर पहुँचने को आतुर है। मनुष्यों ने अपनी विकास यात्रा में कुछ दशकों में जो कुछ हासिल किया है, वह स्वप्न सरीखा लगता है। लेकिन मंगल और चाँद पर बस्तियां बसाने के अभियान में लगा हुआ मनुष्य त्वरित विकास के पार्श्व में कुछ ऐसे अवशिष्ट भी छोड़ता जा रहा है, जो उसके लिए अत्यंत घातक है। मेरा इशारा पर्दूषण और औद्योगिक कचरे की ओर है। इससे सिर्फ धरती ही नहीं, अन्तरिक्ष भी प्रभावित हो रहा है। औद्योगिक कचरे से हवा, पानी और मिट्टी प्रदूषित हुई है। इसमें कुछ योगदान कृषि क्षेत्र का भी है। उन्नत खेती के लिए जिस तरह अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जा रहा है, उससे मृदा, जल और वायु की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। उन्नत खेती के लिए किसान आधुनिक कृषि यंत्रों पर निर्भर हैं। इन यंत्रों से भी कुछ नई समस्याएं पैदा हुई हैं। अत्याधुनिक मशीनों से खेत की जुताई से केंचुए नष्ट हो गए। इन मशीनों से धान और गेहूं की कटाई के कारण खेतों में इतना अधिक पुआल और डंठल शेष रह जा रहे हैं कि उनका प्राकृतिक रूप से निपटान करना टेढ़ी खीर बनता जा रहा है। इसीलिए अगली फसल बोने से पहले खेत को तैयार करने के लिए किसान पुआल जलाने को विवश हो जाते हैं।

प्रदूषण की समस्या भारत में लगभग हर जगह है, किन्तु उत्तर भारत के कुछ खास शहरों में यह समस्या अत्यंत गंभीर है। दिल्ली और एनसीआर की हवा बारहों महीने दूषित रहती है। यह इतना दमघोंटू हो जाती है कि इन इलाकों में सांस लेना मुश्किल हो

*प्रो. जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली

जाता है। इस वर्ष मानसून की अच्छी बारिश के कारण अगस्त में हवा की गुणवत्ता लगातार बेहतर बनी हुई है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार एनसीआर के विभिन्न क्षेत्रों का वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) 'अति उत्तम' श्रेणी में पहुँच गया है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी 31 अगस्त का आया नगर का वायु गुणवत्ता सूचकांक 51 है। ताज़ा सूचना के अनुसार दिल्ली के अधिकांश क्षेत्रों के वायु गुणवत्ता सूचकांक का औसत 79 है। यह संतोषजनक है। लेकिन पिछले कई वर्षों से दिल्ली-एनसीआर में नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी में हवा की गुणवत्ता बेहद खतरनाक श्रेणी में चली जाती रही है। सामान्यतया इन महीनों में दिल्ली गैस चैम्बर में तब्दील हो जाती है। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार अत्यंत दूषित हवा के कारण दिल्ली-एनसीआर में रहने वाले लोगों की औसत उम्र पांच-सात साल कम हो जाती है। बेहद दूषित हवा के अनेक कारण हैं, जिनमें एक कारण पराली जलाने से उत्पन्न धुआं भी है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के संयुक्त निदेशक (अनुसंधान) श्री इन्द्रमणि मिश्रा ने 'फसल अवशेष प्रबंधन द्वारा पर्यावरण सुरक्षा' पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है कि "फसल अवशेष जलाने में चीन, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका शीर्ष पर हैं। भारत में इसको सर्वाधिक पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जलाया जाता है।" सम्पूर्ण भारत की बात करें तो पराली जलाने का काम पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल में किया जाता है। इन राज्यों में पुआल ही नहीं, गेहूं के अवशेष भी जलाये जाते हैं। उत्तर भारत में अक्टूबर में धान की कटाई की जाती है और नवम्बर-दिसम्बर में गेहूं की फसल बोई जाती है। धान की कटाई और गेहूं की बुवाई के बीच बहुत कम समय होता है। मशीनों से काटे गए धान के लंबे-लंबे डंठलों के अवशेष यानी पुआल या पराली गेहूं की बुवाई के लिए खेत की जुताई करने में सर्वाधिक बाधक होते हैं। इसीलिए यहाँ के किसान धान के अवशेष को जला देते हैं। पुआल को जलाने का काम इतने बड़े पैमाने पर होता है कि इससे निकलने वाले धुएं की चपेट में प्रति वर्ष दिल्ली और एनसीआर आ जाते हैं। इससे हवा की गुणवत्ता बुरी तरह प्रभावित होती है। दिल्ली-एनसीआर गैस चैम्बर में तब्दील हो जाते हैं जिससे स्वास्थ्य जोखिम बढ़ जाता है–विशेषतया सांस और हृदय रोग वाले मरीजों को बहुत परेशानी होती है। इससे आँखों में जलन होती है।

इन्द्रमणि मिश्रा ने लिखा है कि हमारे देश में प्रति वर्ष धान का कुल अवशेष 154.59 मीट्रिक टन होता है। कुछ किसानों को तकनीक की जानकारी होती है और बाकी इससे अनभिज्ञ हैं। लेकिन जिन किसानों को तकनीक की जानकारी होती है वे भी फसल अवशेष के निपटान के लिए उपलब्ध वैकल्पिक साधनों का प्रयोग नहीं करते हैं। दोनों तरह के किसान फसल अवशेषों को जला देते हैं। वे फसल अवशेषों का प्रबंधन नहीं करते

हैं। इसीलिए पराली जलाने से प्रति वर्ष 0.236 टन नाइट्रोजन, 0.009 टन फॉस्फोरस, एवं 0.200 टन पोटाश का नुकसान होता है। (वही) सही जानकारी और तकनीकी ज्ञान के अभाव में और अधिक अवशेष का उत्पादन होता है। पराली जलाने से मृदा के भौतिक गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पराली का सही उपयोग करके मृदा में जीवाश्म पदार्थों को सुरक्षित किया जा सकता है। फसल अवशेष जलाने से ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने वाली तथा अन्य हानिकारक गैसों से मीथेन कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड और नाइट्रोजन के अन्य ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। इसका प्रभाव मनुष्यों और पशुओं के अलावा मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। लोगों को सांस लेने में दिक्कत होती है। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार दमघोंटू वातावरण के चलते पिछले साल दिल्ली के पक्षी विहारों में सर्दियों में साइबेरिया से आने वाले प्रवासी पक्षियों की संख्या में बहुत कमी आई। फसल अवशेषों को जलाने से वैश्विक ऊष्मा में वृद्धि होती है। अपने यहाँ के फसल अवशेषों को जलाने से हम प्रत्यक्ष रूप से धुआं, गर्मी और ज़हरीली गैसों के प्रभाव में आते हैं। जलते हुए अवशेष हवा में कार्बन मोनो ऑक्साइड, ओजोन और सूक्ष्म कण पदार्थ (PM2.5) भर देते हैं।

हमारे देश में फसल अवशेष जलाने पर अंकुश लगाने के लिए राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी नियम लागू हैं, किन्तु वे प्राय: निष्प्रभावी रहे हैं। वास्तव में हमारे यहाँ फसल अवशेषों के मूल्य सीमित हैं और किसानों के पास अगली फसल की बुवाई के लिए बहुत कम समय होने के कारण किसान इन अवशेषों का अति शीघ्र निपटान करना चाहते हैं। फसल अवशेष के निपटान हेतु सुझाये गए तरीकों और तकनीक को न अपना कर किसान इनको जलाना बेहतर समझते हैं। "किसानों के दबाव के कारण पिछले साल फसल अवशेष जलाने पर देशव्यापी प्रतिबंध हटा लिया गया, क्योंकि किसान इस तरह के कानूनों को पहले से गंभीर आर्थिक परेशानियों से जूझ रहे छोटे किसानों के लिए और परेशानी बढ़ाने वाला मानते हैं।" (एमआईटी की एक रिपोर्ट)।

एमआईटी (मेसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी) और हॉवर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने 2003-09 के मध्य भारत में पराली जलाने वाले स्थानों और पराली जलाने के समयों का परीक्षण किया और पाया कि इन घटनाओं से जनसंख्या जोखिम, अकाल मृत्यु और आर्थिक हानि में सर्वाधिक वृद्धि उई। इसके बाद उन्होंने उन लक्षित उपायों को निर्धारित किया कि किस तरह छोटे पैमाने पर लक्षित उपाय सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य संकट को कम कर सकते हैं। (कम्युनिकेशन पत्रिका में प्रकाशित) उन शोधकर्ताओं ने फसल अवशेष जलाने और उससे होने वाले प्रतिकूल स्वास्थ्य-प्रभावों को कम करने के उपायों की भी पहचान की। वे आशान्वित थे कि अगर उनके उपायों को अपनाया जाए और किसानों को प्रोत्साहन दिया

जाए तो उन पर अनावश्यक आर्थिक बोझ डाले बिना अवशेषों को जलाने से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम किया जा सकता है।

पराली का जलाया जाना एक बड़ी राष्ट्रीय समस्या है। यह केवल लाखों किसानों की समस्या नहीं, बल्कि पराली के जलने से उठे धुएं और उसमें मिश्रित खतरनाक गैसों से प्रभावित होने वाले करोड़ों नागरिकों की भी समस्या है। धान की कटाई के बाद उसके अवशेष का अतिशीघ्र निपटान अगली फसल की बुवाई के लिए आवश्यक है। यह राष्ट्रीय खाद्यान्न-निर्भरता से जुड़ा मामला है। समय से गेहूं या रबी की अन्य फसलों की बुवाई न होने से लाखों लोगों को दो वक्त की रोटी मिलना मुश्किल होगा। दूसरी तरफ यह भी सचाई है कि पराली के धुएं से करोड़ों लोग स्वास्थ्य-संकट का सामना करते हैं और उनका दैनिक कार्य प्रभावित होता है। इसलिए ऐसा कुछ किया जाना चाहिए जिससे किसानों का कार्य भी सुचारु रूप से संपन्न हो सके और नागरिकों को स्वास्थ्य-संबंधी किसी तरह का जोखिम न उठाना पड़े।

पराली का उपयोग मुख्यतया चारे के लिए (22 प्रतिशत) किया जाता रहा है। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि धान का पुआल पशुओं के चारे के काम भी नहीं आता, क्योंकि इसमें सिलिका एवं ऑक्जेलिक अम्ल की मात्रा अधिक होती है, जिसे पशु आसानी से नहीं पचा पाते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि पूर्वांचल के किसान जाड़े भर अपने पशुओं को पराली की कुट्टी खिलाते हैं। दिल्ली के पशुपालक और डेयरी वाले अपने पशुओं को खिलाने के लिए गेहूं के भूसे के अलावा पराली की कुट्टी भी मंगाते हैं। लेकिन समस्या दो तरह से है। एक तो किसानों के पास अब बहुत सीमित मात्रा में पशु होते हैं जिससे बड़ी भारी तादाद में उत्पन्न पराली की खपत चारे के रूप में पहले जितनी नहीं हो पाती। दूसरा कारण है अत्याधुनिक मशीनों से धान और गेहूं की कटाई। इससे भारी मात्रा में फसल का अवशेष खेतों में बचा रह जाता है, जिससे कृषि-कार्य बाधित होता है। इसीलिए अधिकांश किसान इस अवशेष को खेतों में ही जला देते हैं। नवम्बर-दिसम्बर में हवा की गति बहुत धीमी होती है, इसलिए यह धुआं अधिक जानलेवा हो जाता है।

यही कारण है कि फसल अवशेष को न जलाकर उसके उचित प्रबंधन की आवश्यकता है। पिछले कई वर्षों से वैज्ञानिकों ने पराली को खेत में ही त्वरित गति से गलाने के उपाय सुझाए थे, लेकिन वे बहुत अधिक कारगर नहीं हुए। सरकार ने भी इसके लिए किसानों को प्रोत्साहन दिया था। पराली के अपघटन (सड़न/ गलन) के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने पूसा डीकंपोजर का ईजाद किया है, जिसकी मदद से फसल अवशेषों को खेत में ही गलाकर खाद बना दिया जाता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक अशोक कुमार सिंह ने संस्थान द्वारा जारी पुस्तक के आमुख में लिखा है कि “पूसा डीकंपोजर कैप्सूल एवं तरल स्वरूप में पहले से ही उपलब्ध है और अब

यह पाउडर के रूप में भी विभाजित किया गया है जो सीधा पानी में घोल दिया जाता है और इस घोल को खेत की पराली को उपचारित या स्प्रे किया जाता है। इससे किसानों को पराली जलाने से छुटकारा मिल जाता है। पूसा डीकंपोजर कवक युक्त जैविक उत्पाद है जो पराली को खाद में बदलने में 100 प्रतिशत कारगर है और इसका उपयोग करने से पर्यावरण को किसी प्रकार की हानि भी नहीं होती है।" फसल अवशेष के अपघटन के लिए कुछ मशीनें भी मौजूद हैं।

यही नहीं, फसल अवशेष के अपघटन के दूसरे विकल्प भी मौजूद हैं। मशीनों से खाद बनाई जा सकती है, पशुचारा बनाया जा सकता है और यूरिया मोलासेस मिनरल बनाया जा सकता है। यही नहीं इन अवशेषों से बायोगैस का भी उत्पादन किया जा सकता है। इस तरह किसानों पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ डाले बगैर किसानों और नागरिकों के हितों के साथ पर्यावरण की भी रक्षा की जा सकती है। सभी के हितों की रक्षा हमारा पहला कर्तव्य है।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकार: समकालीन चुनौतियां और नवाचार

प्रो. शांतेश कुमार सिंह*

सारांश

यह शोध-पत्र वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की अवधारणा, ऐतिहासिक विकास, समकालीन चुनौतियों और संभावित समाधानों पर केंद्रित है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि मानव अधिकार केवल कानूनी प्रावधान नहीं बल्कि मानवीय गरिमा, न्याय और समानता की आधारशिला हैं। 1948 के 'संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार घोषणा-पत्र' से लेकर आधुनिक वैश्वीकरण और तकनीकी युग तक, मानव अधिकार विमर्श लगातार विकसित हुआ है। शरणार्थी संकट, लैंगिक असमानता, डिजिटल निजता, जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य असमानता जैसे मुद्दे आज इसे नई चुनौतियों के सामने खड़ा कर रहे हैं। यह शोध दर्शाता है कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग, कानूनी सुधार, तकनीकी नवाचार और सामाजिक चेतना के माध्यम से ही मानव अधिकार मूल्यों की रक्षा और प्रवर्तन संभव है।

मूलभूत शब्द (कीवर्ड्स): मानव अधिकार, वैश्वीकरण, शरणार्थी संकट, लैंगिक समानता, डिजिटल अधिकार, जलवायु न्याय, स्वास्थ्य असमानता

परिचय

मानव अधिकार आधुनिक अंतरराष्ट्रीय राजनीति, क़ानून और समाजशास्त्र का सबसे बुनियादी तथा व्यापक विषय है। ये अधिकार केवल औपचारिक क़ानूनी प्रावधान

*प्रो. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भर नहीं हैं, बल्कि मानव सभ्यता की नैतिक और मानवीय गरिमा की आधारशिला के रूप में स्थापित हैं। मानव अधिकारों का मूल उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के सम्मान, स्वतंत्रता और न्यायपूर्ण जीवन सुनिश्चित करना है। इन्हें केवल राज्य या संस्थाओं की देन नहीं माना जा सकता, बल्कि ये सार्वभौमिक मानवीय अस्तित्व से जुड़े ऐसे मौलिक अधिकार हैं, जिनका संरक्षण और संवर्धन सभ्य समाज की प्राथमिक जिम्मेदारी है (Sangiovanni, 2017)।

1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित **'संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार घोषणा-पत्र' (Universal Declaration of Human Rights : UDHR)** मानव **अधिकारों** के आधुनिक इतिहास में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस घोषणा-पत्र ने जीवन, स्वतंत्रता, समानता, अभिव्यक्ति, धर्म, विचार तथा सांस्कृतिक पहचान जैसे अधिकारों को सार्वभौमिक, अविभाज्य और अपरिहार्य घोषित किया। यह दस्तावेज़ न केवल आधुनिक अंतरराष्ट्रीय कानून की दिशा निर्धारित करता है, बल्कि विभिन्न राष्ट्रीय संविधानों, लोकतांत्रिक आंदोलनों और न्यायिक व्याख्याओं पर भी गहरा प्रभाव छोड़ता है। भारत का संविधान हो या दक्षिण अफ्रीका का, अमेरिकी नागरिक अधिकार आंदोलन हो या लैटिन अमेरिका के लोकतांत्रिक संघर्ष–हर जगह इस घोषणा-पत्र की छाप स्पष्ट दिखाई देती है (United Nations। General Assembly,1949)।

समकालीन विश्व परिदृश्य में मानव अधिकारों का स्वरूप और इनका प्रवर्तन स्थिर नहीं रहा है, बल्कि निरंतर बदलते राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों के साथ इनमें विविध आयाम जुड़ते रहे हैं। शीत युद्ध के दौरान मानव अधिकार अक्सर वैचारिक प्रतिस्पर्धा का उपकरण बने। पश्चिमी गुट नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर बल देता रहा, जबकि साम्यवादी गुट सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को प्राथमिकता देता था (Mutua, 2017)। किंतु शीत युद्धोत्तर काल में वैश्वीकरण ने मानव अधिकारों के विमर्श को नई दिशा दी। एक ओर वैश्विक संचार क्रांति, अंतरराष्ट्रीय संस्थानों की सक्रियता और लोकतंत्रीकरण की लहर ने अवसरों का विस्तार किया, वहीं दूसरी ओर असमानता, सांप्रदायिक संघर्ष, आतंकवाद और पर्यावरण संकट जैसी चुनौतियों ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता पर प्रश्नचिह्न खड़े किए (Goodale, 2013)।

21वीं सदी में मानव अधिकार विमर्श और भी जटिल हुआ है (Kapur, 2012)। नागरिक स्वतंत्रता, लैंगिक समानता, जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकार, प्रवासी और शरणार्थी अधिकार, तथा आदिवासी और स्थानीय समुदायों के अधिकार जैसे विषय बहस के केंद्र में आ गए हैं। इसके साथ ही, तकनीकी क्रांति ने डिजिटल निजता और डाटा सुरक्षा को मानव अधिकारों के नए आयाम के रूप में प्रस्तुत किया है (Shehu

& Shehu, 2023) सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और निगरानी तंत्र ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्यीय नियंत्रण के बीच एक नई बहस को जन्म दिया है।इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असमानताएँ अब मानव अधिकार के प्रश्न से सीधे जुड़ चुकी हैं। प्राकृतिक आपदाओं, जल संकट और प्रदूषण से प्रभावित समुदाय केवल पर्यावरणीय नहीं, बल्कि मानवीय संकट का सामना कर रहे हैं (Mayrhofer, 2024)। इसी प्रकार वैश्विक स्वास्थ्य संकट–विशेषकर कोविड-19 महामारी–ने स्वास्थ्य संबंधी असमानताओं, वैक्सीन वितरण की राजनीति और सार्वजनिक स्वास्थ्य तक समान पहुंच के प्रश्न को मानव अधिकार विमर्श का अभिन्न हिस्सा बना दिया (Sekalala et all, 2021)

मानव अधिकार की अवधारणा और ऐतिहासिक विकास

मानव अधिकार की संकल्पना उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता। पश्चिमी विचार परंपरा में जॉन लॉक, रूसो और कांट जैसे दार्शनिकों ने स्वतंत्रता, समानता और प्राकृतिक अधिकारों की स्थापना की (Fabio, 2020)। अमेरिका की स्वतंत्रता घोषणा (1776) और फ्रांसीसी अधिकार घोषणा (1789) ने आधुनिक मानव अधिकार विमर्श को दार्शनिक आधार दिया (Morsink,2009)। वहीं भारत समेत पूर्वी देशों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी अवधारणाएँ सबके लिए समानता, करुणा और अहिंसा का संदेश देती हैं (Kumar, 2024)।

20वीं शताब्दी के प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों ने मानव अधिकारों की रक्षा के लिए वैश्विक-मूलभूत संस्थागत तंत्र की आवश्यकता को स्पष्ट किया। 1945 में संयुक्त राष्ट्र का गठन और 1948 में UDHR के पारित होने के बाद नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (ICCPR व ICESCR) लागू हुए–इनसे मानव अधिकार कानूनी ढांचे को मजबूती मिली (Duan, 2017)।

समकालीन चुनौतियां

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद यह उम्मीद की जा रही थी कि लोकतंत्र का प्रसार पूरे विश्व में राजनीतिक स्थिरता और मानव अधिकारों के सम्मान को सुनिश्चित करेगा। वास्तव में 1990 के दशक में लोकतंत्र की लहर ने कई देशों में अधिनायकवादी व्यवस्थाओं को कमजोर किया और बहुदलीय राजनीति तथा नागरिक स्वतंत्रताओं को मज़बूती मिली (Cingranelli & Richards, 1999)। किंतु 21वीं सदी के प्रारंभ से ही यह स्पष्ट होने लगा कि लोकतंत्र की यह उपलब्धि स्थायी नहीं है। आज भी अनेक क्षेत्रों में अधिनायकवादी शासन, राजनीतिक दमन और अस्थिरता मौजूद हैं, जिसने

लोकतांत्रिक मूल्यों और मानव अधिकारों को गंभीर चुनौती दी है। म्यांमार इसका प्रमुख उदाहरण है, जहाँ 2021 में हुए सैन्य तख्तापलट ने निर्वाचित सरकार को सत्ता से बेदखल कर दिया। सैन्य शासन ने न केवल राजनीतिक अभिव्यक्ति पर रोक लगाई बल्कि प्रदर्शन करने वालों के विरुद्ध हिंसक दमन किया (King, 2022)। हांगकांग में भी लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं पर लगातार अंकुश लगाया गया है। विशेष रूप से 2019 के बाद चीन द्वारा लागू किए गए राष्ट्रीय सुरक्षा कानून ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन की स्वतंत्रता और न्यायिक स्वतंत्रता को गंभीर रूप से सीमित कर दिया। लोकतंत्र समर्थक नेताओं की गिरफ़्तारी और मीडिया पर सेंसरशिप इसके स्पष्ट उदाहरण हैं (Lee & Chan,2023)। अफ्रीका और पश्चिम एशिया के कई देशों में आज भी अस्थिरता व्याप्त है। अफ्रीका में सूडान, इथियोपिया और माली जैसे देशों में तख्तापलट और गृहयुद्ध ने लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर किया है। पश्चिम एशिया में सीरिया और यमन के संघर्ष ने न केवल राजनीतिक ढांचे को ध्वस्त किया बल्कि नागरिकों को व्यापक स्तर पर विस्थापित भी किया (Ero & Mutiga,2024)। मध्य एशिया के देशों में राजनीतिक विरोधियों और पत्रकारों के उत्पीड़न की घटनाएँ लगातार सामने आती रहती हैं। स्वतंत्र चुनावों का अभाव और राजनीतिक असहमति के प्रति असहिष्णु रवैया इन समाजों में लोकतांत्रिक विकास को बाधित कर रहा है (Omelicheva, 2015)। इसी प्रकार, रूस-यूक्रेन संघर्ष ने भी लोकतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर गहरा असर डाला है। रूस में असहमति की आवाज़ों को दबाया जा रहा है, स्वतंत्र मीडिया को नियंत्रित किया गया है और विपक्षी नेताओं को जेल में डाला गया है। दूसरी ओर, यूक्रेन में जारी युद्ध ने नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं को संकट में डाल दिया है (Bakke et al।, 2025)। इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र का प्रसार अपने आप में पर्याप्त नहीं है। जब तक राजनीतिक संस्थाएँ मजबूत, पारदर्शी और जवाबदेह नहीं होंगी तथा नागरिक समाज को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अवसर नहीं मिलेगा, तब तक अधिनायकवाद और राजनीतिक दमन मानव अधिकारों की सबसे बड़ी बाधा बने रहेंगे।

21वीं सदी में शरणार्थी संकट और प्रवासन वैश्विक मानव अधिकार विमर्श की सबसे बड़ी मानवीय चुनौती बनकर उभरे हैं। युद्ध, राजनीतिक अस्थिरता, जातीय हिंसा, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक असमानता ने करोड़ों लोगों को अपने घर और समुदाय छोड़ने पर विवश किया है। संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त (UNHCR) के अनुसार 2023 तक विश्वभर में 11 करोड़ से अधिक लोग विस्थापित हो चुके थे, जिनमें शरणार्थी, आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति, शरणार्थी दर्ज़ा पाने की प्रतीक्षा कर रहे लोग और बिना नागरिकता वाले लोग शामिल हैं (Nwosu & Okafor, 2024)। सीरिया, अफगानिस्तान, यूक्रेन और सूडान जैसे देशों में युद्ध और राजनीतिक अस्थिरता ने बड़े पैमाने पर पलायन को जन्म दिया, जबकि जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न सूखा,

बाढ़ और समुद्र-स्तर की वृद्धि ने "जलवायु शरणार्थी" नामक नई श्रेणी को जन्म दिया है। ऐसे शरणार्थियों को भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा और सम्मानजनक आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, जिससे उनके मौलिक मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है। शरणार्थी शिविरों में भीड़भाड़ और अस्वास्थ्यकर वातावरण स्वास्थ्य संकट को गहरा देते हैं, महिलाओं और बच्चों को यौन हिंसा व शोषण का खतरा बढ़ जाता है तथा शिक्षा की कमी उनके भविष्य को अनिश्चित बना देती है। यह संकट केवल मानवीय समस्या ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति और सुरक्षा के लिए भी गंभीर चुनौती है, क्योंकि विकसित देशों में शरणार्थियों का आगमन अक्सर राजनीतिक ध्रुवीकरण, राष्ट्रवाद और विदेशी-विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म देता है (Brito, 2024)।

हालाँकि महिलाओं हेतु कई वैश्विक सुधार हुए हैं, परंतु तमाम देशों में महिलाओं को आज भी शिक्षा, रोजगार, सार्वजनिक जीवन व राजनीतिक भागीदारी में समान अवसर नहीं मिलते। अफगानिस्तान में तालिबान-शासन के चलते शिक्षा एवं अधिकारों का हनन, भारत में घरेलू हिंसा, लैंगिक वेतन असमानता, महिलाओं के विरुद्ध अपराध, LGBTQ+ अधिकारों पर वैश्विक बहस—यह सब लैंगिक असमानता जैसे मानव अधिकार उल्लंघनों के मौजूदा उदाहरण हैं (Lenz,2017)।

डिजिटल क्रांति के युग में निजता, साइबर सुरक्षा और 'निगरानी पूँजीवाद' जैसी समस्याएं गहराई से उभर रही हैं। सरकारें और कंपनियाँ नागरिकों के व्यक्तिगत डेटा का संग्रह कर उसका दुरुपयोग कर सकती हैं—आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, फेस रिकग्निशन टेक्नोलॉजी, सोशल मीडिया ट्रोलिंग, फेक न्यूज़ जैसे नवाचार जहां लोकतंत्र को सबल कर सकते हैं वहीं निगरानी व दमन की नई आशंका भी प्रस्तुत करते हैं (Curran, 2023)।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन वैश्विक मानव अधिकार विमर्श के केंद्र में आ चुका है। स्वच्छ हवा, पानी, आहार और सुरक्षित आवास के अधिकार जलवायु संकट की वजह से गंभीर खतरे में हैं। जिन छोटे द्वीपीय देशों का अस्तित्व समुद्र-स्तर वृद्धि से संकट में है, वहाँ 'जलवायु शरणार्थी' की समस्या और बढ़ जाएगी (Davies ET AL।, 2017)

इसके साथ ही आतंकवाद भी वैश्विक मानव अधिकार के समक्ष एक चुनौती के रूप में विद्यमान है, आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए कई देशों में कठोर कानून (जैसे अमेरिका का 'पेट्रियट एक्ट', भारत का 'UAPA') बनाए गए हैं; किंतु इनमें कई बार नागरिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व मानव अधिकारों का हनन भी देखा जाता है। सुरक्षा और स्वतंत्रता के बीच संतुलन मानव अधिकार बहस का केंद्रीय मुद्दा बन चुका है(Kelso et al।, 2011)

कोविड-19 महामारी ने स्वास्थ्य सेवा को मूलभूत मानव अधिकार के रूप में स्थापित किया। वैश्विक स्तर पर वैक्सीन असमानता, चिकित्सा संसाधनों की कमी, मानसिक स्वास्थ्य संकट–इन सबने समाज में गहरी असमानता को उजागर किया है (Valerio,2020)।

वैश्विक स्तर पर नवाचार

अंतरराष्ट्रीय तंत्र और कानून

संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद (UNHRC), अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय (ICC), क्षेत्रीय न्यायालय, NGO नेटवर्क्स–इन सबका समन्वित प्रयास मानव अधिकार उल्लंघन की निगरानी व दंड में लगातार सक्रिय है (Appel, 2018)।

डिजिटल मानव अधिकार चार्टर

यूरोपीय संघ का 'GDPR' नागरिक निजता को मौलिक अधिकार मानता है। भारत ने 'डिजिटल डेटा सुरक्षा अधिनियम' लागू किया है। निजी डेटा संरक्षण व ऑनलाइन अधिकारों का दायरा बढ़ाया गया है (Singh & Absar, 2021)।

सतत विकास लक्ष्य (SDGs, 2030)

सतत विकास लक्ष्य की 17 प्राथमिकताएँ–गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, लैंगिक समानता, जलवायु कार्रवाई–सीधे मानव अधिकारों से जुड़ती हैं। देश SDGs को अपनी नीति का आधार बनाकर मानव अधिकार प्रवर्तन को मजबूत कर रहे हैं (Dulume, 2019)।

नवीन न्याय मॉडल

ट्रांज़िशनल जस्टिस (संक्रमणकालीन न्याय) और **रेस्टोरेटिव जस्टिस (पुनर्स्थापनात्मक न्याय)** मॉडल, न्यायिक नवाचार, सुलह-मूलक कानून, युद्धग्रस्त समाजों में शांति-स्थापना हेतु प्रमाणित हो रहे हैं। ICC जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थान विधि व न्याय में नवाचार के स्रोत बने हैं (Sharp, 2018)।

नागरिक समाज और सोशल मीडिया की भूमिका

अरब स्प्रिंग, #MeToo, #BlackLivesMatter, 'Social Audits', ऑनलाइन कैंपेन–सोशल मीडिया आज जनचेतना, नेटवर्किंग, पारदर्शिता व सामूहिक दबाव का नया मंच बन गया है। इससे मानव अधिकार मामलों में शीघ्र हस्तक्षेप, जागरूकता व

निगरानी संभव हुई है (Guerzovich & Aston, 2023)।

भारत और मानव अधिकार

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार व नीति-निर्देशक तत्व मानव अधिकारों के मूल भाव का परिचय कराते हैं। भारत ने UDHR का समर्थन किया, ICCPR और ICESCR सहित अनेक संधियों पर हस्ताक्षर किया। सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक निर्णय, जैसे–केशवानंद भारती बनाम राज्य केरल, मेनका गांधी केस आदि ने मानव अधिकार व्याख्या का दायरा बढ़ाया है (Saikumar, 2019)। कोविड-19 महामारी के दौरान भारत की 'वैक्सीन मैत्री' नीति ने क्षेत्रीय स्तर पर मानव अधिकार संरक्षण में योगदान दिया (Gostin et al।, 2023) भारत का 'SAGAR' दृष्टिकोण (Security and Growth for All in the Region), 'इंडो-पैसिफिक नीति' क्षेत्रीय सहयोग और मानव सुरक्षा के नए आयाम सामने लाता है। घरेलू स्तर पर अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति, महिलाओं तथा बच्चों के अधिकारों के लिए विभिन्न कानून व कार्यक्रमों से अधिकार-प्रवर्तन की कोशिशें जारी हैं (Kethineni & Humiston, 2010)।

भविष्य की दिशा

मानव अधिकारों का भविष्य तीन प्रमुख आधारों पर आश्रित होगा–

1. प्रौद्योगिकी और नैतिकता: AI, बायोटेक्नोलॉजी, बड़े डेटा की शक्ति का प्रयोग मानवीय गरिमा, निजता व स्वतंत्रता की रक्षा हेतु हो; दमनकारी साधन न बनें (Borataliеvich,2024)।

2. जलवायु न्याय: आने वाले वर्षों में जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय अधिकार, स्वच्छ वायु-पानी, स्वस्थ व टिकाऊ जीवन को मानव अधिकारों के दायरे में शामिल करना आवश्यक होगा (Levy & Patz, 2015)।

3. समानता और समावेशन: जाति, नस्ल, धर्म, लिंग और वर्ग–इन सबसे ऊपर उठकर सार्वभौमिक मानवीय अधिकारों की गारंटी ही विश्व शांति, विकास और लोकतंत्र का आधार बनेगी (Jayal, 2009)।

निष्कर्ष

मानव अधिकार आधुनिक सभ्यता की आत्मा हैं, यह समाज के लिए केवल कानूनी घोषणा नहीं, बल्कि जागरूक और जवाबदेह नागरिकता की बुनियाद है। आज मानव अधिकारों के सामने राजनीतिक दमन, शरणार्थी संकट, लैंगिक असमानता,

डिजिटल निगरानी, जलवायु संकट जैसी बहुआयामी चुनौतियाँ हैं। अंतरराष्ट्रीय सहयोग, नवाचार, कानूनी सुधार और नागरिक समाज की सतत सक्रियता ही मानव अधिकार मूल्यों को सशक्त करेगी और वैश्विक शांति व प्रगति का मार्ग प्रशस्त करेगी।

सन्दर्भ :

- Appel, B। J। (2018)। In the Shadow of the International Criminal Court: Does the ICC Deter Human Rights Violations?। Journal of conflict resolution, 62(1), 3-28।
- Bakke, K। M।, Dahl, M।, & Rickard, K। (2025)। Conflict exposure and democratic values: Evidence from wartime Ukraine। Journal of Peace Research, 00223433251347769।
- Boratalievich, N। Y। (2024)। Human rights and modern technologies: ethical aspects। International Journal of Pedagogics, 4(05), 112-116।
- Brito, B। (2024)। Risks or Challenges of Climate Change: The Case of Climate Refugees। In The Social Consequences of Climate Change: Debates in Research and Policy (pp। 51-65)। Emerald Publishing Limited।
- Chingranelli, D। L।, & Richards, D। L। (1999)। Respect for human rights after the end of the cold war। Journal of peace research, 36(5), 511-534।
- Curran, D। (2023)। Surveillance capitalism and systemic digital risk: The imperative to collect and connect and the risks of interconnectedness। Big Data & Society, 10(1), 20539517231177621।
- Davies, K।, Adelman, S।, Grear, A।, Magallanes, C। I।, Kerns, T।, & Rajan, S। R। (2017)। The Declaration on Human Rights and Climate Change: A new legal tool for global policy change। Journal of Human Rights and the Environment, 8(2), 217-253।
- Duan, F। (2017)। The universal declaration of human rights and the modern history of human rights। Available at SSRN 3066882।
- Dulume, W। (2019)। Linking the SDGS with human rights:

opportunities and challenges of promoting goal 17। Journal of Sustainable Development Law and Policy (The), 10(1), 56-72।

- Ero, C।, & Mutiga, M। (2024)। The Crisis of African Democracy: Coups Are a Symptom-Not the Cause-Of Political Dysfunction। Foreign Aff।, 103, 120।
- Fabion, C। (2020)। The genesis of the concept of universal rights in the modern era।, (3), 297-307।
- Goodale, M। (2013)। Human rights after the post-Cold War। Human Rights at the Crossroads, 1-28।
- Gostin, L। O।, Friedman, E। A।, Hossain, S।, Mukherjee, J।, Zia-Zarifi, S।, Clinton, C।, ।।। & Dhai, A। (2023)। Human rights and the COVID-19 pandemic: a retrospective and prospective analysis। The Lancet, 401(10371), 154-168।
- Guerzovich, F।, & Aston, T। (2023)। Social Accountability 3।0: Engaging Citizens to Increase Systemic Responsiveness। Available at SSRN 4606929।
- Jayal, N। G। (2009)। The challenge of human development: Inclusion or democratic citizenship?। Journal of Human Development and Capabilities, 10(3), 359-374।
- Kapur, R। (2012)। Human rights in the 21st century: Take a walk on the dark side। In Wronging Rights? (pp। 23-60)। Routledge India।
- Kelso, C। M।, Green, T। M।, Guffey, J। E।, Larson, J। G।, & Glasser, M। (2011)। Unlawful Activities Prevention Act-UAPA (India) & US-Patriot Act (USA): A Comparative Analysis। Homeland Security Rev।, 5, 121।
- Kethineni, S।, & Humiston, G। D। (2010)। Dalits, the oppressed people of India: How are their social, economic, and human rights addressed। War Crimes Genocide & Crimes against Human।, 4, 99।
- King, A। S। (2022)। Myanmar's Coup d'état and the Struggle for Federal Democracy and Inclusive Government। Religions, 13(7), 594।

- Kumar, P। (2024)। Journey of Social Work to Professional Social Work: Indian Perspectives। Journal of Psychosocial Wellbeing, 5(2), 1।
- Lee, F। L।, & Chan, C। K। (2023)। Legalization of press control under democratic backsliding: The case of post-national security law Hong Kong। Media, Culture & Society, 45(5), 916-931।
- Lenz, I। (2017)। Equality, Difference and Participation: The Women's Movements in Global Perspective। In The History of Social Movements in Global Perspective: A Survey (pp। 449-483)। London: Palgrave Macmillan UK।
- Levy, B। S।, & Patz, J। A। (2015)। Climate change, human rights, and social justice। Annals of global health, 81(3), 310-322।
- Mayrhofer, M। (2024)। Framing UN human rights discourses on climate change: the concept of vulnerability and its relation to the concepts of inequality and discrimination। International Journal for the Semiotics of Law-Revue internationale de Sémiotique juridique, 37(1), 91-117।
- Morsink, J। (2009)। Inherent human rights: Philosophical roots of the universal declaration। University of Pennsylvania Press।
- Mutua, M। W। (2017)। The ideology of human rights। In International law of human rights (pp। 103-172)। Routledge।
- Nwosu, C। P।, & Okafor, F। C। N। (2024)। THE UNITED NATIONS HIGH COMMISSIONER FOR REFUGEES (UNHCR) AND CHALLENGES OF EFFECTIVE HUMANITARIAN RESPONSE IN NORTHEAST NIGERIA। ESUT JOURNAL OF SOCIAL SCIENCES, 9(2)।
- Omelicheva, M। Y। (2015)। Democracy in Central Asia: Competing perspectives and alternative strategies। University Press of Kentucky।
- Saikumar, R। (2019)। The constitutional politics of judicial review and the Supreme Court's human rights discourse। In Human Rights in India (pp। 37-58)। Routledge।

- Sekalala, S।, Perehudoff, K।, Parker, M।, Forman, L।, Rawson, B।, & Smith, M। (2021)। An intersectional human rights approach to prioritising access to COVID-19 vaccines। BMJ global health, 6(2)।
- Sangiovanni, A। (2017)। Humanity without dignity: Moral equality, respect, and human rights। Harvard University Press।
- Sharp, D। N। (2018)। Re-thinking transitional justice for the 21st century। Cambridge University Press।
- Shehu, V। P।, & Shehu, V। (2023)। Human rights in the technology era-Protection of data rights। European Journal of Economics, 7(2)।
- Singh, P। A। L। W। I। N। D। E। R।, & Absar, S। A। N। A। (2021)। Comparative Privacy Legislation: Indian and European Personal Data Protection Legislation in the Digital Age। Journal of Legal Studies, 3, 78-92।
- Sikkink, K। (2017)। Evidence for hope: Making human rights work in the 21st century। Princeton University Press।
- Sinha, M। K। (2005)। Role of the National Human Rights Commission of India in Protection of Human Rights। Journal of International Law of Peace and Armed Conflict, (3), 200-205।
- United Nations। General Assembly। (1949)। Universal declaration of human rights (Vol। 3381)। Department of State, United States of America।
- Valerio, C। (2020)। Human rights and COVID-19 pandemic। JBRA assisted reproduction, 24(3), 379।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

भारत में मैला प्रथा एवं मानव अधिकार : समस्या और चुनौतियां

प्रो. राजीव कुमार सिंह*

निर्धनता सभी प्रकार के मानव अधिकार उल्लंघनों की जड़ है, और यही शायद मैला ढ़ोने की प्रथा के बने रहने के लिए भी जिम्मेदार है (न्यायमूर्ति राजिंदर सच्चर)। यद्यपि प्रायः स्वच्छता की समस्या को शहरीकरण से उपजी समस्या के रूप में देखा जाता है, किंतु वास्तविकता यह है कि निर्धनता और वैकल्पिक व्यवस्थाओं के अभाव ने लोगों को इस अमानवीय और अपमानजनक कार्य को अपनाने के लिए विवश किया है। यही कारण है कि आज भी शहरी क्षेत्रों से लेकर ग्रामीण इलाकों तक बड़ी संख्या में लोग मैला प्रथा में संलग्न हैं।

सफाई कर्मचारी नियोजन एवं शुष्क शौचालय (प्रतिषेध) अधिनियम, 1993 के अनुसार, "हाथ से मैला उठाने वाला (मैनुअल स्कैवेंजर) वह व्यक्ति है जो मानव मल-मूत्र को हाथ से उठाने या साफ करने के कार्य में लगा हो या नियोजित किया गया हो।" हाथ से मैला उठाने का अर्थ है ऐसे शौचालय से मल की सफाई करना, जिसमें आधुनिक प्रक्षालन (फ्लश) प्रणाली उपलब्ध न हो। आज जबकि शहरी क्षेत्रों में सीवर व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, तब भी अधिकांश स्थानों पर सीवर, नालियों और सेप्टिक टैंक की सफाई हाथों से ही की जाती है। इस कार्य में लगे लोगों को प्रायः स्कैवेंजर या मैला उठाने वाला कहा जाता है।

इस प्रथा की उत्पत्ति के बारे में ठोस आधिकारिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, किंतु यह निर्विवाद है कि यह अमानवीय परंपरा भारत में कई शताब्दियों से चली आ रही है।

*आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़-123029

सामान्यतः माना जाता है कि मध्यकालीन भारत में झाड़ू लगाना और सफाई करना एक औपचारिक पेशे के रूप में स्थापित हुआ। ऐसा भी कहा जाता है कि बाल्टी शौचालय प्रणाली (बकेट सिस्टम) का निर्माण मुस्लिम समाज में परदा प्रथा के चलते महिलाओं की सुविधा हेतु हुआ। युद्ध में बंदी बनाए गए लोगों को जबरन शौचालय खाली करने और मल-मूत्र ढोने के काम में लगाया गया। जब ये लोग स्वतंत्र हुए, तो समाज ने इन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया और इन्हें अलग जाति के रूप में स्थापित कर दिया गया, जिन्हें आगे चलकर मैला ढ़ोने का कार्य करना पड़ा। राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग जो एक वैधानिक निकाय है ने अपने प्रतिवेदन में यह बताया कि भारत सरकार के विभिन्न विभागों में कहीं ना कहीं आज भी शुष्क शौचालयों का उपयोग हो रहा है, हालांकि उसे समय के साथ खत्म कर दिया गया। 1901 में भोपाल में हुई कांग्रेस बैठक में भंगी समुदाय के कार्य एवं उनकी अपवर्जित सामाजिक स्थिति का मुद्दा उठाया गया था। सफाई कर्मचारी नियोजन एवं शुष्क शौचालय निर्माण (प्रतिषेध) अधिनियम 1989 के अंतर्गत शुष्क शौचायलयों के निर्माण को अपराध माना गया जिसमें एक वर्ष की सजा या ₹2000 जुर्माना दोनों हो सकते हैं।

मानव अधिकार और संवैधानिक संदर्भ

मानव अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के जन्मजात अधिकार हैं, जो उसकी गरिमा, स्वतंत्रता और समानता को सुनिश्चित करते हैं। यह अधिकार किसी राष्ट्र या शासन से प्रदत्त नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व के साथ ही जुड़े होते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित मानवा अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) ने इन अधिकारों को वैश्विक स्वरूप दिया। इसमें जीवन के अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा, गरिमामय श्रम और समानता जैसे अधिकारों को मूलभूत माना गया। भारत, जिसने स्वयं को लोकतांत्रिक और गणराज्यात्मक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया, ने संविधान में इन अधिकारों को विशेष महत्व दिया।

भारतीय संविधान मानव अधिकारों की रक्षा और उन्हें लागू करने का सबसे सशक्त दस्तावेज है। संविधान की प्रस्तावना ही न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को सर्वोच्च आदर्श घोषित करती है। मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) संविधान के भाग III में मानव अधिकारों का संवैधानिक रूप प्रस्तुत करते हैं। अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण का अधिकार देता है, जबकि अनुच्छेद 15 धर्म, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है। इसी तरह अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करता है और इसे कानून द्वारा दंडनीय अपराध घोषित करता है, जो भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही

अमानवीय प्रथाओं के विरुद्ध एक ऐतिहासिक कदम था।

मानव अधिकारों और संविधान का संबंध केवल समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह गरिमापूर्ण जीवन की गारंटी देता है। अनुच्छेद 21 प्रत्येक नागरिक को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने विभिन्न निर्णयों में इस अधिकार की व्याख्या करते हुए शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पर्यावरण, और गरिमामय जीवन को भी इसके दायरे में शामिल किया है। इसके अतिरिक्त, संविधान में निर्देशात्मक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) भी मानव अधिकारों के सामाजिक और आर्थिक आयामों को सुदृढ़ करते हैं। इनमें काम करने का अधिकार, शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करने की दिशा में राज्य को निर्देशित किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने लोकतंत्र, समानता और गरिमामय जीवन का वादा किया। अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता को समाप्त किया और मैला प्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं को अपराध घोषित किया। इसके बावजूद, यह प्रथा समाज के विभिन्न हिस्सों में बनी रही। इसी चुनौती से निपटने के लिए 1993 में मैला प्रथा उन्मूलन अधिनियम पारित किया गया, लेकिन इसका प्रभाव सीमित रहा। इसके बाद 2013 में नया कानून 'हाथ से मैला उठाने वाले कर्मियों के नियोजन का प्रतिषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम' पारित हुआ, जो 2014 में लागू हुआ। इस अधिनियम ने न केवल मैला प्रथा और सूखे शौचालयों को प्रतिबंधित किया, बल्कि इसमें इस काम से जुड़े लोगों के पुनर्वास और वैकल्पिक रोजगार की भी व्यवस्था की गई। यह अधिनियम मैला प्रथा के उन्मूलन के लिए एक वृहद कार्य योजना प्रस्तुत करता है, जिसमें स्थानीय निकायों द्वारा और स्वच्छ शौचायलयों का सर्वेक्षण किया जाना और स्वच्छ सामुदायिक शौचालय को उपलब्ध कराना सम्मिलित है। साथ ही अस्वच्छ शौचालय और हाथ से मैला उठाने वाले कर्मचारियों के नियोजन और लगाए जाने का प्रतिषेध भी करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस सर्वेक्षण के लिए पंचायत एक निकाय के रूप में कार्य करेगी तथा इसके उल्लंघन को संज्ञेय अपराध की श्रेणी में रखा है साथ ही इस संदर्भ में सतर्कता समिति राज्य मॉनिटरिंग कमेटी का भी गठन किया गया है जिससे इस कुप्रथा का जड़ से उन्मूलन किया जा सके। यह कानून इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था, किंतु जमीनी स्तर पर अभी भी इसकी चुनौतियाँ बरकरार हैं। वर्ष 2018 से 2023 के मध्य लगभग 340 व्यक्ति शिविर एवं सेप्टिक टैंक की सफाई में अपनी जान गंवा चुके हैं। वर्ष 2023 में दिल्ली और उत्तर प्रदेश में मैला ढोने की प्रथा से मौतों की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ गई है। केवल एक महीने में 12 लोगों की जान गई, जिसमें से आठ मौतें उत्तर प्रदेश और चार मौतें दिल्ली में हुई। एक ओर विधिक रूप से मैला ढोने की प्रथा पर प्रतिबंध है, वहीं दूसरी ओर जातिगत भेदभाव और करीबी ने इस प्रथा को आज भी जीवित रखा है। भारत में मैला ढोना एक जातीय आधारित प्रथा है जिसमें संलग्न अधिकतर व्यक्ति अनुसूचित जाति के हैं। विशेष रूप से वाल्मीकि, भंगी, मुसहर आदि

जातियां परंपरागत रूप से इस काम में संलग्न हैं। दलित आदिवासी शक्ति अधिकार मंच के संजीव कुमार कहते हैं कि “यह केवल दिल्ली या उत्तर प्रदेश मे जीवन के मूल्यों की बात नहीं है........., जब यह मरते हैं तो किसी को फर्क नहीं पड़ता, कोई डरता नहीं है और न ही किसी को अपराधबोध होता है”। यदि यह लोग इस सामान्य कार्य को करने से इनकार करते हैं तो उन्हें शारीरिक हिंसा और सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

मानव अधिकार का प्रश्न

मैला प्रथा केवल एक सामाजिक बुराई नहीं है, बल्कि यह मानव गरिमा और अधिकारों के प्रश्न से सीधे जुड़ा हुआ गंभीर मुद्दा है। यह प्रथा हमें यह सोचने पर विवश करती है कि क्या भारतीय समाज वास्तव में हर व्यक्ति को गरिमामय जीवन जीने का अवसर देता है? जब किसी समुदाय को पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे काम में धकेल दिया जाता है, जो न केवल अस्वास्थ्यकर है बल्कि अपमानजनक भी है, तो यह उसकी अस्मिता और स्वाभिमान का सीधा उल्लंघन है।

मानव अधिकारों का मूल उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, स्वतंत्रता और सम्मानजनक जीवन उपलब्ध कराना है किंतु मैला प्रथा इस उद्देश्य को पूरी तरह विफल कर देती है। यह न केवल जातिगत भेदभाव का प्रतीक है, बल्कि सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण और मानसिक आघात का भी माध्यम बनती है। किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा करना कि वह दूसरों का मल-मूत्र अपने हाथों से साफ करे, उसकी मानव गरिमा के विरुद्ध है। इस दृष्टि से यह संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता का उन्मूलन) और अनुच्छेद 21 (जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का प्रत्यक्ष उल्लंघन है।

मैला ढोने की प्रथा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के उस मूलभूत सिद्धांत को भी चुनौती देती है, जो कहता है कि सभी मनुष्य समान गरिमा और अधिकारों के साथ जन्म लेते हैं। इस कार्य में लगे लोगों को समाज में निम्नतर माना जाता है, उनके साथ सामाजिक दूरी और घृणा का व्यवहार किया जाता है, और उन्हें वैकल्पिक अवसर उपलब्ध नहीं कराए जाते। इसका परिणाम यह होता है कि यह समुदाय शिक्षा, स्वास्थ्य और सम्मानजनक रोजगार से वंचित रहकर पीढ़ी दर पीढ़ी शोषित होता है।

इस प्रश्न का एक महत्वपूर्ण पहलू लैंगिक असमानता भी है। अधिकांशतः महिलाएँ इस काम में लगी होती हैं, जिन्हें न केवल शारीरिक और मानसिक अपमान झेलना पड़ता है, बल्कि अस्वच्छ परिस्थितियों में काम करने के कारण गंभीर स्वास्थ्य

समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह उनके शिक्षा, समान अवसर और स्वास्थ्य संबंधी अधिकारों का सीधा हनन है। इस प्रकार मैला प्रथा जातिगत ही नहीं, बल्कि लैंगिक अन्याय का भी प्रतीक है। मानव अधिकार केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं हैं, बल्कि समाज में जीवन की गरिमा सुनिश्चित करने का माध्यम हैं। यदि कोई समुदाय अपमानजनक और अस्वास्थ्यकर कार्य करने के लिए मजबूर है, तो यह मानव अधिकारों के सार्वभौमिक आदर्शों पर प्रश्नचिह्न है। जब तक मैला प्रथा का पूर्ण उन्मूलन नहीं होता, तब तक भारत में मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता अधूरी रहेगी।

सुझाव

आज आवश्यकता है कि इस प्रथा के उन्मूलन को केवल कानून और कागज़ी प्रावधानों तक सीमित न रखा जाए। समाज में व्यापक मानसिकता परिवर्तन, शिक्षा का प्रसार, पुनर्वास योजनाएँ और वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था सबसे बड़ी प्राथमिकताएँ होनी चाहिए। राज्य और समाज, दोनों को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि किसी भी व्यक्ति को अपमानजनक और अमानवीय कार्य करने के लिए विवश न होना पड़े। तभी हम यह कह सकेंगे कि भारत में मानव अधिकारों का वास्तविक सम्मान हो रहा है और प्रत्येक नागरिक को गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्राप्त है। इसके लिए जाति से जुड़े विभेद एवं उससे जुड़ी स्वच्छ एवं अस्वच्छ की संकल्पना का उन्मूलन अपरिहार्य है

भारत में मैला ढ़ोने की प्रथा से जुड़े व्यक्तियों की जीवन और कार्य स्थितियों को बेहतर बनाने के लिए उनके समग्र रूपांतरण का एक स्पष्ट एजेंडा तय करना आवश्यक है। यह एजेंडा उन्हें वैकल्पिक आजीविका प्रदान करने, सूखे शौचालयों को समाप्त करने और उनके बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। इस प्रथा से जुड़े व्यक्तियों के लिए कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहां वे कार्य करके अपनी आजीविका कमा सकते हैं। उन्हें कृषि क्षेत्र में रोजगार दिया जा सकता है। थोड़ी सी गणित की शिक्षा देकर उन्हें फल और सब्ज़ी विक्रेता के रूप में भी काम करने योग्य बनाया जा सकता है। यदि उन्हें मवेशी उपलब्ध कराए जाएं, तो वे डेयरी उत्पाद तैयार कर और बेचकर कमाई कर सकते हैं। इसके अलावा, अगर उन्हें ऋण और उपकरण जैसे मसाला पीसने की मशीनें और सिलाई मशीनें दी जाएं, तो वे मसाले, कपड़े या हस्तशिल्प का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। इस प्रथा से जुड़े व्यक्तियों का जीवन विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों का, अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा देकर बेहतर बनाया जा सकता है। इसके लिए खुले विचारों वाले, प्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त किए जाने चाहिए। ऐसे स्कूलों में न केवल मिड-डे मील योजना लागू होनी चाहिए, बल्कि सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों को शाम का भोजन भी प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि उनके माता-पिता पर बच्चों के पालन-पोषण

का अतिरिक्त बोझ न पड़े।

मैला ढ़ोने की प्रथा से जुड़े वयस्क व्यक्तियों के लिए भी शिक्षा अत्यंत आवश्यक है, ताकि उन्हें वैकल्पिक जीवनशैली के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। उदाहरण के लिए, महिलाओं को सिलाई, पैकिंग या आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में काम करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इसके साथ ही, समाज के अन्य वर्गों को भी दलित समुदाय की उपेक्षित और पीड़ित स्थिति के प्रति अधिक संवेदनशील बनना होगा। यह जनजागरूकता अभियानों या स्कूलों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से संभव हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Koonan, S. (2021). Manual scavenging in India: state apathy, non-implementation of laws and resistance by the community. Indian Law Review, 5(2), 149-165. https://doi.org/10.1080/24730580.2021.1905340

2. Naz, F. (2021). Introduction: Landscape of Sanitation in India: Reflections on Swachhta. Indian Anthropologist, 51(2), 1-6. https://www.jstor.org/stable/27139728

3. Pais, R. (2021). Sanitation and Unchanging Role of Caste. Indian Anthropologist, 51(2), 57-69. https://www.jstor.org/stable/27139732

4. Pais, R. (2021). Sanitation and Unchanging Role of Caste. Indian Anthropologist, 51(2), 57-69. https://www.jstor.org/stable/27139732

5. RAVICHANDRAN, B. (2011). Scavenging Profession: Between Class and Caste? Economic and Political Weekly, 46(13), 21-25. http://www.jstor.org/stable/41152278

6. Shalini, Jain, S., & Sapre, A. A. (2024). Breaking the chains of discrimination: an assessment of India's legal framework and rehabilitation initiatives for manual scavengers. Social Identities, 31(1), 23-41. https://doi.org/10.1080/13504630.2024.2415600

7. Singh, R. K. (2009). Manual Scavenging as Social Exclusion: A Case Study. Economic and Political Weekly, 44(26/27), 521-523. http://www.jstor.org/stable/40279798

8. Wankhede, A., & Kahle, A. (2023). The Human Dignity Argument against Manual Scavenging in India. CASTE: A Global Journal on Social Exclusion, 4(1), 109-129. https://www.jstor.org/stable/48728108

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

ट्रांसजेंडर्स - रीति, नीति और चुनौतियां

डॉ. राकेश बी. दुबे*

'अब ये लोग भी भिखारियों की तरह पैसे क्यों मांगने लगे हैं?' एक मासूम सा सवाल मेरे भतीजे ने उस दिन आईटीओ, नई दिल्ली की लाल बत्ती पर गाड़ियों के पास जाकर पैसे मांगते हुए कुछ लोगों की ओर इशारा करके कहा। उसका सवाल असहज करने वाला था। वे ट्रांसजेंडर्स थे। अपने बचपन के अनुभव से मेरे मन में ट्रांसजेंडर्स के प्रति एक अलग तरह की भावना बैठी हुई थी। यह भावना कुछ सम्मान की, कुछ डर की, कुछ अजनबीपन की और कुछ विचित्रता की थी।

पहले तो मैंने उसके सवाल को टालना चाहा। असहज करने वाले सवालों को हम लोग प्राय: टाल देते हैं। लेकिन हाल ही में, मेरा जुड़ाव मेरे एक मार्गदर्शक के सौजन्य से राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से आरंभ हुआ था। इसलिए मैंने कहा कि मुझे एक दिन का समय दो, मैं इस बारे में अध्ययन करके कल तुम्हारे सवालों का जवाब दूंगा। अगले दिन उसके और मेरे बीच हुए सवाल-जवाब को मैं एक श्रोता और वक्ता के बीच की बातचीत के तौर पर नीचे रख रहा हूँ।

श्रोता - मैं पूछ रहा था कि ये लोग अब भिखारियों की तरह भीख क्यों मांगने लगे हैं?

वक्ता - 'ये लोग' से तुम्हारा आशय क्या है? मैं उसके अनुभव को टटोलना चाहता था।

*वरिष्ठ सलाहकार, भारतीय गुणवत्ता परिषद

श्रोता - यही 'ट्रांस' लोग।

वक्ता - वे भीख तो नहीं मांग रहे थे, वे तो आशीर्वाद बांट रहे थे।

श्रोता - हां, यह तो अनुभव किया था मैंने, लेकिन ये लोग अब चौराहों पर ज्यादा दिखाई देने लगे हैं जहां भिखारी लोग भीख मांग रहे होते हैं और इनको ट्रांसजेंडर्स क्यों कहते हैं? ये तो ज्यादातर महिलाओं के कपड़े पहनते हैं। तो उन्हें 'महिलाएं' क्यों नहीं कहते?

वक्ता - देखो, समाज में आमतौर पर दो लिंग प्रचलित हैं - पुरुष और महिला। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो स्वयं को पुरुष और महिला की इस बाइनरी पहचान से अलग यानि 'नॉन-बाइनरी' मानते हैं अर्थात् जो लैंगिक पहचान उन्हें जन्म के समय से दी जाती है, वे स्वयं को उससे अलग मानते हैं। इनकी पहचान 'ट्रांसजेंडर्स' या 'ट्रांस' के रूप में की जाती है।

श्रोता - तो फिर 'एलजीबीटीक्यूआई+' क्या होता है?

वक्ता - यह एक अधिक व्यापक 'टर्म' है। ट्रांसजेंडर भी इसी टर्म का हिस्सा है। वास्तव में, लैंगिक पहचान से आगे सैक्सुअल रुझान के आधार पर पहचान कई प्रकार की हो सकती है। अभी तक के अध्ययन और विचार-विमर्श के आधार पर नॉन-बाइनरी पहचान में 'एल' से लैस्बियन, 'जी' से गे, 'बी' से बाइसेक्सुअल, 'टी' से ट्रांसजेंडर, 'क्यू' से क्वीयर या क्वेश्चनिंग और 'आई' से इंटरसेक्स का बोध होता है। इसमें जो 'प्लस' का चिह्न है, उसका मतलब उन अनेक लैंगिक और यौनिक पहचानों में से है, जो अभी तक तय नहीं हो पाई हैं, जैसे - एसेक्सुअल आदि।

श्रोता - तो फिर 'किन्नर' और 'हिजड़ा' किसे कहते हैं? भारत के दूसरे हिस्सों में ट्रांस को किस नाम से पुकारते हैं?

वक्ता - मैंने बचपन में एक कविता पढ़ी थी, वह सुनो फिर आगे की बात बताता हूं। कविता इस प्रकार है -

'यदि होता किन्नर नरेश मैं, राजमहल में रहता।
सोने का सिंहासन होता, सिर पर मुकुट चमकता।।
वंदीजन गुण गाते रहते, दरवाजे पर मेरे,
प्रतिदिन नौबत बजती रहती, संध्या और सवेरे।।

हमारी परंपरा में ट्रांस लोगों को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उनका स्थान, लगभग देवताओं के बराबर था। द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की कविता में

'किन्नर नरेश' होने की कामना की गई है। यदि समाज में उनका सम्मान न होता तो कौन 'किन्नर' बनना चाहता। सभ्य भाषा में ट्रांस को 'किन्नर' कहते थे। जन साधारण उन्हें 'हिजड़ा' कहते थे। दक्षिण में इन्हें 'अरवानी', जोगता आदि नामों से पुकारते हैं।

श्रोता - यदि ऐसा था तो उनका स्थान समाज में गिरा कब?

वक्ता - ठीक-ठीक तो बताना कठिन है। परंतु, कुछ धार्मिक कारणों से, कुछ सामाजिक कारणों से और कुछ आर्थिक कारणों से समाज में उनकी स्थिति गिरी। आमतौर से हिंदू समाज में 'किन्नर' मांगलिक अवसरों पर 'बधाई' देने के लिए आते थे। उन्हें बाकायदा इन अवसरों पर सूचना दी जाती थी और धन देकर विदा किया जाता था। सनातनी समाज में आज भी, यह परंपरा कायम है। हालांकि, बाहर से आई कुछ धार्मिक परंपराओं में किन्नरों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। फिर भी, मुगलों के समय में अंत:पुर की रक्षा और देख-भाल की जिम्मेदारी 'ख्वाजासराओं' को दिए जाने के प्रसंग मिलते हैं। अंग्रेजों के शासनकाल में सन् 1861 में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 में 'नॉन हैट्रो-नॉर्मेटिव सेक्सुअल बिहेवियर' यानि समलैंगिक यौन व्यवहार को अपराध बताया गया। सन् 1871 के एक कानून के द्वारा इन्हें 'आपराधिक जनजातियों' की श्रेणी में डाल दिया गया। लगता है कि तभी से इनकी स्थिति अधिक खराब हुई।

श्रोता - अब तो अंग्रेजी शासन है नहीं, हम स्वाधीन हो गए हैं। तब सरकार इनके लिए कुछ करती क्यों नहीं?

वक्ता - भारत सरकार ने और राज्य सरकारों ने अपने स्तर पर प्रयास किए हैं। स्वाधीन होते ही सन् 1952 में भारत सरकार ने ट्रांसजेंडर्स को आपराधिक जनजाति की श्रेणी से बाहर कर दिया। और भी कुछ काम हुए हैं। लेकिन हर काम का एक समय होता है। अब इस काम का भी 'सही समय' आया है। इक्कीसवीं शताब्दी का आरंभ ट्रांसजेंडर्स के लिए परिवर्तनकारी पहलों के साथ हुआ है। वर्ष 2001-02 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने धारा 377 की समीक्षा की सिफारिश की। आगे चलकर, भारत के उच्चतम न्यायालय ने 06 दिसंबर, 2018 को धारा 377 को असंवैधानिक बता दिया। भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने, जो इन मामलों में नोडल मंत्रालय है, वर्ष 2012 में ट्रांसजेंडर्स के मुद्दों पर ठोस कार्रवाही शुरू की।

परंतु 2014 का वर्ष ट्रांसजेंडर्स के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। उच्चतम न्यायालय ने नेशनल लीगल सर्विस अथॉरिटी (नालसा) बनाम भारत सरकार के मामले में ट्रांसजेंडर्स को थर्ड जेंडर यानि अन्य पुरुष के तौर पर कानूनी मान्यता दे दी। साथ ही, केन्द्र और राज्य सरकारों को आदेश दिया कि ट्रांसजेंडर्स को शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया जाए।

ट्रांसजेंडर्स की निजता के अधिकार के लिए के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) के मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने लैंगिक पहचान और सेक्सुअल रुझान को निजता के मूल अधिकार का हिस्सा माना।

नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (वर्ष 2018) के मुकदमे में धारा 377 को हटा दिया गया। ये सब अति महत्व के निर्णय हैं।

श्रोता - निर्णय तो अच्छे हैं, लेकिन भारत सरकार ने इन निर्णयों के अनुपालन के लिए और भारत में ट्रांसजेंडर्स् की बेहतरी के लिए कुछ किया भी है या नहीं?

वक्ता - अवश्य किया है। सबसे पहले तो भारत सरकार ने 05 दिसंबर, 2019 को 'उभयलिंगी व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 (ट्रांसजेंडर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स) एक्ट, 2019) लागू किया। इसमें ट्रांसजेंडर्स के साथ भेदभाव का निषेध, उनके कल्याण के लिए योजनाओं के सृजन और कार्यान्वयन की व्यवस्था है। ट्रांसजेंडर्स की पहचान के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पहचान प्रमाणपत्र जारी किए जाने और नेशनल काउंसिल फॉर ट्रांसजेंडर पर्सन्स (एनसीटीपी) के गठन का प्रावधान भी इस अधिनियम में है। इसके अलावा ट्रांसजेंडर्स के साथ शारीरिक, यौनिक या आर्थिक अपराध घटित होने की स्थिति में दंड का प्रावधान भी किया गया है।

श्रोता - कानून पारित किया गया है, यह बात सुनने में तो अच्छी लगती है लेकिन कानून को लागू करने के लिए योजनाएं भी तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए थीं।

वक्ता - की गई हैं। वर्ष 2020 में ही ट्रांसजेंडर्स पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स) रूल्स, 2020 तैयार किए गए। इनमें अन्य बातों के साथ-साथ ट्रांसजेंडर्स के लिए सरकारी या निजी पदों पर काम करने और सार्वजनिक सुविधाओं तथा लाभों को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया गया। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री की अध्यक्षता में नेशनल काउंसिल ऑफ ट्रांसजेंडर पर्सन्स का गठन 21 अगस्त, 2020 को कर दिया गया। इसमें ट्रांसजेंडर समुदाय के 5 प्रतिनिधियों के साथ-साथ राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों तथा स्वयंसेवी संगठनों में कार्यरत विशेषज्ञ भी शामिल किए गए हैं।

'स्माइल' (सपोर्ट फॉर मार्जिनलाइज्ड इंडीविडुअल्स फॉर लाइवलीहुड एंड एंटरप्राइज) नामक वृहत् योजना भी मंत्रालय द्वारा 12 फरवरी, 2022 से आरंभ की गई। इस योजना के अंतर्गत ट्रांसजेंडर समुदाय के उन लोगों के पुनर्वास के लिए व्यापक उपायों की व्यवस्था की गई जो भिक्षावृत्ति में लग गए हैं। इसके अलावा चिकित्सा सुविधाओं,

परामर्श सेवाओं, शिक्षा, कौशल विकास और आर्थिक संसाधनों का प्रावधान किया गया है। ट्रांसजेंडर विद्‌यार्थियों के लिए नौवीं से लेकर पोस्ट ग्रेजुएट तक की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति, जेंडर री-अफर्मेशन सर्जरी और ऑपरेशन के बाद के खर्च, परित्यक्त एवं अनाथ ट्रांस लोगों के आश्रय के लिए 'गरिमा गृह' की स्थापना और पूरे देश में ट्रांसजेंडर संरक्षण प्रकोष्ठ बनाए जाने की व्यवस्था इस योजना में है।

इन सभी योजनाओं का लाभ उठाने के लिए मूलभूत आवश्यकता थी- ट्रांसजेंडर प्रमाणपत्र और पहचान पत्र की। इसके लिए नेशनल पोर्टल फॉर ट्रांसजेंडर पर्सन्स दिनांक 5 नवम्बर, 2020 से आरंभ कर दिया गया। अब ट्रांसजेंडर्स को यह सुविधा हो गई कि वे अपने जन्म प्रमाणपत्र में और अन्य सरकारी दस्तावेजों में अपना पहले का नाम बदल सकें और इसके लिए उन्हें स्वयं अधिकारी के सामने उपस्थित होने की जरूरत भी नहीं होगी। ट्रांसजेंडर प्रमाणपत्र और परिचय पत्र को पूरे देश में मान्य किया गया।

वर्ष 2019 के अधिनियम में गरिमा गृहों की स्थापना का प्रावधान था। इसमें 18 से 60 वर्ष तक की उम्र के अनाथ या परित्यक्त ट्रांसजेंडर्स के रहने-खाने, उपचार कराने और मनोरंजन की व्यवस्था की जानी थी। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने आरंभ में 12 गरिमा गृहों की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की। इन गृहों का संचालन समुदाय-आधारित संगठनों द्‌वारा किया जाता है।

श्रोता - एक बात बताइये, जब कोई ट्रांस बीमार पड़ता है और अस्पताल जाता है, तो उसका इलाज कैसे होता है? मानसिक प्रताड़ना एवं अवसाद की स्थिति में उनके सामने क्या कोई रास्ता है?

वक्ता - आपने बहुत महत्व का प्रश्न पूछा है। पहले जब कोई ट्रांस बीमार पड़ता था तो अस्पताल जाने से कतराता था। देसी और घरेलू उपचार का सहारा लिया जाता था क्योंकि अस्पताल में उससे सबसे पहले नाम और लिंग के बारे में ही पूछा जाता था। वह क्या बताता? बहुत अपमानजनक स्थिति हो जाती थी। अब उन्हें अस्पताल में ट्रांसजेंडर के रूप में इलाज कराने का अधिकार मिल गया है। अब धन की समस्या का समाधान भी किया गया है। आयुष्मान भारत टीजी प्लस के नाम से स्वास्थ्य बीमा लागू किया गया है। अब वे 5 लाख रुपए तक उपचार करा सकते हैं। इसमें जेंडर री-अफर्मेशन सर्जरी, हार्मोन थेरेपी, सेक्स री-असाइनमेंट सर्जरी तथा ऑपरेशन के बाद का खर्च भी शामिल है।

जन साधारण में और अन्यथा भी, समाज में ट्रांस के प्रति व्यवहार में संवेदनशीलता का अभाव दिखता है। ऐसी स्थिति में ट्रांसजेंडर्स को अवसाद से निकालने और परेशानियों के समाधान हेतु परामर्श प्रदान करने के लिए हैल्पलाइन आरंभ की गई है। इसका नंबर है - 8882 1338 97। एक ई-मेल आईडी है -

tghelp@mail.inflibnet.ac.in। एक तकनीकी हेल्पलाइन भी है - 7923268299 जिस पर संपर्क करके वे ट्रांसजेंडर प्रमाणपत्र और पहचान पत्र प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

श्रोता - सरकार की योजनाओं से ट्रांस लोगों की परेशानियां कम होंगी, यह आशा की जा सकती है। परंतु, समाज में उनके प्रति हेय भावना कैसे दूर होगी। उन्हें समान अवसर प्राप्त कराने और गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए उनके बीच से ही कोई आदर्श प्रस्तुत करने का उपक्रम भी हो रहा है क्या?

वक्ता - अवश्य हो रहा है। भारत की संवेदनशील सरकार ने वर्ष 2021 में ट्रांसजेंडर्स के लिए भी राष्ट्रीय पुरस्कार देने आरंभ किए हैं। तमिलनाडु की ख्यातिप्राप्त नृत्यांगना नर्तकी नटराज को वर्ष 2019 में पद्‌मश्री से सम्मानित किया गया है। नर्तकी नटराज को भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय से सीनियर फैलोशिप भी प्राप्त हो चुकी है। हमदर्द आयुर्विज्ञान और शोध संस्थान में कम्यूनिटी मेडिसिन की डॉक्टर तथा एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. अक्सा शेख स्वयं की पहचान ट्रांसवूमन के रूप में करती हैं। बचपन में अपनी लैंगिक पहचान के कारण समाज के दबाव झेलने के बावजूद उन्होंने एमबीबीएस की पढ़ाई पूरी की। कोविड 19 के दौरान उन्होंने खूब काम किया।

केरल के विहान पीताम्बर ने एक ट्रांसमेन के रूप में अपनी पहचान बनाई है। उन्होंने मास्टर ऑफ साइंस की पढ़ाई पूरी की और केरल में ट्रांसमेन के लिए अपनी तरह के पहले संगठन की स्थापना की। वर्ष 2020 में विहान को नेशनल काउंसिल फॉर ट्रांसजेंडर पर्सन्स का सदस्य बनाया गया।

आज भारत में ऐसे अनेक ट्रांसजेंडर मौजूद हैं जो अपने समुदाय को तो प्रेरणा देते ही हैं, अन्य लोगों के लिए भी उदाहरण पेश करते हैं। भारत की पहली ट्रांसवूमेन कॉलेज प्रिंसिपल मानबी बंधोपाध्याय, भारत की पहली ट्रांसजेंडर टेलीविजन एंकर पद्‌मिनी प्रकाश, पहली महिला ट्रांसजेंडर मेयर कमला जान, भारत की पहली किन्नर विधायक शबनम मौसी, तमिलनाडु पुलिस की पहली ट्रांसवूमेन सब इंस्पेक्टर के. पृथिका यशिनी, पहली टी वी होस्ट रोज़ वेंकटेशन आदि जैसे लोग अपने समुदाय को आगे बढ़ाने के प्रयास कर रहे हैं।

श्रोता - आपने जिन कानूनों और योजनाओं के बारे में जानकारी दी है, यदि वे सभी अच्छी तरह से काम कर रही होती, तो ट्रांसजेंडर्स की स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया होता। लेकिन अभी ऐसी स्थिति तो आई नहीं है।

वक्ता - हालांकि परंपरा से हमारे समाज में किन्नरों को सम्मान दिया जाता रहा है। परंतु, कानूनी पहचान मिलने के बावजूद किन्नर समुदाय को सामाजिक भेद-भाव, हिंसा और आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसका एक कारण यह भी है कि उनके अधिकारों पर गंभीर और व्यापक काम आरंभ हुए अभी लगभग एक दशक का समय ही बीता है। यद्यपि वर्ष 2011 की जनगणना में ट्रांसजेंडर्स की संख्या लगभग 4 लाख 88 हजार अंकित की गई है, परंतु अनुमान है कि उनकी संख्या लगभग 50 लाख है। जनगणना में अपना लिंग बताने के लिए आगे न आने का कारण यह प्रतीत होता है कि ट्रांसजेंडर्स की जनगणना का प्रावधान 2011 की जनगणना में पहली बार किया गया था और बहुत से ट्रांस अपनी पहचान उजागर करना पसंद नहीं करते। साथ ही वे 'अन्य पुरुष' के तौर पर अपनी पहचान से भी सहमत नहीं दिखते। यह एक जटिल मुद्दा है। इनके समाधान के लिए सरकार को योजनाओं के दायरे, आकार और कार्यान्वयन की विधि में व्यापक परिवर्तन करने होंगे।

श्रोता - अभी तक मैंने केवल सरकारी प्रयासों और योजनाओं के बारे में सवाल पूछे हैं। क्या समाज के स्तर पर कोई प्रयास किए जाने अपेक्षित नहीं हैं? ट्रांसजेंडर्स के सामने कौन-कौन सी प्रमुख सामाजिक-आर्थिक चुनौतियां हैं और उनके लिए हम लोगों को क्या करना चाहिए?

वक्ता - समाज की सक्रिय और व्यापक भागीदारी के बिना इन व्यापक मुद्दों का समाधान संभव नहीं है। ट्रांसजेंडर्स की चुनौतियों और समस्याओं के बारे में सामाजिक चेतना को जगाने का काम व्यापक समाज को करना होगा। केवल सरकार और गैर सरकारी संगठन इस काम को पूरा नहीं कर सकते। जागरूकता का अभाव दूर करना होगा। हर स्तर के अस्पतालों में ट्रांसजेंडर्स के उपचार की समुचित व्यवस्था करनी होगी। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना होगा। सार्वजनिक सुविधाओं में ट्रांस के लिए अलग व्यवस्था करनी होगी। अधिकांश स्थानों और प्रदेशों में रोजगार और नौकरियों में विशेष प्रावधान अभी किए जाने बाकी हैं। स्कूलों और कॉलेजों में सकारात्मक वातावरण बनाना होगा। ट्रांस होना कोई कलंक की बात नहीं है, यह सोच विकसित करनी होगी।

ट्रांसजेंडर्स के पास अपने स्वयं के घर बहुत कम हैं। लगभग 19 प्रतिशत ट्रांस के पास ही अपने घर हैं। इससे भी अधिक परेशानी की बात यह है कि उन्हें किराए पर घर देने से लोग कतराते हैं। आमतौर पर नौकरियां देने से लोग बचते हैं। यदि काम मिल भी गया तो वेतन और तरक्की में भेदभाव देखने को मिलता है। बैंकों और वित्तीय संस्थानों से ऋण मिलने में बहुत कठिनाई है। अभी कुछ ही प्रदेशों में नौकरियों में आरक्षण आरंभ किया गया है।

गरिमा गृहों की स्थिति की जांच के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने एक जांच समिति बनाई थी। उस समिति ने अपनी रिपोर्ट अभी 04 सितंबर, 2025 को प्रस्तुत की है। गरिमा गृहों के संचालन और वित्तपोषण में अनेक कमियां देखी गई हैं। आयोग ने 05 सितंबर, 2025 को एक सम्मेलन का आयोजन भी ट्रांसजेंडर्स से जुड़े मुद्दों पर विमर्श के लिए आयोजित किया है। इससे भी कुछ भला होगा।

एक समाज के तौर पर हम सब को भी सरकार के प्रयासों में हाथ बंटाना चाहिए। सबसे पहले तो अपनी मानसिकता में ही परिवर्तन करना होगा और ट्रांसजेंडर्स को अपनाना होगा। समाज में जो लोग और संस्थाएं इन प्रयासों में सहभागी हो रहे हैं और स्वयं ट्रांसजेंडर्स किस प्रकार से एकजुट होकर अपने समाज की बेहतरी के लिए काम कर रहे हैं, उनके बारे में कल बताऊंगा।

*****

डिजिटल युग में मानव अधिकारों का उल्लंघन

डॉ. लीना गोविंद गाहाने *

भूमिका

21वीं सदी को तकनीक और सूचना का युग कहा जाता है। इंटरनेट, मोबाइल फोन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डिजिटल प्लेटफार्मों ने मानव जीवन को एक नई दिशा दी है। आज हम शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, बैंकिंग, शासन और मनोरंजन - हर क्षेत्र में डिजिटल माध्यमों पर निर्भर हैं। डिजिटल युग ने सूचना तक पहुँच आसान की है और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को व्यापक बनाया है। लेकिन इस उजाले के साथ अंधेरा भी मौजूद है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, गोपनीयता और मानव गरिमा जैसे मौलिक अधिकार डिजिटल हस्तक्षेप के कारण कई बार उल्लंघन का शिकार हो रहे हैं।

डिजिटल युग में मानव अधिकारों की प्रासंगिकता

मानव अधिकार सार्वभौमिक, अविच्छेद्य और जन्मसिद्ध अधिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार घोषणा पत्र (1948) में इन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया। इनमें जीवन, स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, निजता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे अधिकार शामिल हैं। भारतीय संविधान ने भी मौलिक अधिकारों के रूप में इन्हें संरक्षित किया है।
डिजिटल युग में ये अधिकार नई परिस्थितियों में प्रकट होते हैं:

1. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता - सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म ने आम

*प्रो. ए.स.सी.टी नागपुर

नागरिक को अपनी राय रखने का वैश्विक मंच दिया है।

2. सूचना का अधिकार - इंटरनेट ने ज्ञान और जानकारी तक आसान पहुँच सुनिश्चित की है।
3. निजता का अधिकार - डिजिटल डेटा की सुरक्षा आज सबसे बड़ी चिंता है।
4. समानता और अवसर - ई-गवर्नेंस और ऑनलाइन शिक्षा ने सामाजिक न्याय और समान अवसरों को बढ़ावा दिया है।
5. सुरक्षा का अधिकार - डिजिटल लेन-देन और साइबर गतिविधियों में सुरक्षा मानव अधिकार का महत्वपूर्ण पहलू बन गई है।

डिजिटल युग और मानव अधिकारों का तालमेल

1. सूचना तक पहुँच और शिक्षा का अधिकार

डिजिटल तकनीक ने ज्ञान की दुनिया को सबके लिए खोल दिया है। पहले शिक्षा और सूचना सीमित वर्ग तक ही पहुँचती थी, परंतु आज कोई भी छात्र ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, ई-लाइब्रेरी और डिजिटल कोर्स के माध्यम से विश्वस्तरीय शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यह शिक्षा के अधिकार को सशक्त बनाता है।

2. अभिव्यक्ति और विचार की स्वतंत्रता

फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, ब्लॉग्स और यूट्यूब जैसे माध्यमों ने नागरिकों को अपनी बात कहने की अभूतपूर्व स्वतंत्रता दी है। डिजिटल युग ने अभिव्यक्ति के लोकतंत्रीकरण में अहम योगदान दिया है। आज कोई भी व्यक्ति सत्ता, नीतियों या सामाजिक मुद्दों पर अपनी राय खुलकर रख सकता है।

3. प्रशासन और पारदर्शिता

ई-गवर्नेंस और डिजिटलीकरण ने शासन-प्रशासन को पारदर्शी और जवाबदेह बनाया है। ऑनलाइन सेवाओं और सूचना के अधिकार अधिनियम के डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स ने भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में मदद की है। यह नागरिकों के समानता और न्याय के अधिकार को मजबूत करता है।

4. रोजगार और समान अवसर

डिजिटल क्रांति ने आईटी सेक्टर, ई-कॉमर्स, स्टार्टअप्स और फ्रीलांसिंग जैसे

क्षेत्रों में रोजगार की नई संभावनाएँ खोली हैं। ग्रामीण क्षेत्रों तक इंटरनेट पहुँचने से स्थानीय युवाओं को भी अवसर मिल रहे हैं। यह आजीविका और समान अवसर के अधिकार का उदाहरण है।

5. स्वास्थ्य और जीवन का अधिकार

टेलीमेडिसिन, ऑनलाइन परामर्श, हेल्थ ऐप्स और डिजिटल डेटा संग्रह ने स्वास्थ्य सेवाओं को लोगों तक पहुँचाया है। कोविड-19 महामारी के दौरान डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं ने लाखों जीवन बचाए। यह जीवन और स्वास्थ्य के अधिकार की रक्षा का स्पष्ट प्रमाण है।

डिजिटल युग और नई चुनौतियाँ

डिजिटल क्रांति ने जहाँ सुविधाएँ बढ़ाई हैं, वहीं मानव अधिकारों के समक्ष नई चुनौतियाँ भी खड़ी की हैं। सूचना प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग नागरिक स्वतंत्रता, गोपनीयता, व्यक्तिगत डेटा और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात करता है।

उदाहरणस्वरूप:

1. निगरानी (Surveillance): सरकारें और कॉर्पोरेट कंपनियाँ नागरिकों के डेटा को लगातार ट्रैक करती हैं।
2. डेटा चोरी: हैकिंग और साइबर अपराधों से व्यक्तिगत सूचनाएँ लीक होती हैं।
3. फेक न्यूज़ और गलत सूचना: लोकतंत्र और सामाजिक सद्भाव को चुनौती।
4. ऑनलाइन ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग: व्यक्ति की गरिमा और मानसिक शांति का हनन।
5. डिजिटल असमानता: इंटरनेट तक पहुँच न होना भी एक प्रकार से अधिकारों का हनन है।

डिजिटल युग में मानव अधिकार उल्लंघन के प्रमुख रूप

1. निजता का हनन (Right to Privacy)

डिजिटल प्लेटफार्मों पर हमारी गतिविधियाँ, खोज (search), खरीदारी, सोशल मीडिया संवाद - सबका डेटा लगातार संग्रहित होता है। फेसबुक, गूगल और अन्य

कंपनियाँ इस डेटा का इस्तेमाल व्यावसायिक मुनाफे के लिए करती हैं। कई बार यह डेटा तीसरे पक्ष तक पहुँच जाता है, जिससे व्यक्ति की गोपनीयता का उल्लंघन होता है। भारत में सुप्रीम कोर्ट ने 2017 में निजता को मौलिक अधिकार घोषित किया, लेकिन व्यवहारिक स्तर पर यह अभी भी सुरक्षित नहीं है।

2. साइबर अपराध और पहचान की चोरी

बैंकिंग धोखाधड़ी, ऑनलाइन ठगी, क्रेडिट कार्ड हैकिंग और डिजिटल पहचान की चोरी आम हो चुकी है। ये अपराध न केवल आर्थिक नुकसान पहुँचाते हैं बल्कि व्यक्ति के सम्मान और सुरक्षा को भी खतरे में डालते हैं।

3. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर खतरा

सोशल मीडिया ने विचारों की अभिव्यक्ति का दायरा तो बढ़ाया, लेकिन साथ ही कई देशों में सरकारें डिजिटल मंचों पर सेंसरशिप लागू कर रही हैं। कई बार असहमति जताने वाले व्यक्तियों को ऑनलाइन ट्रोलिंग, धमकी और कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ता है।

4. फेक न्यूज़ और दुष्प्रचार

डिजिटल माध्यम गलत सूचनाओं का सबसे तेज़ माध्यम बन गए हैं। चुनावों में फेक न्यूज़ का इस्तेमाल मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए किया जाता है। इससे लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन होता है और समाज में अविश्वास फैलता है।

5. साइबर बुलिंग और ऑनलाइन हिंसा

किशोर और महिलाएँ विशेष रूप से ऑनलाइन उत्पीड़न और बदनामी का शिकार बनते हैं। अश्लील संदेश, मॉर्फ्ड तस्वीरें, ब्लैकमेलिंग और धमकी जैसे कृत्य मानसिक स्वास्थ्य और गरिमा दोनों पर हमला करते हैं।

6. डिजिटल असमानता

गाँवों, पिछड़े क्षेत्रों या गरीब वर्गों के पास इंटरनेट और स्मार्टफोन की पर्याप्त सुविधा नहीं है। शिक्षा, सरकारी योजनाओं और रोजगार से जुड़ी अधिकांश सेवाएँ अब डिजिटल हो चुकी हैं। इस असमान पहुँच के कारण समाज का एक बड़ा वर्ग अपने अधिकारों से वंचित रह जाता है।

उदाहरण

कैम्ब्रिज एनालिटिका घोटाला: कैम्ब्रिज एनालिटिका घोटाला में फेसबुक से लाखों यूज़र्स का डेटा चोरी कर चुनावों में इस्तेमाल किया गया।

पेगासस स्पाईवेयर विवाद (भारत): भारत में पेगासस स्पाईवेयर विवाद में पत्रकारों, नेताओं और कार्यकर्ताओं के फोन की जासूसी से निजता और स्वतंत्रता पर प्रश्न उठे।

ऑनलाइन ट्रोलिंग: कई महिला पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को लगातार ऑनलाइन धमकियाँ मिलती हैं।

कानूनी और नीतिगत पहल

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000, साइबर अपराध से निपटने का प्रमुख कानून है। हाल ही में "डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन एक्ट 2023" लाया गया है, जो व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा को लेकर दिशा-निर्देश देता है। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूरोपीय संघ ने "GDPR (General Data Protection Regulation)" लागू किया है, जो डेटा सुरक्षा का मजबूत उदाहरण है।

समाधान और सुधार के उपाय

1. मजबूत कानून और उनका सख्त पालन - निजता और डेटा सुरक्षा से जुड़े कानूनों को और अधिक प्रभावी बनाना होगा।
2. डिजिटल साक्षरता - नागरिकों को साइबर सुरक्षा, पासवर्ड प्रबंधन और फेक न्यूज़ पहचानने की जानकारी देना आवश्यक है।
3. तकनीकी पारदर्शिता - बड़ी कंपनियों को अपने डेटा उपयोग और एल्गोरिथ्म के बारे में स्पष्ट जानकारी देनी चाहिए।
4. ऑनलाइन उत्पीड़न पर रोक - साइबर बुलिंग और महिला उत्पीड़न पर त्वरित कानूनी कार्रवाई सुनिश्चित करनी होगी।
5. डिजिटल समानता - ग्रामीण और कमजोर वर्गों को सस्ते इंटरनेट व उपकरण उपलब्ध कराए जाएँ।
6. नागरिक निगरानी - केवल सरकार और कंपनियों पर निर्भर न रहकर नागरिक समाज को भी डिजिटल अधिकारों की रक्षा में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

निष्कर्ष

डिजिटल युग ने मानव जीवन को गति और सुविधा दी है, लेकिन साथ ही मानव अधिकारों के लिए नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। निजता, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा - ये सभी डिजिटल हस्तक्षेप से प्रभावित हो रहे हैं। यदि समय रहते प्रभावी कदम न उठाए गए तो तकनीक का यह युग लोकतंत्र और मानव अधिकार दोनों के लिए खतरा बन सकता है। इसलिए आवश्यक है कि हम तकनीक के लाभ उठाएँ लेकिन साथ ही सतर्क रहकर मानव अधिकारों की रक्षा करें।

नमस्ते, वन्दे भारत मातरम् !

*****

'जीने के अधिकार' की भिक्षा'

श्री चंद्र मिश्रा*

हर गरीब भीख नहीं माँगता और हर भिखारी गरीब नहीं होता। 2017 से ओडिशा के जगन्नाथ धाम से लेकर उत्तर प्रदेश के वाराणसी, गुजरात के दाभोडा हनुमान मंदिर से लेकर बेंगलुरु के मगडि रोड, कोलकाता के विक्टोरिया मेमोरियल से मुंबई का आजाद मैदान तक, मैंने भीख माँगने की समस्या को बहुत करीब से समझा है। इस अनुभव के आधार पर मैं यकीनन कह सकता हूँ कि "कोई भी इंसान भिखारी नहीं होता।"

जब मीडिया ₹7.5 करोड़ की संपत्ति वाले "अमीर भिखारी" भरत जैन की खबर चलाता है, तो ज़ाहिर है कि वह भिखारी नहीं है। इसी तरह, भीख माँगने वाले रैकेट और अन्य रैकेट जो भीख की आड़ में चलाते हैं, वे भी भिखारी नहीं हैं।

अगर कोई वाकई में एक असली भिखारी है, जिसका भूखा पेट उसे रोटी के एक टुकड़े के लिए हाथ फैलाने पर मजबूर करता है, तो वह यकीनन अपने इस हाल से खुश नहीं है। वह अपने जीवन की एक दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति से जल्द से जल्द बाहर निकलना चाहता है। वह हमारी सहानुभूति के लिए भीख नहीं माँग रहा है, बल्कि वह तो सम्मान से जीवन जीने और अपनी गरिमा वापस पाने के लिए मदद या अवसर की तलाश में है।

भीख माँगना: एक औपनिवेशिक अभिशाप

भारत हमेशा से स्वाभिमानी और सम्मानित भिक्षुओं (संतों) की भूमि रहा है, जो त्याग की मिसाल थे। यहाँ गुरु (शिक्षक) ज्ञान के प्रकाश-स्तंभ थे और ब्राह्मण

*संस्थापक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, बैगर्स कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया

आध्यात्मिक मूल्यों का प्रचार करते थे। वे कभी संपत्ति जमा नहीं करते थे, न्यूनतम ज़रूरतों से ज़्यादा कुछ नहीं लेते थे। आम जनता भी उन्हें दान देकर गर्व महसूस करती थी।

भारत में भीख माँगने का जो वर्तमान स्वरूप है- यानी जीवन जीने के लिए भीख माँगना - वह 1943 के बंगाल के अकाल का नतीजा है। यह अकाल ब्रिटिश नीतियों के कारण आया था। ब्रिटिश सरकार ने द्वितीय विश्व युद्ध में अपनी सेना को अनाज भेजा, अकाल की घोषणा से इनकार किया और "निषेध नीतियाँ" लागू कीं, जिन्होंने खाद्य भंडारों को नष्ट कर दिया। इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर भुखमरी, लाखों मौतें, बीमारियाँ और पलायन हुआ। परिवार बिखर गए, बच्चों को छोड़ दिया गया। सड़कों पर अनाथ और नंगे बच्चों की कतारें मीलों तक फैली हुई थीं, हाथों में थे खाली डिब्बे।

कोई आश्चर्य नहीं कि उसी वर्ष ब्रिटिश सरकार ने Bengal Vagrancy Act, 1943 लागू किया। हालाँकि, उन्होंने पहले भी European Vagrancy Act, 1869 लागू किया गया था, लेकिन उसका मकसद भारत में भीख माँग रहे यूरोपीय बेरोजगारों पर लगाम लगाना था। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य था गोरे भिखारियों के कारण होने वाली शर्मिंदगी और नकारात्मक छवि को रोकना।

भिक्षा का अपराधीकरण

ब्रिटिश राज में भारत ने कई अकाल झेले - पहला 1770 में, फिर 1783, 1866, 1873, 1892, 1897 और सबसे घातक 1943-44 में। हालाँकि, उस समय भारत में संगठित स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था जो कभी-कभी हिंसक होता था I लेकिन अकाल के दौरान कोई संगठित दंगा नहीं हुआ। फिर भी, ब्रिटिश शासकों को सड़कों पर भूखे-नंगे लोगों से डर था।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के डर ने ब्रिटिश सरकार को भारत में भीख माँगने को अपराध घोषित करने के लिए मजबूर कर दिया। वे किसी भी कीमत पर लोगों को सड़कों पर आने से रोकना चाहते थे। ब्रिटिश सरकार ने अपने भारतीय साम्राज्य के आखिरी दिनों में Bombay Beggars Act, 1945, और Madras Prevention of Begging Act, 1945, के साथ भिक्षा को अपराध की श्रेणी में डाल दिया। यद्यपि उस समय भीख मांगना कोई पेशा नहीं बन गया था। जब शासक भोजन और जीवन के लिए मजबूर गुहार को अपराध मानते हैं, तो वे खुद को सबसे बुरे अपराधी साबित करते हैं, जो मानवता और एक कल्याणकारी राज्य के मूल सिद्धांतों का खुलेआम कत्ल करते हैं।

दुर्भाग्य से, स्वतंत्र भारत में भी हमारे नीति-निर्माताओं ने इसी ब्रिटिश सोच का अनुसरण किया। 1 सितंबर, 1949 को, श्री राज बहादुर (जो बाद में संचार मंत्री, 1956-

57 बने) ने संविधान सभा की चर्चा के दौरान "भिखारियों पर नियंत्रण और उनका उन्मूलन" विषय उठाया और इसे केंद्रीय सूची में शामिल करने का प्रस्ताव रखा। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने चतुराई से इस मुद्दे से बचते हुए कहा कि इसे केंद्रीय सूची में अलग से शामिल करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भीख माँगने की समस्या पहले से ही Concurrent List में "आवारागर्दी" (vagrancy) के तहत शामिल है।

लेकिन, विडंबना यह है कि डॉ. अंबेडकर के गृह राज्य ने उस औपनिवेशिक सोच को जारी रखा और 1959 में The Bombay Prevention of Begging Act लागू किया, जिसमें बिना वारंट गिरफ्तारी का प्रावधान था। किसी केंद्रीय कानून की अनुपस्थिति में, राज्यों ने अपनी सुविधानुसार इस कानून को अपनाना जारी रखा। यह अधिनियम "गरीबी को अपराध बनाता है" और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(a) और 21 के तहत दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। फिर भी इसे दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और अन्य राज्यों ने अपनाया।

जीने का अधिकार

लगभग 20 राज्यों ने The Bombay Prevention of Begging Act, 1959 को अपनाया है, जिसमें बिना वारंट गिरफ्तारी और 3 से 10 साल तक भिखारी गृहों में कैद की सजा का प्रावधान है।

2018 में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक अहम कदम उठाते हुए गरीबी के मूल कारणों को संबोधित किए बिना भीख माँगने को अपराध बनाने पर सवाल उठाया। इसने बॉम्बे अधिनियम के कई प्रावधानों को "स्पष्ट रूप से मनमाना" और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन घोषित किया, जो मर्यादा के साथ जीने का अधिकार सुनिश्चित करता है।

जुलाई 2021 में, सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली में सार्वजनिक स्थानों से भिखारियों को हटाने की मांग वाली एक जनहित याचिका (PIL) पर "अभिजातवादी विचार" (elitist view) लेने से इनकार कर दिया। शीर्ष अदालत ने इस मुद्दे की स्पष्ट व्याख्या की: "कोई भी व्यक्ति भीख तब तक नहीं माँगेगा जब तक वह गरीबी के कारण ऐसा करने के लिए मजबूर न हो। यह एक सामाजिक-आर्थिक मुद्दा है जिसे सार्वजनिक स्थानों से हटाने के निर्देश से ठीक नहीं किया जा सकता। बल्कि यह एक मानवीय समस्या है जिसे कल्याणकारी राज्य द्वारा संविधान के भाग III और IV के अनुसार हल किया जाना चाहिए।"

इस मुद्दे पर आगे बढ़ते हुए, 12 सितंबर, 2025, को, सुप्रीम कोर्ट ने समाज के इस सबसे उपेक्षित और तिरस्कृत वर्ग के "सम्मान के साथ जीने का अधिकार" को

संवैधानिक दर्जा दिया (एम.एस. पाटेर बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, 2025 INSC 1115)। भिखारी गृहों को अर्ध-आपराधिक दण्ड या "विवेकाधीन परोपकार" जैसी सोच वाली धारणा को खारिज करते हुए, अदालत ने इन्हें Constitutional Trust के रूप में देखा, जिसमें अनुच्छेद 12 के तहत व्यक्ति के गरिमा के साथ जीने के अधिकार की रक्षा करने का संवैधानिक कर्तव्य सौंपा गया है।

'दान' का अपराधीकरण

फरवरी 2022 में, केंद्र सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (MoSJE) ने भिखारियों के लिए SMILE (Support for Marginalized Individuals for Livelihood & Enterprise) परियोजना शुरू की, जिसका बजट ₹100 करोड़ था। लेकिन, साढ़े तीन साल बाद भी स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं दिख रहा I क्योंकि यह बीमारी की जड़ का पता लगाए बिना केवल लक्षणों का इलाज कर रही है।

विडंबना यह है कि यह योजना औपनिवेशिक मानसिकता का शिकार हो गई, जब इसने इंदौर शहर में भीख माँगने और भिक्षा देने दोनों को अपराध बना दिया। इंदौर के जिला मजिस्ट्रेट ने भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS), 2023 की धारा 163 का इस्तेमाल करके, भूखे और जरूरतमंदों को दान या मानवीय सहायता देने की सदियों पुरानी सामाजिक मूल्य प्रणाली पर प्रतिबंध लगा दिया। दान देने वालों के खिलाफ FIR दर्ज की गईं। किसी स्पष्ट केंद्रीय कानून की अनुपस्थिति ने कानून-रक्षकों को कानून-निर्माताओं को दरकिनार करके अपनी व्याख्या के अनुसार कानून का दुरुपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया।

भिखारियों के मानव अधिकार

5 जुलाई, 2024 को, भारतीय राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (NHRC) ने MoSJE और सभी राज्यों के मुख्य सचिवों को भीख माँगने में लगे लोगों की सुरक्षा और पुनर्वास के लिए दिशा निर्देश जारी किए। आयोग ने कहा कि "भीख माँगना न केवल एक सामाजिक-आर्थिक समस्या है, बल्कि समाज की विफलता को भी दर्शाता है।" इस सलाह में MoSJE को दो महत्वपूर्ण सिफारिशें दी गई थीं: (1) भिखारियों का सर्वेक्षण, पहचान, मानचित्रण और डेटाबेस तैयार करना, और (2) एक राष्ट्रीय नीति का ड्राफ्ट तैयार करना। 15 महीने बीत जाने के बाद भी, यह सलाह मंत्रालय की फाइलों में खोई हुई है।

आयोग ने 28 अगस्त, 2024 को भिक्षावृत्ति पर एक Open House भी बुलाई और भिखारियों के राष्ट्रीय डेटाबेस की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। आयोग के महासचिव श्री भारत लाल ने सरकार से सभी भिखारियों को आधार कार्ड जारी करने और सामाजिक

सुरक्षा योजनाओं में शामिल करने का आग्रह करते हुए पूछा, "जब सरकार प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY) के तहत 81 करोड़ लोगों को मुफ्त अनाज दे रही है, तो कुछ लाख बेघर भिखारियों को क्यों नहीं शामिल कर सकती?"

आगे का एजेंडा

78 साल के "स्वतंत्र" भारत की संवैधानिक चेतना और सामाजिक जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि बेघर, लाचार और अति-गरीब भिखारियों को अपराधियों के बजाय इंसान और देश के समान नागरिक के रूप में देखने के लिए एक केंद्रीय कानूनी ढाँचा तैयार किया जाए। सच्चे कल्याणकारी जन-गण-मंगल-दायक शासन की नींव रखने के लिए, हमें समाधान तैयार करने से पहले समस्या को स्वीकार करना होगा और उसके सही कारणों का पता लगाना होगा। भिखारियों के साथ काम करने के अपने अनुभव के आधार पर, मैं एक साल के भीतर निम्नलिखित कदम उठाने का प्रस्ताव प्रस्ताव पेश करता हूँ:

- भिक्षावृत्ति और भिखारी की एक स्पष्ट परिभाषा तय की जाए, जिसमें भिक्षा और भिखारी की विभिन्न श्रेणियाँ (classification) शामिल हों।

- भीख माँगने में लगे लोगों की समस्या और संभावना (Problem & Possibility) सर्वेक्षण किया जाए, जिसमें यह पता लगाया जाए कि वे क्यों भीख माँगते हैं और क्या वे काम कर सकते हैं या नहीं।
- उन्हें अति-गरीब और लाचार (Extreme Poor and Helpless) या ऐसे ही किसी नाम से पहचान पत्र जारी किए जाएँ। इससे भीख के रैकेट/रैकेटियर और नकली भिखारियों पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी।

- अस्थायी पुनर्वास के बजाय स्थायी रोज़गार (Sustainable Livelihood) के माध्यम से उनके पूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया तैयार की जाए।

- SMILE परियोजना में गुमशुदा E (entrepreneurship) को प्राथमिकता दिया जाये, जिसमें बाज़ार से जुड़े प्रशिक्षण, ऋण, बाज़ार और पेशेवर समर्थन और मार्गदर्शन शामिल हों, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

- बाल भिखारियों के जीवन का पुनर्निर्माण कर भिक्षावृत्ति के चक्र को रोका जाए।

- भारत को हमेशा के लिए भिक्षा-मुक्त बनाने के लिए एक समय-बद्ध कार्य योजना (Time-bound Action Plan) की रणनीति बनाई जाए, जिसमें भविष्य में किसी भी नए ज़रूरतमंद को शामिल करने के प्रावधान हों।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

सफाई कर्मियों के मानव अधिकार

बेजवाड़ा विल्सन*

हमारा देश लोकतांत्रिक है। लोकतंत्र में हर नागरिक को उस के हक-अधिकार जन्म से ही मिल जाते हैं। सरकार नागरिकों के हक और विकास के लिए कानून बनाती है। ये कानून गरीबों, अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अपसंख्य कों, हाशिए के लोगों के हित में होते हैं। देश के सभी नागरिक गरिमा के साथ अपना जीवन जिएं इसकी जिम्मेदारी सरकार की होती है। पर जनहित में कानून बनाना और सख्ती से उनका कार्यान्वयन होना दोनों अलग बातें हैं।

हजारों वर्षों से हमारे देश में मानव मल ढोने की प्रथा जारी है। भारत सरकार वर्ष 1993 और वर्ष 2013 में मैला प्रथा उन्मूलन के लिए कानून बना चुकी है। सुप्रीम कोर्ट और अन्य हाई कोर्ट भी इस प्रथा के उन्मूलन के लिए आदेश जारी कर चुके हैं।

ये कानून और आदेश देश के नागरिकों की मुक्ति (Liberty), सुरक्षा (Security), स्वेतंत्रता (Freedom), गरिमा (Dignity), न्याय (Justice) का भरोसा दिलाते हैं।

इस सब के बावजूद दुख की बात है कि देश में आज भी मानव मल ढोने की प्रथा जारी है। सीवर और सेप्टिक टैंकों की मैनुअली सफाई जारी है। इसमें सफाई करने वाले सफाई कर्मचारी जहरीली गैसों से दम घुट कर मर रहे हैं।

*संस्थापक एवं राष्ट्रीय संयोजक संयोजक सफाई कर्मचारी आंदोलन

सीवर-सेप्टिक टैंको की सफाई के दौरान वर्ष 2023 में 102 वर्ष 2024 में 116 और वर्ष 2025 में 116 सफाई कर्मचारी मारे जा चुके हैं। इसे हर हाल में रोकना होगा। सरकार को कठोर कदम उठाने होंगें।

सीवरों में सफाई के दौरान मरने वालों के परिजनों के लिए सुप्रीम कोर्ट ने मुआवजा 10 लाख से बढ़ाकर 30 लाख रुपये कर दिया है। तो क्या हम लोग मुआवजे के लिए अपने लोगों के सीवरों में सफाई करने के दौरान मरने देना चाहिए? उनके मरने का इंतजार करें?

हमारे देश का संविधान हमें बराबरी का हक देता है। सबको सम्मान के साथ जीने का हक देता है। संविधान का अनुच्छेद 21 हमें गरिमा के साथ का अधिकार देता है।

आज भी हजारों सालों से चली आ रही मानव मल ढोने की अमानवीय प्रथा क्यास मानव अधिकारों का उल्लंघन नहीं है?

आज जब हम चांद पर पहुंच चुके हैं और मंगलयान छोड़ चुके हैं। हमारा देश इतना हाईटेक हो चुका है तो क्याह सीवर-सेप्टिक टैंको की सफाई के लिए हमारे पास तकनीक क्यों नहीं है?

किसी अमानवीय प्रथा को किसी समुदाय विशेष पर थोपने की जड़ें जातिवाद और पितृसत्ता में निहित हैं। जातिवाद और वितृसत्ता दलितों और महिलाओं के साथ छुआछूत और भेदभाव करते हैं। गैर बराबरी करते हैं। एसे में संविधान को जानना और मानना बहुत जरूरी है। संविधान ने हमें मौलिक अधिकार दिए हैं। सम्मान के साथ जीने का हक दिया है। छुआछुत और जातिगत भेदभाव के खिलाफ कानून बनाए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 17 और 21 हमें पूरी मानवीय गरिमा के साथ जीने का हक देते हैं।

इसलिए आज की जरूरत जातिवाद और पितृसत्ता, को खत्म करने की है।

संविधान निर्माता बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर ने जाति के विनाश की बात कही थी। क्योंकि जाति के आधार पर हम पर अमानवीय पेशे जन्म से थोप दिए जाते हैं।

सफाई कर्मचारी आंदोलन इस जाति और पेशे की लिंक को तोड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। देश से मैला प्रथा उन्मूलन के लिए संघर्षरत है।

दुखद है कि आज भी देश में हाथ से मल उठाने की प्रथा उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्ये प्रदेश और जम्मू - कश्मीर के 46 जिलों में जारी है। यह सरासर मानव अधिकारों का उल्लंघन है।

दुख की बात है कि मानव अधिकारों के प्रति हमारी सरकार उदासीन है। यही कारण है कि सरकार मानव अधिकारों के प्रति जनजागरूकता नहीं फैलाती। जहां मानव अधिकारों का उल्लं घन होता है जो देश के नागरिकों को उनके मानव अधिकारों से वंचित करते हैं उनके खिलाफ सरकार सख्त कदम नहीं उठाती। हालांकि कानूनों में ऐसे लोगों के खिलाफ प्रावधान हैं जो किसी भी नागरिक को मानव मल ढ़ोने के लिए या सीवर या सेप्टिक टैंक की सफाई के लिए बाध्य करते हैं। उनके लिए कानूनों में जुर्माना और जेल होने का प्रावधान है। मानव मल ढुलवाना या सीवर सेप्टिक टैंको की मैनुअली सफाई करवाना कानूनन दण्डनीय अपराध है। बावजूद इसके यह सब जारी है। क्यों ? इसे करवाने वाले व्यक्ति को सजा क्योंर नहीं मिलती? उसके खिलाफ एफआईआर (FIR) तक नहीं होती। क्यों ?

आज इक्कीसवीं सदी के वर्ष 2025 में भी मानव मल ढ़ोने की मानव मल साफ करने की अमानवीय प्रथा क्याद हमारे लिए शर्मनाक नहीं होना चाहिए? क्या यह जघन्यो प्रथा विकासशील भारत के माथे पर कलंक नहीं है? क्या देश में रामराज की खुशफहमी वालों को इस पर विचार नहीं करना चाहिए?

जब देश में सबके साथ बराबरी का व्यवहार होगा, सबको समानता मिलेगी, सबको न्याय मिलेगा, सबका आपस में बंधुत्वय होगा, सबको पूरी मानवीय गरिमा के साथ जीने की आजादी होगी। तभी देश के संविधान द्वारा प्रदत्त सभी मानव अधिकारों का देश के नागरिक आनंद ले पाएंगे। यह तभी संभव है जब इसके लिए मानव अधिकार आयोग, देश के सभ्य नागरिक, लोकतंत्र और संविधान में विश्वास रखने वाले लोग देश को बेहतर बनाने के लिए अपने कर्तव्यों और दायित्वों का पालन करें ।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

भूमड़लीकरण के दौर में मानव अधिकार

डॉ. अलका भारती *
डॉ. राकेश राणा **

हम 'वसुधैव कुटुंबकम' की मान्यता वाले हैं, हमने विश्व को जियो और जीने दो का आदर्श दिया है। लेकिन अब लोगों मे सद्भाव व सहिष्णुता समाप्त होती जा रही है और समाज में विषमताएं व शोषण की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। मानसिक प्रताड़ना बढ़ने लगी है। समाज में कुछ वर्ग व समूहां को मूलभूत मानव अधिकार भी प्राप्त नहीं है। लोगों के उत्थान के लिए कई कानून बनाए गए हैं। समाज को मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में देखें तो आधुनिक हों या पुरातपंथी हर किस्म की दकियानूसी धारणाओं से दूर सत्य के प्रति आदर अहिंसा विश्व मैत्री और समुदायगत समरसता के आधार पर मानव अधिकारों की नई सकल्पना की आधारशिला गढ़ी जा सकती है। आपसी सौहार्द्र व्यक्ति के समाजीकरण और उसकी अस्मिता के निर्माण के लिए भी आवश्यक है। बच्चे जीवन और समाज के मूल्य परिवार, समुदाय और विद्यालय जैसी सामाजिक संस्थाओं में रहकर सीखते हैं। यह तथ्य इस ओर संकेत देता है, कि हम दूसरे लोगों के भी ऋणी है। परस्पर निर्भरता हमारे जीवन का मूल मंत्र है। यह वह प्रक्रिया है जो जीवन संभव बनाती है और उसे संचालित तथा सपेषित करती है। पारस्परिकता तेजी से घटी जा रही है। समूह या सामूहिकता मानव स्वभाव है क्योंकि अकेले व्यक्ति चिंतन या विचार तो कर सकता है पर विचार-विमर्श नहीं कर सकता है। वह अकेले आनन्द तो ले सकता है पर उत्सव नहीं मना सकता है। वह अकेले खुश तो हो सकता है, मुस्कुरा सकता है पर हर्षोल्लास से खुशी नहीं मना सकता है। हम सबको एक दूसरे की जरुरत है, बहुत सारी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हमारे सामाजिक संबंध करते हैं। यही समाज का

*असिस्टेंटप्रोफेसर, विधिसंकाय, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुरकलां, सोनीपत, हरियाणा
**प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग एम.एम.एच. कालेज, गाजियाबाद, उ.प्र.

महत्व है और यही सामाजिक संबंधों का सौंदर्य भी। लोग वर्षों से चले आ रहे पारस्परिक नजरिये की बात करते हैं। उसके क्या आधार है? यह तो निश्चित है कि दो भिन्न धार्मिक आचरणों के बीच अंतर होगा। लोगों की जीवन पद्धति अलग-अलग हो सकती है। इस चिन्ता को स्वीकार कर ये संबंध बनते और टिकते थे यह आश्चर्य और खेद की बात है कि जिस दौरान भिन्न समुदायों के बीच रोटी-बेटी के रिश्ते कड़ाई से वर्जित थे और उन्हें कोई नैतिक सामाजिक प्रशासनिक या कानूनी स्वीकृत नहीं प्राप्त थी उस समय भी पस्पर सद्भाव काफी हद तक सहज और स्वभाविक था।

मानव अधिकार का मसला और सामाजिक न्याय का सवाल उतना ही पुराना है जितना स्वयं समाज। न्याय समाज में व्यवस्था स्थापित करने का एक प्रमुख आधार रहा है। न्यायपूर्ण व्यवस्था राष्ट्र की प्रगति और कुशलता की सूचक होती है। न्याय ही सामाजिक तनावों को दूर करने का एकमात्र साधन है। विशेष रूप से एक लोकतांत्रिक देश में जहाँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता को विशेष महत्व दिया जाता है। सामाजिक न्याय की पूरी ऐतिहासिकता को जब हम गहराई से देखने समझने की कोशिश करते है तो पता चलता है कि धर्म, नीति, राजनीति ये गुजरता हुआ यह बडा सवाल आज बाजार में खड़ा है। इस शोध-पत्र में सामाजिक न्याय की ऐतिहासिकता को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की गई है।

उदारवाद आज के सांप्रतिक परिप्रेक्ष्य में एक मानवीय मूल्य के रूप में उभर रहा है। उसे स्वीकृति भी मिली है और इसके प्रसार के लिए सचेत व सतर्क हस्तक्षेप भी किये गये है। यह सब उपभोक्तावाद का विस्तार है। इन प्रयासों की बुनियादी कमी थी कि इसने संसार के सभी समाजों को पिछड़ा माना जिसमें पश्चिमी समाज के मूल्य अनिवार्यतः स्वीकार्य नहीं थे। या यूँ कहें कि इन मूल्यों का विकल्प स्वीकृत न था भारत में इस नई जीवन शैली में पांव पसारे, तेजी से बढते हुए शहर उद्योग और अर्थव्यवस्था में बढ़त हासिल करने के लिए हम प्रत्यनशील रहें लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में सामाजिक सहजीवों की पारम्परिक बनावट गौण हो गई और लगभग भुला दी जाती रही । अब लोगों से सम्बंध- व्यक्तियों के बारे में तो मालूम है किन्तु जिन समुदायों से वे व्यक्ति आते हैं, उनमें उनका कोई एक परिचय नही रह जाता। अज्ञान के चलते परस्पर समुदायों के बीच अविश्वास पनपता है। इन अविश्वासो को कम करने के जो उपाय अपनाते है। उनके पीछे भी समुदायों की समझ काम नहीं करती क्योंकि जिन लोगों के द्वारा वह उपाय सुझाये जाते हैं। उनका स्वयं का परिचय समुदायों से नहीं होता। अतः उदाहरण के तौर पर जिस साम्प्रदायिक दंगे को हम आसानी से दो सम्प्रदायों के बीच की लडाई मान लेते है या ठहरा देते हैं, जबकि ज्यादातर मामलों में सच्चाई यह होती है कि इनमें दोनों ही पक्ष हिंसात्मक कार्य के लिए साम्प्रदायिक पहचान को केवल एक आड़ में एक बहाने के रूप में शामिल

करते हैं, यदि ऐसा ना होता तो प्रत्येक दंगे के थमने के बाद हम अपने सहजीवन पर वापस लौटने में पूरी तरह सक्षम नहीं हो पाते। जिन मानवीय उदाहरणों को हर दंगों मे सुर्खियां मिलती हैं। एक दूसरे की सामुदायिक और और साम्प्रदायिक पहचान को अस्वीकार किया जा रहा है, उसे नकारने की कोशिश हो रही है, हम यह जानने का कोई प्रयास नहीं करते कि जिन समुदायों और सम्प्रदायों के बारे में हम राय बना रहे हैं। वे वस्तुतः हैं क्या? और स्थानीय स्तर पर उनका क्या इतिहास है? सांस्कृतिक विविधता व्यवहार और आचरण की बहुलता तथा उपासना पद्धति के वैकल्पिक स्वरूपों की स्वीकृति साम्प्रदायिक सौहार्द्र की बुनियादी शर्त है। सामाजिक जीवन में विभेद स्वाभाविक है और एक हद तक जरूरी भी। परिधियां सीमा-रेखा व अस्तित्व की पहचान को रेखांकित करती है। पर यही परिधि तब बाधा बन जाती है, जब उससे होकर गुजरने वाले मार्ग मे आवाजाही की मनाही हो जाती है और एक अस्तित्व दूसरे का विरोधी बन जाता है। बड़े पैमाने पर यह स्थिति जियो और जीने दो की याद दिलाती है। और उस व्यापक दृष्टि से अपने को वंचित कर रहे है, जो व्यापक सत्य है। व्यक्ति हो या देश अकेले अपने में अधूरा और अपर्याप्त ही मानता रहेगा। देश और काल से ही जुड़ने में जीवन की संभावना बनती है। स्थानीयता का विलोप धीरे-धीरे व्यक्ति और राज्य के बीच किसी भी इकाई को ठीक से नहीं रहने देता। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम स्थानीय अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक बनावट को ध्यान में रखते हुए मानव अधिकारों के लिए एक सकारात्मक पहल करें । अंत में प्रकृति और मनुष्य के बीच सामंजस्य बिठाकर सम्मानित जीवन जीने के मनुष्य के नैसर्गिक अधिकर की भावनात्मक गूंज से निकली मानावाधिकार के 30 सूत्री रचनात्मक मानव अधिकारवादी संकल्पनाएं एक व्यापक मनुष्यता की अभिव्यक्ति है जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मतदान का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम का अधिकार, स्वास्थ्य रहने के अधिकार, रहने के लिए आवास का अधिकार आदि अनेक अधिकारों के लिए श्रृखलाओं की संस्तुति है। प्रो. नन्द किशोर आचार्य के शब्दों में यदि हम कहें तो राज्य वास्तव में एक ऐसा संस्थान है। जिसका प्रयोजन नागरिकों के जीवन को स्वस्थ और सुचारू बनाना है लेकिन जीवन अन्ततः नागरिकों का है। इसलिए उनके बारे में उनकी इच्छा के प्रतिकूल कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। (द्रष्टव्य संस्कृति की सभ्यता/नंद किशोर आचार्य/वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर/2007 ।)

21वी सदी की पीढी के अपने जीने के तौर तरीके बदल रहे है। उपभोग की तरफ आकर्षण से हाशिए पर गुजर-बसर कर रही जनता तक हम संयुक्त राष्ट्र राज्य पूंजीवादी और मानव अधिकारवादी कैसे पहुँच बना सकेंगे इस पर संवेदनशील होने का समय आ चुका है। विश्व के साम्राज्यशाली देशों, तीसरी दुनिया के देशों तथा अन्य अंतराष्ट्रीय

महत्व की संस्थाओं को एक दूसरे के बारे में सोचना होगा। आज मानव अधिकार मनुष्यों के पहुंच से बाहर है यह हमारी विफलता है। राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अथवा स्थानीय स्तर पर न्याय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और अन्य मामलों के एक मनुष्य को मिलने वाले अधिकार को प्रदान करने के वे प्रयास शुरू करने का वक्त है, जो वास्तव में समता स्वतंत्रता और गरिमा को सामान्य से हाशिए के लोगों की अनुभूति का हिस्सा बन सकें। प्रोटागारस जैसा सोफिस्ट यह मानता था कि मनुष्य अपना पैमाना खुद है। प्रोटागारस के इस कथन की प्रासंगिकता जितनी तब थी उतनी ही आज भी है। हां यह कहा जा सकता है कि आधुनिक संदर्भो में उसके माध्यम बदले हैं तभी हमारे यहां आध्यात्मिक होना व्यक्ति के विवेकवान होने का लक्षण था किन्तु उत्तर आधुनिक विमर्श व संवेदना को स्वीकार करने की प्रक्रिया भी बदली है, लेकिन अब भी शिक्षा एक ऐसा विकल्प है, जो व्यक्ति को अपना खुद का पैमाना बनने का अवसर मुहैया करती है। ऐसे में जब दुनिया के वैश्विक विमर्श का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। तो संयुक्त राष्ट्र की चेतना क्यों काम नही कर पा रही है? क्यों उसकी अध्यक्षता में बने व्यापक मानवता के घोषणा पत्र अभिसमय मूर्तरूप नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं। फ्रेडरिको मेयर ने इस पर स्पष्ट टिप्पणी भी कि थी कि संयुक्त राष्ट्र एक अनोखा प्रजातांत्रिक मंच है परन्तु इसके प्राधिकारों को पहले तो शीतयुद्ध की लगभग अर्ध सदी द्वारा तथा उसके बाद प्रमुख शक्तियों द्वारा उन सिद्धांतो की ही अवज्ञा करते हुए जिनकी रक्षा के लिए वह प्रतिबद्ध है (मानव अधिकार सभी के लिए/फ्रडरिको मेयर/युनेसकोदूत संपादक एम पी श्रीवास्तव व सुमन शर्मा /अंक-जनवरी 2000/पृष्ठ सं 9 ।)

जहां भुखमरी होगी वहां शांति हो ही नहीं सकती। वहां संघर्ष और आतंकवाद होगा। यदि यह नहीं होगा तो किसान आत्महत्या करेंगे। युवा नक्सल की राह पकड़ लेंगे जैसा कि भारत में हो रहा है। स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, सुरक्षा और गरिमा यदि बरकरार हो जाए तो ऐसे दावे किये जा सकते हैं कि पंथ, नस्ल, जाति, लिंग जैसे मुद्दे मनुष्य का पहला विमर्श नहीं बनेंगे बल्कि लोगों के बीच अनुराग बढेगा। 1961 में एमनेस्टी इंटरनेशल का जन्म हुआ तो नवीन मानव अधिकार आन्दोलन की मांग यह है कि प्रत्येक देश की सरकार को सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद अपने नागरिकों के साथ कुछ मूलभूत सिद्धांतों के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। इसी क्रम में 1879 में हेलसिंकी में मानव अधिकार वॉच के नाम से एक गठबन्धन की स्थापना की। इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रीय समूहों का जन्म हुआ जो विश्व जो विश्व स्तर पर मानव अधिकारों की पैरवी करते हैं।

मानव अधिकारों का भारतीय संदर्भ देखने की कोशिश की जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज और संस्कृति में मानव अधिकारों का लम्बा इतिहास रहा है। प्रत्येक दौर में मानव अधिकारों को परिभाषित ओर परिष्कृत करने की कोशिश की गई। व्यवस्थित ढंग से मानव अधिकारों के क्षेत्र में कौटिल्य की महत्वपूर्ण देन है। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में लिखा है कि राजा को वृद्धों, निर्बलों, असहायों, दुखियों तथा मजबूरों के कल्याण की व्यवस्था करनी चाहिए। वैदिक युग के बाद मानव अधिकारों तथा मूल्यों का तेजी से पतन हुआ। हर्षवर्धन ने सक्षम तथा गुणवान व्यक्ति को जाति, रंग, धर्म और मत के भेदभाव के बिना अपने दरबार में आश्रय दिया। हर्षवर्धन के बाद भारत विदेश विजयों का महत्वपूर्ण गढ़ बन गया। विरासत में मिले विशिष्ट आदर्शो को बनाये रखने तथा मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हम सभी नागरिकों को समझदारी संवेदनशीलता व विचारशीलता से अपने दायित्वों का निर्वाह करने की आवश्यकता है और वे अपने स्तर पर गांव, कस्बे व शहर में दलितों पर हो रहे उत्पीड़न और मानव अधिकार करने वाले चन्द लोगों के विरूद्ध आवाज उठाकर पारस्परिक सौहार्द्र बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहें जिससे स्वस्थ व स्वच्छ सामाजिक वातावरण बने और जाति धर्म सम्प्रदाय को लेकर किसी तरह का विवाद न होकर परस्पर सभी लोग सम्मानपूर्वक प्रगति पथ पर आगे बढ़ सकें। राष्ट्र की विकासशीलता में योगदान दें सकें और भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में ला खड़ा कर सकें। हम सभी नागरिकों का दायित्व है कि संविधान तथा मानव अधिकार के सिद्धातों के प्रति सम्मानपूर्वक व्यवहारिक रूप में अपनी निष्ठा व्यक्त करें।

क्या आधुनिक विज्ञान व तकनीकी इसलिए आई हैं कि वह एक दिन धीर-धीरे मानवाश्रय विहीन व्यवस्था स्थापित करगी तो यह निश्चित रूप से सोचने का विषय है, यह एक अलग बहस है कि दलित को उसके अपने निजी अनुभवों और जमीन से उखाड़ा जा रहा हैं। नये क्षेत्रों में वह अचानक शोषण के नये कुचक्रों में फंस रहा हैं। वैकल्पिक खेती जैसी योजनाओं से खेतीहर मजदूर और सीमांत किसानों को समाप्त किया जा रहा हैं। जीविका के इस एकमात्र साधन से उन्हें वंचित किया जा रहा हैं। इंडियन रिसर्च सोसाइटी फॉर बैकवर्ड क्लास में गुजरात प्रदेश का अध्ययन किया कि मेदसाना, अहमदाबाद, कैश, और सुरेन्द्रनगर जिलों में मात्र 8% दलितों को सहकारी दुग्ध समितियों में शामिल किया गया हैं और कृषि सहकारी समितियों में इनका प्रतिशत 9% हैं इनको भी मात्र 3% को एडवान्स राशि दी गई। अनुसूचति जाति जनजाति आयोग द्वारा देश के 7 प्रदेशों का सर्वेक्षण किया गया उ.प्र., तमिलनाडू, केरल और राजस्थान में न सिर्फ दलितों को सार्वजनिक पूजा स्थलों पर जाने की मनाही थी बल्कि अन्य सामाजिक समारोह में भी भाग लेते समय भेदभाव बरता जाता हैं। सार्वजनिक स्रोतों से पानी लेने में भी ऐसी ही स्थिति हैं। तमिलनाडू में तो एक वर्ग को नाईयों से बाल काटने से

भी मना कर दिया गया, धोबियों ने कपड़े धोने से। उ.प्र. में कमोबेश ऐसी ही स्थिति पाई गई। राजस्थान, केरल, कर्नाटक में दलित बस्तियों के कुछ हिस्से नाईयों की सेवा से चलते हैं। ग्राम सभा व ग्राम पंचायतों की बैठकों में दलितों के साथ भेदभाव बरता जाता है। राजस्थान में कहीं-कहीं शिक्षा संस्थानों व सार्वजनिक स्वयं सेवी संस्थाओं में दलितों के साथ भेदभाव बरता जाता हैं। जहाँ तक आम जनता के लिए रखे गये बर्तनों को दलितों को इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता हैं। कर्नाटक, केरल में सार्वजनिक शमशानों का इस्तेमाल प्रतिबन्धित है। स्पष्ट है कि देश के सभी राज्यों में छुआ-छूत का और अस्पृश्यता का नंगा नाच हो रहा है। उ.प्र. के आगरा नगर में दलितों की बारात पर दबंग द्वारा लाठियों पर हमला इसलिए किया गया कि दलित दुल्हा घोड़ी पर बैठ कर उनके आम रास्ते से कैसे जा रहा है। सामाजिक धरातल पर भारतीय संदर्भ में मानव अधिकार और न्याय का प्रश्न सामाजिक सरंचना और इसमें परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है और इस प्रक्रिया को राजनीति के संदर्भ में समझना बेहद जरुरी है।

सामाजिक जीवन के साथ राजनीति की सम्बद्धता बहुत ही जटिल होती है और चूंकि राजनीति की भूमिका या तो पुराने सामाजिक सम्बन्धों को कायम रखने या नवीन सम्बन्धों को बनाने में स्पष्ट होती है। राजनीति और समाजिक न्याय के संबंध का इतिहास गवाह है कि सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के पीछे नई मानवीय नैतिकता के सार्वभौमिक विकास की मान्यता भी उतनी ही पुरानी है जितनी कि मनुष्य की सभ्यता। इसके मूल में मानव का विकास, नई नैतिकता का संवर्धन और नई आर्थिक-तकनीकी व्यवस्था का जनतंत्रीय राजनीति के द्वारा स्थापन मुख्य माना जा सकता है। मानव अधिकार के समाजशास्त्र को समझने के लिए उन ऐतिहासिक मोड़ों को पहचानना लाजिमी है जहॉ आकर समाज विज्ञानों का चिंतन विभिन्न प्रकार की उप-धाराओं को जन्म देता है, जिनके परिणामस्वरूप प्रायः आपसी विरोध जनित अभिप्रायों और आदर्शो का जन्म होता हैं यह स्वयं ही सामाजिक-सहमति के विकास के कारण सम्भव हो पाता है। समाज में पनपी विभिन्न विचारधारायें या उनकी उप-शाखायें इस बात को प्रमाणित करती हैं। इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार का मत विभाजन तभी सम्भव हो पाया है जब मानव समाज अधिनायकवादी, सामन्तवादी और विभिन्न प्रकार की तानाशाही व्यवस्थाओं से मुक्त होकर जनतंत्रीय व्यवस्था में बदल सका है। सामाजिक न्याय का सवाल नित नये संदर्भो में नये अर्थ लिये खडा रहा है और यही वह सवाल है जो मानवता को गत्यात्मक बनाये हुए है।

नयी सदी का भारतीय समाज अजीबो-गरीब विरोधाभासों के बीच खड़ा है। एक तरफ देश विश्व स्तर पर नयी आर्थिक शक्ति के रुप में उभरा है दूसरी तरफ समाज का बड़ा वर्ग हाशिये पर खड़ा विकास की बाट जोह रहा है। जीवन के मौलिक अधिकारों के लिये संघर्ष कर रहा है मूल भूत आवश्यकताओं के लिये जूझ रहा है। समाज में समृद्धि

के टापू खड़े हो रहे हैं, तो गरीबी की खाई चौडी होती जा रही है। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भता के बावजूद देश भर में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। जातीयता ओर स्थानीयता को विस्तार के रास्ते मिले हैं तो उनके अस्तित्व पर संकट भी मंडरा रहे है। देशी-विदेशी कारपॉरिट्स विकास की नयी संस्कृति खड़ी कर रहे तो प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर पर्यावरणीय संकट भी खडे कर रहे हैं। लोकतंत्र में परिपक्वता और समानता की महत्ता बढ़ी है तो दलित और स्त्री अस्मिता के प्रश्न आज भी ज्यों के त्यों हैं। वे मानव अधिकारों की मांग कर रहे है। वे भी अस्तित्व से व्यक्तित्व की तरफ बढना चाह रहे हैं। समाज में अपने अधिकारों की सुरक्षा चाह रहे हैं। भूमंडलीकरण के दौर में उपजे असुरक्षा के वातावरण का अध्ययन इन्हीं विरोधाभासों के संदर्भ में किया जाना है। बिना इन विरोधाभासों को समझे मानव अधिकारों का मसला सुलझने के बजाय उलझता ही जाएगा। राजनीति ने विकासशील समाजों के मानव अधिकारों का हनन किया है और पूरी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को इस ढंग से ढाला है कि विकासशील देश विकसित देशों के लिए सिर्फ कच्चामाल तैयार कर सके। परिणामस्वरुप विकासशील और विकसित समाजों में समृद्ध और विपन्नता का असंतुलन बढ़ा है। भूमंडलीकरण के दौर में विकसित देशों पिछड़े समाजों पर न सिर्फ आर्थिक-राजनैतिक प्रभुत्व कायम किया है बल्कि नजरिये, बाजार और मीडिया के सांस्कृतिक वर्चस्व भी कायम किए हैं। सूचना क्रांति और भूमंडलीकरण के दौर ने भारत जैसे विकासशील देशों के सामने असुरक्षा की नयी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। इन स्थितियों और परिस्थितियों में भारतीय राज्य अपने नागरिकों के मानव अधिकारों की रक्षा कैसे करें? वैश्विक होती दुनिया में राज्य की अपनी सामाजिक नीति और नियोजन को किस ढंग से संतुलित और प्रभावी बनाएं यह भी एक चुनौती है। आर्थिक विकास और सामाजिक विकास को जोड़ने वाले सरकारी प्रयास कितने परिणाम देने वाले हो यह एक बड़ी मांग है। कमजोर वर्गों, महिलाओं, दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों, आदिवासी समुदायों के विकास के लिये राज्य की नीतियां संतुलित ढंग से बनाने का काम आज के वैश्विक दबावों के चलते इतना आसान नहीं है। इन तमाम सवालों को मानव अधिकारों के संदर्भ में तलाशना आज की महती आवश्यकता है। भूमंडलीकरण के दौर में बाजार के आकर्षण, अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के दबाव, दुनिया में संसाधनों का बढ़ता अभाव ये मानवीय इच्छाओं, संवेदनाओं और आवश्यकताओं को कुचल रही हैं, मानव अधिकारों का हनन कर रही है। इन सबके बीच संतुलन साधना भूमंड़लीकरण के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची:-

1. डॉ0 कृष्ण कुमारः 2002 भारतीय दलित और मानव अधिकारःजातिवाद और संवैधानिक संरचना बुक इन्क्लेव जयपुर।

2. श्रीवास्तवएम.पी. व शर्मा, सुमनः 2002 मानव अधिकार सभी के लिए/फ्रडरिको मेयर/ यूनेस्को दूत संपादक /अंक-जनवरी।
3. गौतमरूपचन्दः 2008 दलित मानव अधिकार, कान्ती पब्लिकेशन दिल्ली।
4. त्रिपाठी कन्हैयाः 2012 चुनौतियों के बीच मानव अधिकार का भविष्य, ए इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल फोकस, औरया, उ0 प्र0
5. शुक्लासरोज कुमारः 2012 मानव अधिकार एक सामाजिक अनिवार्यता, सहायक निदेशक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत सरकार।
6. नंद किशोर आचार्यः 2007 संस्कृति की सभ्यता, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर।
7. जैन उर्मिला :2015 मानव अधिकार और हम, परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली।

*****

अदृश्य जंजीरें: भारत में राइड-हेलिंग ड्राइवरों का एल्गोरिथ्मिक प्रबंधन और शोषण

शेख सलाउद्दीन*
बासुदेव बर्मन**

परिचय

एल्गोरिद्मिक प्रबंधन श्रम नियंत्रण का नया प्रतिमान है, जिसमें मानवीय प्रबंधन न्यूनतम होते हुए दूरस्थ संचालन प्रमुख होता है। निर्णय-निर्माण प्रक्रियाएँ ऑनलाइन टूल्स और ऐसे इंटेलिजेंस द्वारा स्वचालित की जाती हैं जो सतत् श्रमिक निगरानी के माध्यम से संग्रहीत डेटा का विश्लेषण करते हैं। यह शोध बताता है कि भारत में राइड-हेलिंग कंपनियाँ ओला और उबर किस प्रकार मोबाइल एप और एम्बेडेड सेंसरों का उपयोग करके कार्य आवंटन, उपभोक्ता रेटिंग के माध्यम से प्रदर्शन मूल्यांकन, और स्वचालित "नजेस" के जरिए कर्मचारियों को प्रेरित करने में पारंगत हो गई हैं।

लचीलापन और स्वायत्तता का दावा करने के बावजूद, ये कंपनियाँ अपने ड्राइवरों पर अभूतपूर्व नियंत्रण लागू करती हैं जबकि उन्हें स्वतंत्र ठेकेदार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। यह वर्गीकरण उन्हें नियोक्ता जिम्मेदारियों से मुक्त करते हुए सख्त परिचालन नियंत्रण बनाए रखने की अनुमति देता है। शोध चार मुख्य चुनौतियाँ पहचानता है: निगरानी और नियंत्रण जो श्रमिक स्वायत्तता को सीमित करता है; बौद्धिक संपदा दावों के पीछे छिपी पारदर्शिता की कमी जिससे शक्ति असंतुलन बनता है; अपारदर्शी एल्गोरिथमिक प्रणालियों में निहित पक्षपात और भेदभाव; तथा सीमित जवाबदेही

*अध्यक्ष, तेलंगाना गिग और प्लेटफॉर्म वर्कर्स यूनियन
**स्वतंत्र शोधकर्ता

क्योंकि कंपनियाँ अपने व्यावसायिक निर्णयों के परिणामों से दूरी बनाती हैं।

यह पेपर दिखाता है कि ड्राइवरों का शोषण सिर्फ़ प्लेटफॉर्म्स द्वारा ही नहीं होता, बल्कि यह तीसरे पक्ष की एजेंसियों, लेनदारों, राज्य प्राधिकरणों और ग्राहकों तक फैला हुआ है। ड्राइवर ऋण, एल्गोरिथमिक हेरफेर और तकनीकी नियंत्रण की "अदृश्य जंजीरों" से बँधे हुए हैं जो उन्हें बढ़ती अस्थिर स्थितियों में काम करने पर विवश करती हैं।

कार्यप्रणाली

यह शोध ओला और उबर ड्राइवरों में रोजगार के "डेटाफिकेशन" का पता लगाने के लिए मिश्रित तरीकों का उपयोग करता है। डेटा संग्रह निम्न तरीकों से किया गया:

- गुणात्मक अनुसंधान: हैदराबाद (20 प्रतिभागी), मुंबई (15) और गुवाहाटी (3) के कुल 38 ड्राइवरों के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कार और फोकस ग्रुप। हैदराबाद में तीन और मुंबई में दो फोकस समूह आयोजित किए गए।

- मात्रात्मक अनुसंधान: 385 ड्राइवरों को ऑनलाइन प्रश्नावली भेजने पर 262 प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं (68% प्रतिक्रिया दर)–194 हैदराबाद से और 68 दिल्ली से। सैम्पल साइज़ 95% विश्वास स्तर और 5% मार्जिन ऑफ़ एरर के मानदंडों के अनुसार चुना गया। प्रतिभागी मुख्यतः पुरुष और आयु 25-34 वर्ष थे, जिससे महिला ड्राइवरों पर शोध में अंतर बना हुआ है।

- द्वितीयक अनुसंधान: सार्वजनिक रूप से उपलब्ध रिपोर्टों, कानूनी दस्तावेज़ों, सेवा समझौतों और कंपनियों की गोपनीयता नीतियों का विश्लेषण।

शोध के पांच मुख्य उद्देश्य थे: एल्गोरिथमिक प्रबंधन मापदंडों की पहचान; नियमित कार्य से अतिरिक्त मूल्य-निकासी का दस्तावेज़ीकरण; अदा न किए गए श्रम और डेटा वस्तुवतकरण की जाँच; ड्राइवरों के कार्य और आय को प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों का मानचित्रण; तथा ड्राइवर विरोध रणनीतियों की समझ।

नतीजे और निष्कर्ष

शोषण की अर्थव्यवस्था

सबसे चौंकाने वाला निष्कर्ष ड्राइवरों की आय में तीव्र गिरावट है जबकि काम के घंटे बढ़े हैं। उबर ड्राइवरों की मासिक आय 2015 में ₹75,000-1,00,000 से घटकर

2023 में ₹13,000-15,000 रह गई—केवल आठ वर्षों में लगभग 80% कमी। यह गिरावट ईंधन लागत, वाहन रख-रखाव और ऋण की बढ़ती बाधाओं के बीच हुई।

भाड़ा संरचना तीन घटकों से बनी है: बेस फ़ेयर + प्रति मिनट दर + प्रति किलोमीटर दर, जिनमें जीएसटी, सेवा शुल्क, बीमा, कर और टोल जैसी अतिरिक्त धाराएँ शामिल होती हैं। ये दरें शहर की श्रेणी के अनुसार भिन्न होती हैं, जिससे भौगोलिक असमानताएँ उत्पन्न होती हैं। राष्ट्रव्यापी ड्राइवर विरोध के बाद जब कंपनियों ने दरों में संशोधन किया, तो वह असमान था—दिल्ली-एनसीआर में 12% बनाम मुंबई में 15%—यह स्वतःस्फूर्त मूल्य निर्धारण शक्ति को दर्शाता है।

सर्वेक्षण दर्शाता है कि अर्थिक स्थिति अस्थिर है: 89% प्रतिभागी परिवार के अकेले कमाऊ सदस्य हैं, 77% ने ऋण लिया है, और 85% के पास माह के अंत तक कोई बचत नहीं रहती। इसके अलावा 58% ड्राइवर समझते नहीं कि सर्ज प्राइसिंग या इंसेंटिव एल्गोरिदम कैसे काम करते हैं, जिससे वे अपनी कमाई अनुकूलित नहीं कर पाते।

भौगोलिक नियंत्रण और परिचालन अपारदर्शिता

ओला और उबर प्रत्येक शहर के लिए जनसंख्या, ख़र्च क्षमता, बुनियादी ढांचा और स्थानीय विरोध के आधार पर प्रबंधन रणनीतियाँ अनुकूलित करते हैं। अधिकांश भौतिक कार्यालय बंद करके और ड्राइवर ऑनबोर्डिंग एजेंटों व फ़्लीट मालिकों को सौंपकर उन्होंने एक "अदृश्य नियोक्ता" मॉडल बना लिया है जो उन्हें प्रत्यक्ष टकराव से बचाते हुए एल्गोरिथमिक नियंत्रण बनाए रखने में सक्षम बनाता है।

यह भौगोलिक वर्गीकरण भाड़ा संरचनाओं और कमीशन दरों के कानूनी हेरफेर की सुविधा देता है। डाइनामिक प्राइसिंग एल्गोरिदम जो सर्ज चार्ज निर्धारित करते हैं, ड्राइवरों और ग्राहकों दोनों के लिए पूरी तरह अपारदर्शी रहते हैं, जिससे संभावित शोषणकारी व्यवहारों की जाँच असंभव बनती है। चैटबॉट्स और आउटसोर्स किए गए सपोर्ट के माध्यम से बंद शिकायत निवारण प्रणालियों के साथ मिलकर, ड्राइवरों के लिए अनुचित रेटिंग, किराये में विसंगतियाँ, रूट त्रुटियाँ या अनुचित डी-प्लेटफार्मिंग को चुनौती देना लगभग असंभव हो गया है।

अदा न किया गया श्रम और डेटा वस्तुवतकरण

यात्रियों के परिवहन से परे ड्राइवर व्यापक अदा न किए गए श्रम करते हैं। वे नियमित रूप से उत्पादों, सेवाओं, क्रेडिट योजनाओं, मीडिया सामग्री और राजनीतिक संदेशों पर ऑनलाइन सर्वेक्षण पूरा करते हैं—ऐसा डेटा जिसे कंपनियाँ पैकेज कर

व्यापारिक भागीदारों को बेचती हैं बिना ड्राइवरों के साथ लाभ साझा किए। प्रारंभ में ड्राइवरों को CASHurDRIVE और BrandOnWheelz जैसे साझेदारियों के माध्यम से वाहन विज्ञापन के लिए ₹3,500-4,000 मासिक मिलते थे; अब ये भुगतान बंद हो गए हैं जबकि विज्ञापन जारी हैं और ड्राइवर नगरपालिका नियमों के उल्लंघन के लिए जवाबदेह बने हुए हैं।

कंपनियाँ "भावनात्मक और एस्थेटिक श्रम" भी अनिवार्य करती हैं–सौंदर्यीकरण मानदंड, वार्तालाप शिष्टाचार और "मुस्कान के साथ सेवा" जैसे व्यवहार–और इसकी अनुपालन ग्राहक फीडबैक, अनिवार्य सेल्फीज़ और नियमित प्रशिक्षण के माध्यम से मॉनिटर की जाती है, पर यह प्रदर्शन कार्य अदा नहीं किया जाता। हर ड्राइवर क्रिया से बनने वाला डेटा कंपनियों द्वारा पैटर्नों के लिए निकाला और भागीदारों को बेचा जाता है, ड्राइवरों को बिना लाभ दिए।

ऋण जाल पारिस्थितिकी

वर्तमान में 80% ड्राइवर लीज़ पर वाहन चलाते हैं, फिर भी सिर्फ़ 15% से कम ही लीज़ अवधि पूरी करने के बाद स्वामित्व प्राप्त करने में सफल होते हैं। यह वित्तीय अस्थिरता तीसरे पक्ष के विक्रेताओं–बैंकों, एन.बी.एफ.सी., साहूकारों, बीमा एजेंटों–की एक पारिस्थितिकी द्वारा निर्मित है, जो कंपनी साझेदारियों के माध्यम से ड्राइवरों का व्यक्तिगत डेटा तक पहुँच प्राप्त करते हैं। ये संस्थाएँ कमजोर व्यक्तियों को अनुपयुक्त क्रेडिट योजनाओं और असहनीय भुगतान संरचनाओं के साथ निशाना बनाती हैं।

शोध ने ड्राइवर शोषण से लाभ हासिल करने वाली एक छायात्मक अर्थव्यवस्था को उजागर किया। जब कंपनियाँ ड्राइवर आईडी को मनमाने ढंग से ब्लॉक कर देती हैं–अक्सर बिना औचित्य या अपील के–तो तृतीय-पक्ष विक्रेता फिर उन्हें अनब्लॉक करने के लिए शुल्क लेते हैं। 27% प्रतिभागियों की आईडी छह महीने के भीतर ब्लॉक हुईं, और 26.5% ने पुनर्स्थापन के लिए इन विक्रेताओं को भुगतान किया। यह बाजार इसलिए मौजूद है क्योंकि वैध अनब्लॉकिंग प्रक्रिया लंबी, अपारदर्शी और अक्सर असफल रहती है, जिससे परेशान ड्राइवर वैकल्पिक समाधान खोजने को मजबूर होते हैं।

राज्य और शहरी प्राधिकरण समस्या को बढ़ाते हैं, कंपनियों की अनुपालन विफलताओं के लिए ड्राइवरों को जिम्मेदार ठहराकर, लाइसेंस के समेकित नवीनीकरण में देरी पर वाहनों को जब्त कर लेते हैं, और राइड-हेलिंग ड्राइवरों पर अन्य व्यावसायिक वाहनों की तुलना में सख्त ट्रैफ़िक प्रवर्तन लागू करते हैं। साथ ही ग्राहक अपनी रेटिंग शक्ति का फायदा उठाकर अनावश्यक माँगें करते हैं, यह जानते हुए कि एल्गोरिथम

उनके फीडबैक को ड्राइवरों की चिंताओं पर प्राथमिकता देता है।

नियंत्रण के उपकरण

- कानूनी नियंत्रण: ड्राइवरों को डिजिटल बाइंडिंग कॉन्ट्रैक्ट स्वीकार करने पड़ते हैं जिनमें कानूनी शब्दजाल भरा होता है, अक्सर स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं और मोबाइल स्क्रीन पर पढ़ने के लिए जटिल फ़ॉर्मेट में प्रस्तुत होते हैं। कंपनियाँ एकतरफ़ा इन अनुबंधों को अपडेट करती हैं ताकि उनकी देयता घटे और ड्राइवरों पर नियंत्रण बढ़े। कॉन्ट्रैक्ट नियमों के छिद्रों का लाभ उठाकर ड्राइवरों को स्वतंत्र ठेकेदार के रूप में वर्गीकृत करते हैं जबकि व्यवहार में उन पर नियोक्ता जैसी नियंत्रण शक्तियाँ निर्बंधित रहती हैं।

- वित्तीय नियंत्रण: लीज़-टू-ओन वाहन मॉडल, अनिवार्य वाणिज्यिक बीमा और लक्षित उधारी मिलकर ऋण निर्भरता बनाते हैं। एक प्रतिभागी के अनुसार EMI भुगतान "उसी कारणों में से एक है जिसकी वजह से वे अभी भी काम जारी रखते हैं" भले ही परिस्थितियाँ बिगड़ी हों। लेनदार आक्रामक रूप से वाहनों को जब्त कर देते हैं, जिससे ड्राइवर बेरोज़गार और ऋणग्रस्त दोनों हो जाते हैं।

- डिजिटल नियंत्रण: स्मार्टफोन निर्भरता व्यापक निगरानी को सक्षम बनाती है। ऐप वास्तविक समय स्थान ट्रैक करता है, रूट पालन मॉनिटर करता है, अनिवार्य सेल्फीज़ के माध्यम से समय-समय पर चेहरे के बायोमेट्रिक डेटा को कैप्चर करता है, और कोविड-19 के दौरान ड्राइवरों के लिए (ग्राहकों के लिए नहीं) आरोग्य सेतु ऐप के समाकलन की मांग की गई थी। यह निगरानी इन्फ्रास्ट्रक्चर एल्गोरिथमिक प्रबंधन प्रणालियों को भोजन देता है जो यात्राएँ आवंटित करते हैं, इंसेंटिव सेट करते हैं, और व्यवहारिक मानदंड लागू करते हैं।

एल्गोरिथमिक प्रबंधन का व्यवहारिक रूप

एल्गोरिद्म गेम थ्योरी, मनोवैज्ञानिक नजेस, नकद रहित पुरस्कार, निरंतर लक्ष्य सूचनाएँ और प्रेरक संदेशों का उपयोग करके लंबे कार्यघंटों के लिए प्रेरित करता है। ये निर्धारित करते हैं कि किसे राइड मिलेगी, किन मार्गों पर जाना चाहिए, कहाँ सर्ज प्राइसिंग लागू होगी, और कौन से इंसेंटिव उपलब्ध हैं—ये सब अपारदर्शी और लगातार परिवर्तनीय पैरामीटरों के माध्यम से।

तीन सितारे से नीचे रेटिंग वाले ड्राइवरों को कड़ी सीमाएँ झेलनी पड़ती हैं: ऑनलाइन प्रशिक्षण मॉड्यूल के पूरा होने तक निलंबन, प्रीमियम राइड श्रेणियों से वंचित

होना (उदाहरण के लिए Uber Reserve, Intercity), और महंगे इलाकों में हाई-वैल्यू पिकअप क्षेत्रों से बहिष्करण। रेटिंग सिस्टम उपभोक्ता-चालित और कंपनी-नियंत्रित है; ड्राइवर बताते हैं कि साप्ताहिक चक्र के अंत में रेटिंग रहस्यमयी रूप से घट जाती हैं और रेटिंग हेरफेर की शिकायतें अनसुलझी रहती हैं।

एल्गोरिद्म कार्य को गेमिफाई करता है, ड्राइवरों को सीमित जीविकोपार्जन इंसेंटिव के लिए एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करता है। यह ऐसे बोनस लटकाकर कार्यदिवस लंबा कर देता है जो हमेशा पहुंच से बाहर रहते हैं और सर्ज ज़ोन की अस्पष्ट परिभाषाओं से कृत्रिम कमी पैदा कर देता है। इसके साथ ही 63.4% ड्राइवरों का यह भ्रम रहता है कि उनकी व्यक्तिगत जानकारी इन कंपनियों के पास सुरक्षित है।

ड्राइवर प्रतिरोध और अनुकूलन

संत्रासजनक व्यवस्थित असमानताओं के बावजूद ड्राइवरों ने परिष्कृत प्रतिरोध रणनीतियाँ विकसित की हैं। 42.18% ड्राइवरों ने सर्ज प्राइसिंग और इंसेंटिव्स को आंशिक रूप से डिकोड करने में सफलता बताई, विशेषकर वे अनुभवी ड्राइवर जिनका कार्यानुभव छह वर्षों से अधिक है और जिन्होंने अनुभव से उच्च मांग के घंटे और उच्च-किराये वाले ज़ोन मानचित्रित किए हैं।

ड्राइवर प्लेटफ़ॉर्म स्विचिंग करते हैं, कई सेवाओं पर खाते बनाए रखते हैं और बेहतर दर मिलने पर स्थान बदलते हैं। वे अनौपचारिक समूह बनाए हुए हैं जो सर्ज ज़ोन, नियामकीय परिवर्तनों और संकट के समय पारस्परिक सहायता के बारे में जानकारी साझा करते हैं। ये नेटवर्क 2018 में ओला और उबर के खिलाफ भारत के पहले बड़े विरोध प्रदर्शन का आयोजन भी कर चुके हैं।

कुछ ड्राइवर नकदी-केवल सैरों को अनुकूलित करते हैं ताकि तरलता बनी रहे और प्लेटफ़ॉर्म कमीशन कटौतियों से बचा जा सके। अन्य लोग कार्य राशनिंग अपनाते हैं–दैनिक कमाई लक्ष्य सेट कर लॉग ऑफ़ कर लेते हैं बजाय गेमिफाइड इंसेंटिव्स का पीछा करने के। अधिक तकनीकी रूप से दक्ष ड्राइवर लोकेशन स्पूफिंग और अन्य वर्कअराउंड का उपयोग करते हैं–हालाँकि इन तरीकों से स्थायी डी-प्लेटफॉर्मिंग का जोखिम होता है।

महत्त्वपूर्ण रूप से, ड्राइवर एन.जी.ओ., श्रमिक यूनियनों और नागरिक समाज संगठनों के साथ मिलकर नियामक हस्तक्षेप, डेटा अधिकार और सामाजिक सुरक्षा कवरेज की मांग कर रहे हैं। वे ई-श्रम पोर्टल जैसे प्लेटफ़ॉर्मों पर पंजीकरण की वकालत कर रहे हैं ताकि सरकारी कल्याण योजनाओं तक पहुँच सकें और ऐसी विधायी मांग कर रहे हैं जो उन्हें श्रमिकों के रूप में मान्यता दे और सुरक्षा प्रदान करे।

निष्कर्ष और सिफारिशें

यह शोध दर्शाता है कि राइड-हेलिंग ड्राइवरों का शोषण बहु-स्तरीय और प्रणालीगत है, जिसमें केवल प्लेटफ़ॉर्म ही नहीं बल्कि राज्य एजेंसियाँ, लेनदार, तृतीय-पक्ष विक्रेता, ग्राहक और अवसरवादी मध्यस्थ भी शामिल हैं। सामान्य सूत्र असममित डेटा और सूचना पहुँच है। कंपनियाँ व्यापक ड्राइवर डेटा इकट्ठा करती हैं पर उन एल्गोरिदमों के बारे में पारदर्शिता प्रदान नहीं करतीं जो उनके कार्यजीवन को नियंत्रित करते हैं।

ड्राइवरों की स्थिति गहरा असुविधाजनक है। वे सभी जोखिम–वित्तीय, नियामकीय, शारीरिक– वहन करते हैं जबकि कंपनियाँ लाभ कमा लेती हैं। गिग अर्थव्यवस्था द्वारा वायदा की गई "लचीलापन और स्वायत्तता" मिथ्या सिद्ध होती है जब एल्गोरिद्म यह निर्धारित करते हैं कि किस राइड को स्वीकार करना है, कौन सा मार्ग लेना है, कब काम करना है और कितना कमाना है। श्रमिक तकनीकी जंजीरों से बँधे हैं: एल्गोरिथ्मिक नियंत्रण के माध्यम से तकनीकी; ऋण जाल के माध्यम से वित्तीय; और गेमिफिकेशन व सतत निगरानी के माध्यम से मनोवैज्ञानिक।

इसे तोड़ने के लिए समन्वित कार्रवाई की आवश्यकता है–ड्राइवरों, नागरिक समाज, नीति निर्माताओं और सार्वजनिक समर्थन की संयुक्त पहल ताकि तकनीकी प्रगति मानव गरिमा की सेवा करे न कि केवल मानव श्रम से अधिकतम मूल्य निकाले।

प्रमुख सिफारिशें

For Drivers and Collectives (ड्राइवरों और संगठनों के लिए):

- व्यापक डेटा अधिकार और एल्गोरिथमिक निर्णय-निर्माण में पारदर्शिता की माँग करें।
- मनमाने डी-प्लेटफार्मिंग के लिए सही अपील प्रक्रियाओं के साथ जवाबदेही तंत्र की माँग करें।
- ड्राइवरों को कर्मचारी के रूप में मान्यता देने हेतु श्रमिक वर्गीकरण में सुधार के लिए दबाव डालें।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक पहुँच हेतु सरकारी कल्याण पोर्टलों (उदाहरण: e-shram) पर पंजीकरण करें।

- सामूहिक सौदेबाजी और कानूनी वकालत के लिए मजबूत औपचारिक संगठन बनाएं।

For Policymakers (नीति निर्माताओं के लिए) :

- प्लेटफार्मों की व्यक्तिगत जानकारी तक पहुँच सीमित करने वाले सख्त डेटा संरक्षण नियम लागू करें।
- ऐसे सिस्टम जिनका श्रमिकों की आय और नौकरी पर प्रभाव पड़ता है, उनके लिए एल्गोरिथमिक पारदर्शिता अनिवार्य करें।
- ईंधन लागत और महंगाई से जुड़ी न्यूनतम किराये संरचनाएँ स्थापित करें।
- ड्राइवर शिकायतों के लिए स्वतंत्र शिकायत निवारण तंत्र बनाएं।
- ड्राइवरों को लक्षित तृतीय-पक्ष उधारी पर ब्याज दरों की छत और पारदर्शिता आवश्यकताओं सहित विनियमन लागू करें।
- प्लेटफार्मों को नियोक्ता के रूप में जवाबदेह ठहराएं और संबंधित श्रम कानूनों के दायरे में लाएं।

For Society (समाज के लिए) :

- सस्ती और सुविधाजनक राइड के पीछे के मानवीय लागत को पहचानें।
- उपभोक्ता एकजुटता और वकालत के जरिए ड्राइवर आंदोलनों का समर्थन करें।
- शोषणकारी व्यावसायिक मॉडलों के खिलाफ कॉर्पोरेट जवाबदेही की माँग करें।
- उन प्लेटफार्मों पर दबाव डालें कि वे डेटा-आधारित लाभों को उन श्रमिकों के साथ साझा करें जो वह डेटा उत्पन्न करते हैं।

डेटाफिकेशन ऑफ़ एम्प्लॉयमेंट श्रम संबंधों में बुनियादी बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है – यह कॉर्पोरेट हाथों में अभूतपूर्व शक्ति एकत्र करता है जबकि श्रमिकों को खण्डित और असशक्त करता है। इन अदृश्य जंजीरों को तोड़ने के लिए समन्वित कार्रवाई आवश्यक है ताकि तकनीकी प्रगति मानव गरिमा की सेवा करे बजाय केवल मानवीय श्रम से अधिकतम मूल्य निकालने के।

*****

रैगिंग : मानव अधिकारों का हनन - न्यायिक मान्यता से प्रणालीगत रोकथाम तक

प्रो. राज कचरू*

रैगिंग को मानव अधिकार हनन के रूप में न्यायिक मान्यता

साल 2007 में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने University of Kerala v. Council, Principals, Colleges, Kerala & Ors. (2007 (6) SCC 636) के ऐतिहासिक निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा कि- **"रैगिंग मूल रूप से मानव अधिकारों का उल्लंघन है।"** न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत ने कहा:"रैगिंग किसी भी रूप में पूरी तरह प्रतिबंधित है। यह एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुँचाती है और संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है। यह मानव अधिकारों का हनन है जो युवा छात्रों के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को नष्ट करता है।"

न्यायालय ने यह माना कि शिक्षा का अधिकार गरिमा, सुरक्षा और समानता के अधिकार से अलग नहीं किया जा सकता। संस्थानों पर यह ज़िम्मेदारी डाली गई कि वे यह सुनिश्चित करें कि किसी छात्र को परंपरा या परिचय के नाम पर शारीरिक या मानसिक चोट, अपमान या गरिमा की हानि न झेलनी पड़े।

मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में रैगिंग, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21), समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14), और गरिमा के साथ शिक्षा के अधिकार (अनुच्छेद 21A) पर सीधा प्रहार है। यह भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं

*संस्थापक न्यासी - अमन सत्य कचरू ट्रस्ट

- Universal Declaration of Human Rights (अनुच्छेद 1, 3, 5, 26) और Convention on the Rights of the Child - का भी उल्लंघन है, जो युवाओं को हिंसा, दुर्व्यवहार और अपमानजनक व्यवहार से बचाने की जिम्मेदारी राज्यों पर डालते हैं।

रैगिंग: सहानुभूति की प्राकृतिक शत्रु

रैगिंग केवल अनुशासन का उल्लंघन या मानव अधिकार हनन नहीं, बल्कि सहानुभूति पर सीधा आघात है। यह भय, अपमान और अधीनता थोपने की सुनियोजित प्रक्रिया है, जिसे अक्सर वरिष्ठता, मेल-जोल या परंपरा के नाम पर सही ठहराया जाता है।

इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक हिंसाचार भावनात्मक बुद्धिमत्ता (EQ) को कमजोर करता है- यानी स्वयं और दूसरों की भावनाओं को समझने और नियंत्रित करने की क्षमता को। आधुनिक शोध यह सिद्ध करता है कि EQ सफलता, नेतृत्व और रचनात्मकता का IQ से भी अधिक विश्वसनीय संकेतक है।

जहाँ शैक्षणिक संस्थान सहानुभूति और सहयोग को बढ़ावा देते हैं, वहाँ नवाचार और सामाजिक विश्वास पनपते हैं। इसके विपरीत, जहाँ अपमान और रैगिंग को सहन किया जाता है, वहाँ आक्रामकता, संशय और भावनात्मक दूरी बढ़ती है।

रैगिंग भय को मित्रता पर, और वर्चस्व को संवाद पर प्राथमिकता देती है। यह हमारे युवाओं की सामूहिक भावनात्मक क्षमता को क्षीण करती है- वही पीढ़ी जिस पर भारत की ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था निर्भर है। इस प्रकार रैगिंग केवल व्यक्तियों को नहीं, बल्कि राष्ट्र की सामाजिक और बौद्धिक संरचना को नुकसान पहुँचाती है।

समस्या का विशाल स्वरूप

भारत का उच्च शिक्षा तंत्र विश्व में सबसे बड़ा है- लगभग 50,000 कॉलेज और 4 करोड़ से अधिक विद्यार्थी। इतनी बड़ी व्यवस्था में केवल कानूनों या नियमों से समस्या का समाधान संभव नहीं। वास्तविक परीक्षा है- प्रवर्तन (enforcement) की।

संस्थागत विविधता- सरकारी/निजी, शहरी/ग्रामीण, व्यावसायिक/सामान्य - कार्यान्वयन को कठिन बनाती है। सर्वोत्तम नियम भी तब तक निष्फल हैं जब तक वे हर छात्र, प्रशासक और अभिभावक तक न पहुँचें। इसलिए आवश्यकता थी एक प्रणालीगत, तकनीक-आधारित, बहु-हितधारक योजना की, जो राष्ट्रीय स्तर पर काम कर सके।

राष्ट्रीय रैगिंग रोकथाम योजना (NRPP): क्रियान्वयन की रूपरेखा

मार्च 2009 में अमन कचरू की रैगिंग के कारण हुई मृत्यु ने पूरे देश को झकझोर दिया। इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय और सरकार को निर्णायक कदम उठाने पड़े।

लेखक (अमन कचरू के पिता) ने न्यायालय में यह तर्क दिया कि केवल सिफारिशें पर्याप्त नहीं हैं, जब तक उनके क्रियान्वयन का व्यावहारिक तंत्र न हो। इससे राष्ट्रीय रैगिंग रोकथाम योजना (NRPP) का जन्म हुआ - जिसमें चार मुख्य घटक थे।

8 मई 2009 को सर्वोच्च न्यायालय ने इस योजना को डॉ. राजेन्द्र कचरू द्वारा सुझाए गए तरीके से लागू करने का आदेश दिया, और सरकार को निर्देश दिया कि पारदर्शिता बनाए रखने हेतु एक गैर-सरकारी संस्था राष्ट्रीय डाटाबेस की निगरानी करे। यह आदेश NRPP की संवैधानिक व नैतिक नींव बना।

योजना के चार घटक

1. छात्र प्रतिनिधिक हेल्पलाइन (24×7): यह गोपनीय और अनाम हेल्पलाइन छात्र की ओर से संस्थान के समक्ष मामला रखती थी और पारदर्शी ट्रैकिंग प्रणाली के माध्यम से हर चरण की जानकारी देती थी।

2. संस्थागत अनुपालन CRM: संस्थानों से सीधे संपर्क कर उन्हें UGC के नियमों के अनुपालन में सहायता दी जाती थी। यह केवल दंडात्मक नहीं, बल्कि सुधारात्मक प्रणाली थी।

3. ऑनलाइन हलफनामों के माध्यम से जागरूकता: प्रत्येक छात्र और अभिभावक को ऑनलाइन एंटी-रैगिंग हलफनामा भरना अनिवार्य था। इससे राष्ट्रीय संपर्क डाटाबेस बना और लाखों लोगों तक जागरूकता संदेश प्रतिदिन भेजे गए।

4. स्वतंत्र डाटाबेस निगरानी: सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार, एक स्वतंत्र गैर-सरकारी निकाय सभी डाटा- हेल्पलाइन, हलफनामे, अनुपालन रिपोर्ट - की निगरानी करता था। यह पारदर्शिता और जवाबदेही का मूल तत्व था।

न्यायिक समर्थन और राष्ट्रीय कार्यान्वयन

सुप्रीम कोर्ट की स्वीकृति के बाद UGC ने 2009 में "रैगिंग रोकथाम विनियम" अधिसूचित किए और अन्य नियामक संस्थानों ने भी अपने नियमों को समायोजित

किया। "रैगिंग" की परिभाषा को व्यापक बनाकर इसमें शारीरिक, मानसिक, यौन, शैक्षणिक और पहचान-आधारित उत्पीड़न को भी शामिल किया गया।

प्रारंभिक वर्षों में गलत हितधारकों के कारण कुछ विफलताएँ हुईं, परंतु 2012 में मानव अधिकार आयोग (NHRC) की समीक्षा के बाद अमन कचरू ट्रस्ट को निगरानी की जिम्मेदारी दी गई। 2012 से 2022 तक यह प्रणाली अत्यंत प्रभावी रही और विश्व स्तर पर सराही गई।

सिद्ध प्रभाव

2012 से 2020 के बीच, गुप्त सर्वेक्षणों में रैगिंग की घटनाएँ 40% से घटकर 5% से भी कम रह गईं।

वर्ष	छात्रों की संख्या	मामूली (%)	गंभीर (%)	अत्यंत गंभीर (%)	कुल (%)
2019	13,16,668	3.14	0.46	0.63	4.22
2018	15,03,589	3.43	0.50	0.67	4.59
2017	21,47,601	3.38	0.44	0.63	4.45
2016	19,37,887	3.59	0.48	0.67	4.74
2015	10,05,688	5.02	0.75	0.99	6.75
2014	4,14,692	8.11	1.00	1.26	10.36

मीडिया रिपोर्टें लगभग बंद हो गईं, कैंपस का माहौल सुधरा, और आत्महत्याओं में उल्लेखनीय कमी आई। यह सिद्ध हुआ कि रैगिंग रोकने योग्य अपराध है, यदि इसे पारदर्शी और स्वतंत्र निगरानी तंत्र से नियंत्रित किया जाए।

मानव अधिकार दृष्टिकोण की पुनर्स्थापना

एन.आर.पी.पी. का क्षरण केवल प्रशासनिक चूक नहीं, बल्कि मानव अधिकारों का उल्लंघन है। राज्य यदि न्यायालय के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद छात्रों को ज्ञात खतरों से नहीं बचा पाता, तो यह संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 39A तथा अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन है।

रैगिंग की रोकथाम अनुशासन का नहीं, बल्कि जीवन, गरिमा और समानता की रक्षा का प्रश्न है। सर्वोच्च न्यायालय के 2007 और 2009 के निर्णयों ने नागरिक समाज, पारदर्शिता और तकनीक को जोड़कर एक मानव अधिकार-आधारित शासन मॉडल

स्थापित किया था- उसकी पुनर्स्थापना नैतिक और कानूनी रूप से अनिवार्य है।

आगे का मार्ग

उच्च शिक्षा संस्थानों में समय-समय पर एन.एच.आर.सी द्वारा मानव अधिकार ऑडिट को संस्थागत रूप देना चाहिए। एन.एच.आर.सी अपनी वैधानिक जिम्मेदारी के तहत यह सुनिश्चित कर सकता है कि रैगिंग रोकथाम केवल औपचारिक अनुपालन न रह जाए, बल्कि इसे भारत की संवैधानिक नैतिकता और मानव अधिकार शासन के हिस्से के रूप में देखा जाए।

निष्कर्ष

रैगिंग कोई परंपरा नहीं, बल्कि शिक्षा की आत्मा पर प्रहार है। यह शक्ति का दुरुपयोग है जो युवा जीवन के सबसे नाजुक क्षण- उच्च शिक्षा में प्रवेश- को कलंकित करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपना मत स्पष्ट कर दिया है; मानव अधिकारों का ढाँचा स्पष्ट है। अब आवश्यकता है प्रशासनिक ईमानदारी और सामूहिक संकल्प की।

जो समाज अपने युवाओं को अपमानित होने देता है, वह रचनात्मकता और सहानुभूति खो देता है। वहीं, जो समाज अपने विद्यार्थियों का सम्मान करता है, वही एक दयालु और प्रगतिशील राष्ट्र बनाता है। हमारे सामने विकल्प स्पष्ट है उस प्रणाली को पुनर्स्थापित करें जिसने काम किया, या एक पूरी पीढ़ी को भय और मौन के हवाले कर दें।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार और नैतिकता : महात्मा गांधी का दृष्टिकोण

डॉ. शोभना राधाकृष्ण*

महात्मा गांधी सार्वभौमिक शांति और मानवता के सबसे बड़े प्रतीक हैं। वे विश्व इतिहास के उन महान व्यक्तित्वों में से एक हैं जिन्होंने अपने जीवन से यह दिखाया कि सत्य और अहिंसा ही सबसे बड़ी ताकत हैं। गांधीजी का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। विश्व के कई देशों में नेताओं ने उनके विचारों से प्रेरणा लेकर अपने समाजों में स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष किया।

गांधीजी का सत्याग्रह केवल एक राजनीतिक आंदोलन नहीं था, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक मार्ग था—जो न्याय, करुणा और समानता पर आधारित था।

गांधीजी का जीवन दृष्टिकोण बहुत समग्र था। उन्होंने जीवन के हर पहलू सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत और सार्वजनिक को एक सूत्र में जोड़ा। वे केवल राजनीतिक लोकतंत्र के प्रतीक नहीं थे, बल्कि आर्थिक और आध्यात्मिक लोकतंत्र के भी प्रबल समर्थक थे। उनके स्वावलंबन, सादगी और टिकाऊ जीवन के विचार आज के पर्यावरण संरक्षण और हरित तकनीक के प्रयासों से गहराई से जुड़ते हैं। इसलिए उनका दर्शन आज भी उतना ही आवश्यक है जितना उनके समय में था।

गांधीजी के जीवन और संघर्षों से सीखना और उन्हें अपने जीवन में अपनाना आज के समय में और भी जरूरी हो गया है, जब दुनिया के कई हिस्सों में हिंसक संघर्ष चल रहे हैं। इन संघर्षों ने मानवता को गहराई से प्रभावित किया है और विशेष रूप से बुजुर्गों, बीमारों, बच्चों, प्रवासियों और महिलाओं के अधिकारों को संकट में डाल दिया है।

*प्रमुख पदाधिकारी- गांधीवादी फॉर एथिकल कॉरपोरेट गवर्नेंस

आज विश्व गांधीजी के अहिंसा और सार्वभौमिक शांति के विचारों से मानव अधिकारों की रक्षा का महत्वपूर्ण सबक सीख सकता है।

आज की परस्पर जुड़ी हुई दुनिया में किसी एक देश का संघर्ष पूरे विश्व को प्रभावित करता है। स्थायी शांति का एकमात्र मार्ग अहिंसा ही है। हमें आपसी एकता का भाव विकसित करना चाहिए। यही रास्ता अधिक शांतिपूर्ण और न्यायपूर्ण विश्व की ओर ले जाता है।

गांधीजी स्वतंत्रता, गरिमा, समानता और दासता, गरीबी, अस्पृश्यता तथा भेदभाव से मुक्ति के अधिकार के प्रबल समर्थक थे। यही सभी मानव अधिकारों का सार हैं। उन्होंने कहा था–

"जब मैं निराश होता हूँ, तो मुझे याद आता है कि इतिहास में सदा सत्य और प्रेम के मार्ग ने ही विजय प्राप्त की है। अत्याचारी और हत्यारे कुछ समय के लिए अजेय प्रतीत हो सकते हैं, पर अंततः वे हमेशा पराजित होते हैं।"[^1]

गांधीजी स्वतंत्रता, समानता और गरिमा को मानव अधिकार का मूल मानते थे। वे कहते थे, "मैंने अपनी अनपढ़ लेकिन बुद्धिमान माँ से सीखा कि सभी अधिकार, जिन्हें प्राप्त और सुरक्षित रखा जाना चाहिए, वे अच्छे से निभाए गए कर्तव्यों से उत्पन्न होते हैं।"[^2]

गांधीजी ने स्पष्ट किया कि अधिकारों की बात तभी सार्थक होती है जब व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरी निष्ठा से निभाता है।

1945 के बाद जब संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकारों का वैश्विक ढाँचा तैयार किया, तो उसमें गांधी के सिद्धांत अहिंसा, सर्वोदय, स्वराज और ट्रस्टीशिप की गहरी छाप थी। भारत की प्रतिनिधि डॉ. हंसा मेहता और लक्ष्मी मेनन ने 1948 की "सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा" (UDHR) में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आज के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन, युद्ध, गरीबी, भेदभाव और घृणा भाषण नए रूप में मानव अधिकारों को चुनौती दे रहे हैं। इसीलिए संयुक्त राष्ट्र का सतत विकास एजेंडा (SDGs) गांधीजी के सिद्धांतों से मेल खाता है–आत्मनिर्भरता, ग्राम विकास और सामाजिक न्याय इन लक्ष्यों का हृदय हैं।

गांधीजी का विश्वास था कि सच्चा राष्ट्रवाद कभी घृणा, द्वेष या विभाजन पर नहीं टिका होता, बल्कि वह पूरे विश्व की उन्नति में योगदान देता है। उनके निर्माणात्मक

कार्यक्रमों का उद्देश्य अहिंसक तरीकों से समाज का निचले स्तर से पुनर्निर्माण था। इसमें ग्राम विकास, आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय और समानता पर विशेष ध्यान दिया गया।

अपने पचास वर्षों के सार्वजनिक जीवन में एशिया, यूरोप और दक्षिण अफ्रीका में–गांधीजी ने उन लोगों को आवाज दी जो समाज में दबे-कुचले थे। उन्होंने सुधारकों, राजनीतिक विचारकों और मानव अधिकारों के रक्षकों को नई दिशा दी।

विश्व इतिहास में दो घटनाएँ विशेष रूप से नागरिक अधिकार आंदोलनों की दिशा तय करने वाली बनीं 1893 में दक्षिण अफ्रीका में और 1956 में अमेरिका में।

1893 की पिएटरमारित्ज़बर्ग घटना ने गांधीजी के जीवन की दिशा तय की। जब उन्हें नस्लीय भेदभाव के कारण ट्रेन से उतारा गया, उन्होंने ठान लिया कि अन्याय का अहिंसक प्रतिकार ही उनका मार्ग होगा। यहीं से सत्याग्रह का जन्म हुआ। उन्होंने कहा, "अत्याचार तब तक बना रहता है जब तक लोग उसे चुपचाप स्वीकार करते हैं।"[^3]

1956 में अलबामा के मॉन्टगोमरी में रोज़ा पार्क्स ने बस की सीट छोड़ने से इन्कार किया। इससे डॉ. मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में बस बहिष्कार आंदोलन शुरू हुआ, जिसने बसों में नस्लीय अलगाव को असंवैधानिक करवा दिया। यह घटना अहिंसक विरोध की शक्ति का प्रतीक बनी।

गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका में अन्याय के खिलाफ संघर्ष और अमेरिका में रोज़ा पार्क्स का प्रतिरोध–दोनों की नैतिक भावना एक जैसी थी। दोनों ने समानता, गरिमा और न्याय के अधिकार की पुष्टि की और रंग, नस्ल या जाति के आधार पर भेदभाव का विरोध किया। गांधीजी के लिए किसी भी प्रकार के अन्याय को अस्वीकार करना सत्याग्रह का पहला सिद्धांत था।

गांधीजी के विचारों और तरीकों का प्रभाव विश्व के कई महान नेताओं पर पड़ा। मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला, दलाई लामा, आर्चबिशप डिज़मंड टूटू, और सीज़र शावेज़ जैसे नेताओं ने गांधीजी के मार्ग को अपनाया। उनके अनुसार "निर्भयता प्रेम की पहली शर्त है। जो डरता है, वह सच्चा प्रेम नहीं कर सकता।"[^4] उन्होंने यह दिखाया कि हिंसा नहीं, बल्कि अनुशासित अहिंसा ही न्याय और स्वतंत्रता की सबसे शक्तिशाली शक्ति है।

रेव. मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था, "यदि मानवता को आगे बढ़ना है, तो गांधी अनिवार्य हैं। ईसा मसीह ने दिशा और प्रेरणा दी, पर गांधी ने तरीका दिया।"[^5]

सीज़र शावेज़ ने भी अमेरिका में खेत मजदूरों के अधिकारों के लिए गांधीजी की अहिंसक पद्धति को अपनाया।

गांधीजी की प्रेरणा केवल आंदोलनों तक सीमित नहीं रही, बल्कि कला और साहित्य में भी फैली। रिचर्ड एटनबरो की फिल्म 'गांधी' (1982) ने आठ ऑस्कर पुरस्कार जीतकर उनके विचारों को विश्वभर में फैलाया। प्रसिद्ध इतिहासकार विल ड्युरांट ने कहा कि भारत में गांधी की प्रतिष्ठा बुद्ध और संट फ्रांसिस के समान है—उन्होंने उनकी कोमलता, आत्मत्याग और शत्रुओं के प्रति क्षमाशीलता की प्रशंसा की।

गांधीजी ने केवल भारत को स्वतंत्रता दिलाई ही नहीं, बल्कि देश में शांति, समानता और मानव अधिकारों के लिए भी निरंतर कार्य किया। उन्होंने जेल यातनाएँ झेलीं, पर उनके दृढ़ संकल्प ने भारत के नागरिक अधिकारों को नई पहचान दी।

1915 में भारत लौटने के बाद, गांधीजी ने 1917 में चंपारण सत्याग्रह शुरू किया। यह भारत का पहला बड़ा शांतिपूर्ण आंदोलन था जिसने किसानों के अधिकारों की रक्षा की और अन्यायपूर्ण कानूनों को रद्द करवाया।

गांधीजी समझते थे कि सच्ची स्वतंत्रता तभी संभव है जब गरीबी समाप्त हो, क्योंकि गरीबी स्वयं सबसे बड़ा मानव अधिकार उल्लंघन है। उन्होंने अस्पृश्यता के खिलाफ आवाज उठाई और कहा कि मानव अधिकार केवल पढ़े-लिखे या अमीरों के नहीं, बल्कि हर आम नागरिक के हैं।

गांधीजी का सत्याग्रह—अहिंसक प्रतिरोध और शांतिपूर्ण अवज्ञा—सत्य, प्रेम और आत्मबल पर आधारित था। वे मानते थे कि किसी के कष्ट के प्रति संवेदना ही मानवता की पहचान है, और अहिंसक साधनों से प्राप्त सामाजिक परिवर्तन अधिक स्थायी और मानवीय होता है। सत्याग्रह की यह विरासत आज भी दुनिया भर में अनेक आंदोलनों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है। गांधीजी का सत्याग्रह आत्मबल और करुणा से उत्पन्न शक्ति थी। उनका कहना था, "मैं इस अधिकार बनाम शक्ति के युद्ध में विश्व की सहानुभूति चाहता हूँ।"[^6]

1931 में आइंस्टाइन ने नमक सत्याग्रह की सराहना करते हुए उन्हें लिखा "आपका आंदोलन दिखाता है कि नैतिक शक्ति भौतिक बल से अधिक स्थायी है।" गांधीजी ने उत्तर दिया कि वे केवल "सत्य की खोज में एक साधक" हैं।[^7]

गांधीजी की पर्यावरणीय नीति प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर केंद्रित थी; वे विकास के नाम पर संसाधनों के अति-उपयोग और लालच से उत्पन्न अस्थिरता के

विरुद्ध चेतावनी देते थे। उन्होंने कहा था–"पृथ्वी, वायु, भूमि और जल हमें हमारे पूर्वजों से विरासत में नहीं मिले हैं–बल्कि यह सब हमने अपनी आने वाली पीढ़ियों से उधार लिया है। इसलिए इनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।"[^8] यह कथन आज के पर्यावरणीय अधिकारों और पीढ़ियों के बीच न्याय की चर्चा के लिए मार्गदर्शक है।

गांधीजी के सर्वोदय का केंद्र नारी समानता थी। वे कहते थे, "स्त्रियों के बिना कोई समाज उन्नति नहीं कर सकता। उन्हें अधिकारों से नहीं, सम्मान से सशक्त बनाना होगा।"[^9] उनके लिए महिला स्वतंत्रता का अर्थ था आत्मनिर्भरता और निर्णय लेने की क्षमता।

गांधीजी का विश्वास था कि स्वास्थ्य एक मौलिक अधिकार है। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा, संतुलित आहार और आत्मसंयम को स्वास्थ्य की नींव माना। उनका उद्देश्य था कि सबसे गरीब व्यक्ति भी सरल साधनों से स्वस्थ रह सके।

गांधीजी के सत्याग्रह में अद्वैत की भावना थी–यह विश्वास कि हर जीव में एक ही आत्मा है। इसी भावना ने विरोधी के प्रति सहानुभूति और संवाद की क्षमता को नैतिक और रणनीतिक शक्ति दी।
उनका मानना था कि निर्भयता, प्रेम और विरोध करने की क्षमता ही अहिंसक शक्ति के तीन स्तंभ हैं। वे कहते थे कि झूठ, अन्याय और अत्याचार तब तक कायम रहते हैं जब तक लोग उन्हें चुपचाप स्वीकार करते हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति अन्याय के सामने "ना" कहने की हिम्मत जुटाता है, अत्याचार का आधार टूटने लगता है।

गांधीजी के प्रारंभिक अभियान समाज के उन वर्गों के लिए समर्पित थे जिन्हें अक्सर अनदेखा किया जाता था–अछूत, शरणार्थी, अल्पसंख्यक, बेघर, बीमार और बुजुर्ग। उन्होंने इन सबसे वंचित लोगों के जीवन में गरिमा लौटाने का प्रयास किया।

उन्होंने मानव गरिमा पर आधारित एक नई दिशा दी। दक्षिण अफ्रीका और भारत में उनका पूरा जीवन गरीबों और पीड़ितों के पक्ष में रहा। गांधीजी के तरीकों ने यह सिद्ध किया कि कमजोर और दबे-कुचले लोग भी दृढ़ विश्वास के साथ अन्याय के खिलाफ खड़े हो सकते हैं।

गांधीजी ने अपने जीवन को "सत्य की भक्ति और अहिंसा द्वारा सत्य की खोज" के रूप में देखा। सत्य, अहिंसा और साधनों की पवित्रता के प्रति उनकी निष्ठा आज भी पीढ़ियों को प्रेरित करती है।

रेजिनाल्ड आर. रेनॉल्ड्स, जो 1929 से 1931 तक साबरमती आश्रम में रहे,

गांधीजी की जीवनशक्ति, ईमानदारी, विनोद-बुद्धि और सत्य के प्रति तप की बहुत प्रशंसा करते हैं। गांधीजी का मौन, प्रार्थना, उपवास और चरखा उनके आत्मबल के स्रोत थे।

गांधीजी ने मानवता को तीन अमूल्य उपहार दिए–सत्याग्रह, रचनात्मक कार्यक्रम और एकादश व्रत। ये केवल नियम नहीं थे, बल्कि आत्मशुद्धि और सेवा का मार्ग थे। सेवाग्राम आश्रम इसका जीवंत उदाहरण था, जहाँ जीवन का प्रत्येक पहलू सरलता और सत्य पर आधारित था।

दार्शनिक इवान इलिच ने सेवाग्राम देखकर लिखा–"यहाँ साधारण मनुष्य भी गरिमा के साथ जी सकता है।"[^11]

मैंने जब 62 देशों की यात्रा की, तो देखा कि अनेक देशों में आज भी गांधीजी के अनुयायी हैं–वे अहिंसा के रास्ते पर चलते हुए अन्याय, भेदभाव और हिंसा के खिलाफ काम कर रहे हैं। कई लोग पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समानता, साम्प्रदायिक सौहार्द्र और मानव अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उन्होंने गांधीजी की तरह सादा और टिकाऊ जीवन अपनाया है।

सबसे बड़ी बात यह है कि इन लोगों ने अपने विचार, वचन और कर्म में आत्मसंयम विकसित किया है। यही गांधीजी की सच्ची प्रेरणा है–आत्मपरिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन की ओर बढ़ना।

गांधीजी के लिए सत्य ही ईश्वर था। वे कहते थे, "सत्य ही मेरा भगवान है।"[^12] उनके अनुसार जीवन का उद्देश्य "सत्य की भक्ति और अहिंसा द्वारा सत्य की खोज" था। इस मार्ग पर चलते हुए उन्होंने अपने विरोधियों तक के प्रति करुणा और सम्मान बनाए रखा।

इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने कहा था कि "जिस युग में गांधीजी जन्मे, उसी युग ने पश्चिम में हिटलर और रूस में स्टालिन को भी देखा; परंतु आने वाले समय में इतिहास पर गांधी का प्रभाव सबसे गहरा और स्थायी सिद्ध होगा। उन्होंने विनाश नहीं, पुनर्जागरण का मार्ग दिखाया।" टॉयनबी ने गांधीजी को 'आधुनिक युग का सबसे महान व्यक्ति' कहा।[^13]

आज जब समाज हिंसा, असहिष्णुता और विभाजन से जूझ रहा है, गांधीजी का जीवन हमें संयम, मौन और सादगी का मार्ग दिखाता है। उन्होंने सिद्ध किया कि शांति निष्क्रिय नहीं, बल्कि एक सक्रिय शक्ति है जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है।

उनका चिंतन आधुनिक नागरिक शिक्षा, नीति निर्माण और सामाजिक नेतृत्व के लिए भी ठोस दिशा प्रदान करता है। नीति-निर्माण में यदि गांधीजी के सिद्धांत को स्थान दिया जाए, तो नागरिक ऐसे बनेंगे जो केवल अधिकार नहीं माँगते, बल्कि जिम्मेदारी निभाते हैं।

नीति निर्धारकों को भागीदारीपूर्ण शासन, विकेंद्रीकृत विकास और आजीविका सुरक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि मानव अधिकार तभी फलते हैं जब उनका सामाजिक और आर्थिक आधार मजबूत हो।

गांधीजी का विश्वास था कि जब नैतिक अनुशासन को व्यावहारिक सुधारों से जोड़ा जाता है, तो साधन और लक्ष्य में एकरूपता आती है—यही उनका स्थायी संदेश है।

गांधीजी का दर्शन हमें सिखाता है कि मानव अधिकार केवल दस्तावेज़ नहीं, बल्कि जीवन की नैतिक साधना हैं। अहिंसा, सत्य और करुणा से आलोकित यह मार्ग आज भी विश्व मानवता के लिए उतना ही आवश्यक है जितना सौ वर्ष पहले था।

यह हमें प्रेरित करती है कि हम मानव अधिकार, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के लिए नए संकल्प के साथ आगे बढ़ें—उस दिशा में जो सत्य, अहिंसा और करुणा से आलोकित है।

संदर्भ:

[^1]: एम.के. गांधी, "यंग इंडिया," 19 जून 1924, नवजीवन पब्लिकेशन
[^2]: महात्मा गांधी, मई 1947, पत्र डॉ. जूलियन हक्सले, महानिदेशक, यूनेस्को को—मानव अधिकारों पर उनके विचारों के संदर्भ में
[^3]: महात्मा गांधी, "हरिजन", 15 मार्च 1940
[^4]: महात्मा गांधी, "हरिजन", 3 नवम्बर 1946
[^5]: मार्टिन लूथर किंग जूनियर, "स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम", 1958
[^6]: महात्मा गांधी, भाषण—दांडी यात्रा, 5 अप्रैल 1930
[^7]: ऐतिहासिक पत्राचार: आइंस्टीन और गांधी (1931)
[^8]: गांधीजी के विचारों के आधार पर UNEP रिपोर्टों में उद्धृत पर्यावरणीय सन्देश का परिशोधित रूप
[^9]: महात्मा गांधी, "हरिजन", 12 अक्टूबर 1934
[^11]: इवान इलिच, "टूल्स फॉर कनविवियलिटी", 1973
[^12]: महात्मा गांधी, "यंग इंडिया", 1921
[^13]: अर्नोल्ड टॉयनबी, "सिविलाइज़ेशन ऑन ट्रायल", 1948

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

सरदार वल्लभभाई पटेल: एकता और समावेशन के शिल्पकार, मानव अधिकारों के प्रणेता

डॉ. शोभना राधाकृष्ण *

भारत के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन के एक प्रमुख नेता, सरदार वल्लभभाई पटेल ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारत की राजनीतिक एकता को सुनिश्चित करने का श्रेय उन्हें दिया जाता है। 'भारत के लौह पुरुष' के रूप में प्रसिद्ध, वे अपनी राजनीतिक समझ और नेतृत्व क्षमता के लिए जाने जाते हैं। "सरदार" उपाधि, जो उनके असाधारण संगठनात्मक कौशल को दर्शाती है। जनप्रिय व्यक्तित्व के धनी सरदार पटेल ने कहा था–"अपने सिद्धांतों की कीमत पर कुछ मत करो। प्रत्येक राष्ट्र को स्वयं शासन करने का अधिकार है।" उनकी विरासत आज भी प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

1917 में महात्मा गांधी से मुलाकात के बाद सरदार पटेल ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और गांधीजी के नैतिक साहस व अहिंसक संघर्ष की पद्धति को अपनाया। 1917 से 1928 के बीच उनके नगरपालिका कार्य, बाढ़ राहत और सत्याग्रह अभियानों ने उन्हें एक व्यावहारिक, स्पष्टवादी और गांधीजी के विश्वस्त सहयोगी के रूप में स्थापित किया।

सरदार पटेल की नेतृत्व शैली व्यावहारिक स्पष्टता, साहस, सत्यनिष्ठा और संगठनात्मक दक्षता पर आधारित थी। वे अमूर्त सिद्धांतों की बजाय ठोस कार्यों में विश्वास रखते थे और कठिन परिस्थितियों में भी सिद्धांतों के प्रति अडिग रहे। उन्होंने

*प्रमुख पदाधिकारी - गाँधीवादी फॉर एथिकल कॉरपोरेट गवर्नेंस

अनुशासित टीमें बनाईं, जन अभियानों का सफल समन्वय किया, और स्थानीय प्रयासों को राष्ट्रीय आंदोलनों में बदलने की क्षमता दिखाई। उनकी बातचीत की शैली में अनुनय और दृढ़ता का संतुलन था, जिससे वे सार्वजनिक व्यवस्था और राष्ट्रीय हितों की रक्षा कर सके। वे जमीनी कार्यकर्ताओं और राष्ट्रीय नेताओं दोनों के साथ सहज संवाद करते थे, और उनकी देहाती हास्ययुक्त, सीधी भाषा ने उन्हें जनप्रिय और प्रभावशाली वक्ता बनाया। इन गुणों ने उन्हें ऐसा नेता बनाया जो नैतिक नेतृत्व को प्रशासनिक यथार्थवाद से जोड़ने में सक्षम था।

सरदार पटेल को उनके राजनीतिक कार्यों के कारण कई बार जेल जाना पड़ा, जहाँ उन्होंने गांधीजी और अन्य नेताओं के साथ लंबा समय बिताया, जिससे उनके विचार और साझेदारी और भी मजबूत हुई। उन्होंने अनुशासित जन आंदोलन और संगठित प्रयासों को राजनीतिक परिवर्तन का माध्यम माना। 1931 में कांग्रेस अध्यक्ष बनने के बाद वे पार्टी के प्रमुख संगठक के रूप में उभरे और चुनावी रणनीति व संगठनात्मक ढांचे को मजबूती दी। उनकी अनुशासनप्रियता और यथार्थवादी दृष्टिकोण ने उन्हें कांग्रेस का अपरिहार्य प्रशासक बना दिया। उनके राजनीतिक दृष्टिकोण में सांप्रदायिक एकता, सामाजिक सुधार और किसान सशक्तिकरण प्रमुख थे। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया, आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया, और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को सामाजिक-आर्थिक सुधार का साधन माना, जहाँ नैतिकता को व्यावहारिकता से जोड़ा गया।

1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत को 560 से अधिक रियासतों को एकीकृत करने की चुनौती का सामना करना पड़ा, जिसे सरदार पटेल ने राज्य मंत्री के रूप में अपना केंद्रीय मिशन बनाया। उन्होंने कूटनीति, दबाव और बल की संभावना को मिलाकर एक रणनीति विकसित की, जिसमें रक्षा, विदेशी मामले और संचार जैसे विषयों पर विलय सुनिश्चित करना शामिल था। उन्होंने बातचीत, देशभक्ति की अपील और प्रगतिशील राजाओं के उदाहरणों से शासकों को प्रेरित किया, जबकि प्रतिरोध करने वालों पर प्रशासनिक दबाव डाला और सहयोगियों के सम्मान को बनाए रखा। वी.पी. मेनन के साथ मिलकर उन्होंने योजनाबद्ध प्रशासनिक कार्यवाही की और एकता को सुरक्षा व प्रगति का आधार बताते हुए इसे पारस्परिक हित का रूप दिया।

सरदार पटेल के नेतृत्व की प्रमुख घटनाएँ उनके रणनीतिक कौशल और दृढ़ प्रशासनिक दृष्टिकोण को दर्शाती हैं। जूनागढ़ में नवाब के पाकिस्तान में विलय के प्रयास के विरुद्ध उन्होंने जनमत और प्रशासनिक दबाव का समन्वय कर भारत में विलय सुनिश्चित किया। हैदराबाद में निज़ाम और रज़ाकारों की हिंसा के बीच उन्होंने बातचीत और सैन्य हस्तक्षेप (ऑपरेशन पोलो) के संतुलन से सीमित रक्तपात के साथ एकीकरण

किया। कश्मीर के संदर्भ में उन्होंने भावुकता से परे जाकर सुरक्षा और प्रशासनिक यथार्थ पर आधारित समाधान को प्राथमिकता दी। इन निर्णयों ने विखंडन को रोका, शांति बनाए रखी, और भारत को एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में एकीकृत करने में निर्णायक भूमिका निभाई।

सरदार पटेल ने सिविल सेवाओं को भारत की राष्ट्रीय एकता और सुशासन के लिए अनिवार्य माना। उन्होंने औपनिवेशिक प्रशासन की आलोचना के बावजूद यह स्वीकार किया कि प्रशिक्षित अधिकारी नए राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। उन्होंने अखिल भारतीय सेवाओं को "स्टील फ्रेम" कहा, जो भारतीय शासन की रीढ़ बनेंगी, और सत्यनिष्ठा, निष्ठा व प्रशासनिक क्षमता के उच्च मानकों पर बल दिया। उनका सिविल सेवाओं से संबंध पारस्परिक अपेक्षाओं पर आधारित था—वे राजनीतिक हस्तक्षेप से अधिकारियों की रक्षा करते थे, लेकिन उन्हें कठोर सार्वजनिक सेवा नैतिकता के लिए उत्तरदायी भी ठहराते थे। योग्यता, अनुशासन और संस्थागत सम्मान पर उनके जोर ने नवजात गणराज्य को स्थायित्व प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद सरदार पटेल का आर्थिक दृष्टिकोण पुनर्निर्माण, उत्पादन वृद्धि और राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता पर केंद्रित था। उनका मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता को आर्थिक शक्ति से जोड़ना आवश्यक है। उन्होंने कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए ग्रामीण संगठनों और संसाधनों के विस्तार, उद्योग व व्यापार के संगठन द्वारा आयात निर्भरता घटाने, बचत को प्रोत्साहित कर पूंजी को विकास परियोजनाओं में लगाने, और सरकार, श्रम व उद्योग के बीच सहयोग को बढ़ावा देने पर बल दिया। साथ ही, उन्होंने प्रशासनिक मशीनरी को कार्यान्वयन का साधन मानते हुए शक्ति के दुरुपयोग के प्रति सावधानी बरतने की चेतावनी दी। उनका आर्थिक दृष्टिकोण व्यावहारिक, देशभक्तिपूर्ण और समावेशी था, जो राजनीतिक स्वतंत्रता को भौतिक प्रगति से जोड़ता है।

सरदार पटेल की राष्ट्रीयता की अवधारणा समावेशन और मानव अधिकारों पर आधारित थी, जिसमें जाति, पंथ या पद के आधार पर नागरिकता में भेद नहीं होना चाहिए। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा का समर्थन किया, और मौलिक अधिकारों पर सलाहकार समिति का नेतृत्व किया। उनका दृष्टिकोण लोकतंत्र में सबसे कमजोर की रक्षा, सभी के लिए अवसर और सार्वजनिक व्यवस्था सुनिश्चित करने पर केंद्रित था। सांप्रदायिकता के विरुद्ध उनके दृढ़ नेतृत्व और कानून आधारित नीतियों ने सामाजिक न्याय को सुदृढ़ किया और लाखों नागरिकों को पहली बार स्वतंत्रता और अधिकारों की सुरक्षा प्रदान की।

सरदार पटेल ने संघर्ष समाधान में बातचीत, अनुनय, जन संगठन और आवश्यकता पड़ने पर बल के चयनात्मक उपयोग का संतुलित दृष्टिकोण अपनाया। वे दिलों और दिमागों को जीतने में विश्वास रखते थे, लेकिन संवैधानिक व्यवस्था और नागरिक सुरक्षा के लिए निर्णायक कार्रवाई से नहीं हिचकिचाते थे। रियासतों के विलय के बाद उन्होंने पूर्व शासकों को गरिमा, प्रिवी पर्स और संवैधानिक भूमिकाएं देकर संस्थागत समावेश को सहज बनाया। संकटों के बाद सुलह की उनकी नीति में जवाबदेही के साथ उदारता शामिल थी, जिसमें उन्होंने विरोधियों को बहिष्कृत करने की बजाय उन्हें संवैधानिक प्रक्रिया में शामिल कर नागरिक जीवन की शीघ्र बहाली को प्राथमिकता दी।

सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा संबोधित मानव अधिकार मुद्दे

नागरिक और राजनीतिक अधिकार: सरदार वल्लभभाई पटेल ने कानून के शासन, समान नागरिकता और नागरिक स्वतंत्रता की दृढ़ता से वकालत की। संविधान सभा में मौलिक अधिकारों पर सलाहकार समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने भाषण और संघ की स्वतंत्रता, निष्पक्ष कानूनी प्रक्रिया, और मनमानी गिरफ्तारी से सुरक्षा जैसी संवैधानिक गारंटियों के निर्माण में योगदान दिया। उन्होंने यह सुनिश्चित करने पर बल दिया कि भारत के नए एकीकृत क्षेत्र समान संवैधानिक मानदंडों के अंतर्गत शासित हों, जिससे नागरिक अधिकार किसी स्थान या शासक की इच्छा पर निर्भर न रहें।

अल्पसंख्यकों और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा: सरदार पटेल का मानना था कि सांप्रदायिक भिन्नताएं नागरिकता या राजनीतिक अधिकारों का आधार नहीं बननी चाहिए। उन्होंने धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा का समर्थन किया और ऐसी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को विकसित करने में योगदान दिया जो उन्हें राजनीतिक प्रतिनिधित्व और कानूनी संरक्षण प्रदान करें। रियासतों के एकीकरण के दौरान भी उन्होंने समावेशन को प्राथमिकता दी, जिससे राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिली।

सुरक्षा और हिंसा से सुरक्षा का अधिकार: विभाजन और राज्य एकीकरण के समय उत्पन्न संकटों में सरदार पटेल ने नागरिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था को सर्वोपरि माना। हैदराबाद में रज़ाकारों जैसी हिंसक मिलिशिया के खिलाफ उनकी निर्णायक कार्रवाई का उद्देश्य सांप्रदायिक हिंसा, जबरन धर्मांतरण और महिलाओं पर अत्याचार को रोकना था। उन्होंने कानूनी व्यवस्था को शीघ्र बहाल कर कमजोर वर्गों की रक्षा की और सामान्य नागरिक जीवन की पुनर्स्थापना सुनिश्चित की।

समानता और सामाजिक न्याय: पटेल ने अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव का विरोध किया तथा ऐसे सामाजिक सुधारों का समर्थन किया जो वंचित वर्गों को अधिकार

दिलाने में सहायक थे। उन्होंने नागरिक सुधार, स्वच्छता, और सार्वजनिक स्वास्थ्य की नीतियाँ अपनाईं जिससे कमजोर समुदायों को बेहतर नगरपालिका सेवाएँ मिलीं। कानून के समक्ष समान व्यवहार की उनकी प्रतिबद्धता ने हाशिए पर पड़े समूहों को सामाजिक सम्मान दिलाया।

आर्थिक और श्रम अधिकार: पटेल का मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक अवसर भी जरूरी हैं। उन्होंने उत्पादन बढ़ाने, न्यायपूर्ण मजदूरी, और सरकार, उद्योग व श्रमिकों के सहयोग का समर्थन किया। उनके अनुसार, श्रमिकों को उचित वेतन और सम्मानजनक जीवन-स्थितियाँ मिलनी चाहिए, क्योंकि आर्थिक सुरक्षा और गरिमामय कार्य राष्ट्रीय स्थिरता के लिए आवश्यक हैं।

किसानों और ग्रामीण आबादी के अधिकार: पटेल ने लगान-विरोध, आपदा राहत और कृषि समर्थन के ज़रिए ग्रामीणों को शोषण से बचाने का प्रयास किया। उन्होंने किसानों को प्रशासनिक अन्याय के खिलाफ जागरूक और निडर बनाया, जिससे उन्हें संपत्ति अधिकार, आजीविका सुरक्षा और न्यायपूर्ण प्रक्रिया की रक्षा मिली।

प्रशासनिक न्याय और सिविल सेवा जवाबदेही: पटेल ने संस्थाओं को अधिकारों की रक्षा का माध्यम मानते हुए निष्पक्ष कानून-प्रवर्तन के लिए एक पेशेवर सिविल सेवा का समर्थन किया। उन्होंने ईमानदार और जवाबदेह प्रशासन को नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए आवश्यक बताया। उन्होंने अधिकारियों को शक्ति के दुरुपयोग से सावधान किया और शासन में सहानुभूति, ईमानदारी और निष्पक्षता की संस्कृति पर बल दिया।

पुनः एकीकरण और अधिकार बहाली: रियासतों के एकीकरण में पटेल ने नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की बहाली को प्राथमिकता दी। उन्होंने जनमत संग्रह, प्रशासनिक सुधार और कानूनी समावेशन के ज़रिए यह सुनिश्चित किया कि पूर्व रियासतों के नागरिकों को संपत्ति अधिकार, न्याय और संवैधानिक सुरक्षा मिले।

अधिकारों और सार्वजनिक व्यवस्था का संतुलन: पटेल ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामूहिक सुरक्षा के साथ संतुलित करने पर ज़ोर दिया। उन्होंने माना कि स्वतंत्रता तभी प्रभावी है जब वह व्यवस्था द्वारा समर्थित हो, और यह व्यवस्था संविधानिक अधिकारों को कमजोर किए बिना कायम रहनी चाहिए। उनका दृष्टिकोण अत्याचार रोकने, कमजोरों को हिंसा से बचाने और लोकतांत्रिक वातावरण बनाए रखने की दिशा में था।

मानव अधिकार संरक्षण के लिए विरासत

पटेल की मानव अधिकार दृष्टि संविधान में अधिकारों की संस्थागत व्यवस्था और अनुशासित प्रशासन के ज़रिए उनके क्रियान्वयन में दिखती है। उन्होंने समानता, सुरक्षा और गरिमा जैसे मूल्यों को नीतियों और शासन में रूपांतरित किया, जिससे स्वतंत्रता के संक्रमण काल में लाखों लोगों की रक्षा हुई और समावेशिता भारतीय गणराज्य की ठोस नींव बनी।

सरदार वल्लभभाई पटेल की विरासत मानव अधिकारों की रक्षा और संस्थागत स्थायित्व पर केंद्रित है। उन्होंने नैतिक मूल्यों को प्रशासनिक दक्षता से जोड़ा, ऐसी संस्थाएँ बनाई जो व्यक्तियों से अधिक टिकाऊ हों, और नीति निर्माण में जमीनी ज़रूरतों को प्राथमिकता दी। उनके नेतृत्व ने अधिकारों की रक्षा करते हुए एकता को बढ़ावा दिया, और कानून के माध्यम से विविधता की सुरक्षा सुनिश्चित की। गांधीवादी नैतिकता और व्यावहारिक राजनीति के उनके संतुलन ने सार्वजनिक जीवन में मानव अधिकार आधारित सिद्धांतपूर्ण यथार्थवाद की नींव रखी।

सरदार पटेल की सादगी, साहस और प्रशासनिक कुशलता ने उन्हें एक सम्मानित नेता बनाया, जिन्होंने संकट के समय भारत की लोकतांत्रिक संरचना को मजबूत किया। उनकी विनम्रता और व्यावहारिक बुद्धि ने मानव अधिकारों की रक्षा को शासन का मूल बनाया। स्टैच्यू ऑफ यूनिटी उनकी राष्ट्र-निर्माण भूमिका की प्रतीकात्मक श्रद्धांजलि है, लेकिन उनका वास्तविक स्मारक एक ऐसा लोकतांत्रिक गणराज्य है जहाँ संस्थाएं, कानून और नेतृत्व मिलकर नागरिक अधिकारों को सुरक्षित करते हैं।

सरदार वल्लभभाई पटेल भारत की राजनीतिक एकता और संवैधानिक लोकतंत्र में मानव अधिकारों के प्रमुख शिल्पकार और संरक्षक के रूप में याद किए जाते हैं। उन्होंने दिखाया कि नेतृत्व का उद्देश्य संस्थागत निर्माण, विविधता में एकता, और गरिमा की रक्षा होना चाहिए। उनके जीवन से आज के नेताओं को यह सीख मिलती है कि स्पष्ट सोच, साहसिक संवाद, संगठित कार्य और राष्ट्रहित को प्राथमिकता देना आवश्यक है। उनका उदाहरण नागरिकों और सेवकों को ऐसी संस्थाएँ बनाने के लिए प्रेरित करता है जो सभी के लिए स्वतंत्रता, न्याय और एकता सुनिश्चित करें।

संदर्भ:

- देसाई, महादेव. लाइफ़ एंड वर्क ऑफ सरदार पटेल. नवजीवन पब्लिशिंग, 1950
- फिशर, लुईस. द लाइफ़ ऑफ महात्मा गांधी. हार्पर कॉलिन्स, 1951
- गांधी, एम. के. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी. खंड 76, प्रकाशन विभाग, 1969

- गुहा, रामचंद्र. इंडिया आफ्टर गांधी: द हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी. हार्पर कॉलिन्स, 2007
- मेनन, वी. पी. द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स. ओरिएंट लॉन्गमैन, 1956
- पटेल, वल्लभभाई. स्पीचेज़ एंड राइटिंग्स ऑफ सरदार वल्लभभाई पटेल. प्रकाशन विभाग, 1953
- गांधी, राजमोहन. पटेल: एक जीवन. नवजीवन प्रकाशन, 1990
- ऑस्टिन, ग्रानविल. भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला. ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस, 1966
- दास, दुर्गा. सरदार पटेल का जीवनवृत्त. नवजीवन प्रकाशन, 1977

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

पलायन, प्रवासन और मानव अधिकार: न्यायसंगत भविष्य का निर्माण

संदीप चचरा*

पलायन हमेशा से भारतीय सभ्यता के अनुभव का हिस्सा रहा है। यह प्रवास, व्यापार, आजीविका और शरणार्थ की कहानी रही है। यह हम सब के साथ-साथ रहने की कहानी रही है। हमारे सभ्यतागत जातीय संस्कार और परम्पराएँ वसुधैव कुटुंबकम के मूल्य में निहित है और हमें हमारा संविधान समानता, गरिमा, सहिष्णुता और प्रवास जैसे अधिकार देता है और हमें याद दिलाता है कि प्रवास और बसने का अधिकार मानवीय गरिमा से अलग नहीं हैं।(भारत सरकार, 1950) इस धरती ने विभिन्न प्रकार के लोगों का स्वागत किया है। पारसियों, जिन्होंने भारत की दूध जैसी विविधता में मिठास घोली, यहूदी परिवार जिनका मालाबार तट में स्वागत हुआ से लेकर तिब्बती और तमिल शरणार्थी गरिमा के साथ अपनी ज़िंदगियों को पुनः गढ़ रहे हैं। भारत ने ऐतिहासिक रूप से शरणार्थियों को एक बोझ की तरह नहीं बल्कि एक नैतिक ज़िम्मेदारी के रूप में स्वागत किया है। (पालसेटिया, 2001 और ऐक्शनएड, 2024)

विशेष रूप से, आंतरिक पलायन भी भारत के सामाजिक और साँस्कृतिक बुनावट का हिस्सा रहा है, जहाँ प्रवास को मानव महत्वाकांक्षा के एक प्रतिबिंब के रूप में देखा जाता है। इस महत्वाकांक्षा का एक हिस्सा महावाकांशाओं से प्रेरित है। दूसरा हिस्सा मजबूरी के कारण है। दोनों ही परिस्थितियों में यह कोई चुनौती नहीं है। यह एक चुनौती तब बन जाती है जब असमान विकास, जातिगत भेदभाव, जलवायु परिवर्तन या कार्य जगत में बड़े परिवर्तन सहित किसी भी तरह के संकट से संचालित होता है।

*कार्यकारी निदेशक, ऐक्शन एड एसोसिएशन

कार्य जगत में कायापलट

इस संदर्भ में भारत की श्रम अर्थव्यवस्था में नाटकीय बदलावों को समझना ज़रूरी हो जाता है। इक्कीसवीं सदी उल्लेखनीय अवस्थाओं से गुज़री है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक दक्षिण में मज़दूरों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी अनौपचारिक और असंगठित रूप से काम कर रहा है, और विशेषरूप से हिंदुस्तान में तेज़ बदलाव देखा गया है। सन् 2004-05 और 2017-18 के बीच लगभग 6.34 करोड़ लोग, जिनमें से ज़्यादातर युवा थे, कृषि से बाहर हो गए जो देश के आर्थिक इतिहास में सबसे बड़े संरचनात्मक परिवर्तनों में से एक के रूप में चिह्नित किया गया (मेहरोत्रा, 2019)।यह रुझान अनेक कारकों से प्रेरित था, जिनमें निर्माण गतिविधि में वृद्धि, नियमित मजदूरी कार्य का कुछ विस्तार और माल एवं सेवा कर लागू होने के बाद औपचारिक उद्यमों का विकास शामिल है। फिर भी 2010 के अंत यह गति काफी धीमी हो गई। सन् 2017-18 से भारत में स्थितियां बदलीं; क़रीब 6.8 करोड़ लोग कृषि में वापस लौट आए हैं(मिंट, 2024)। कृषि कार्यबल 2019 के 41 प्रतिशत से बढ़कर 2023 में 44 प्रतिशत हो गया है। (विश्व बैंक समूह, 2025) महिलाओं ने इस परिवर्तन को बड़े पैमाने पर आगे बढ़ाया है, इस अवधि के दौरान 6.66 करोड़ से अधिक महिलायें कृषि कार्य में शामिल हुईं। महिलायें अब कृषि कार्यबल का 64 प्रतिशत हिस्सा हैं, जो कृषि के स्त्रीकरण और गहराते संरचनात्मक बदलाव को दिखाता है, जब विनिर्माण और ग़ैर-कृषि क्षेत्र बड़े पैमाने पर श्रमिकों को काम दे पाने में असफल रहे हैं।

यह बदलाव ऐसी अर्थव्यवस्था में हुआ है, जहाँ अभी भी अनौपचारिकता का बोलबाला है। ज़्यादातर श्रमिकों के पास लिखित अनुबंध, नौकरी की सुरक्षा या सामाजिक संरक्षण की कमी है। परिवार मज़दूरी, लघु उत्पादन, कृषि श्रम, व्यापार और अवैतनिक देखभाल को एक साथ मिलाकर जटिल जीवन रक्षा रणनीतियों का निर्माण करते हैं, जिनका प्लूरी वर्कर्स (बहु-रोज़गार मज़दूर) अर्थव्यवस्था के रूप में वर्णन किया जा सकता है।

पलायन की प्रवृत्तियाँ और वास्तविकताएं

प्रवास के पैटर्न भी इन परिवर्तनों को दिखाते हैं। पिछले दशक में अंतरराज्यीय प्रवास बढ़ा है जो अधिकांशतः चक्रीय है। हालाँकि राज्यीय के भीतर के प्रवासियों और जनपद के भीतर के प्रवासियों का हिस्सा सबसे बड़ा है। कई अनुमानों से पता चलता है कि यह संख्या 20 करोड़ से ज़्यादा है हालाँकि इसका कोई आधिकारिक आँकड़ा नहीं है। यदि राज्य के भीतर के प्रवासियों को शामिल कर लिया जाए जो 2020-21 की भारत की लगभग एक-तिहाई आबादी के बराबर है जिनको प्रवासियों के रूप में गिना जा सकता है।

भारत में प्रवास रिपोर्ट (पीएलएफएस 2020-21) ग्रामीण प्रवास 26.5 प्रतिशत को मिलाकर कुल प्रवास दर 28.9 प्रतिशत का आकलन करती है। केवल 10.8 प्रतिशत के आसपास प्रवासी रोजगार संबंधी कारणों से स्थानांतरित हुए, जो प्रवास की लैंगिक प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है।(श्रम मंत्रालय, 2023).

अधिकांश प्रवासी श्रमिक श्रम-प्रधान अनौपचारिक क्षेत्रों, जैसे निर्माण, ईंट-भत्ते, पत्थर खदान, घरेलू काम, स्ट्रीट वेंडिंग, लॉजिस्टिक्स और लघु विनिर्माण से जुड़े हुए हैं। इन क्षेत्रों की पहचान अनियमित रोजगार अभ्यासों, बुनियादी सेवाओं तक सीमित पहुँच और बड़े पैमाने पर भुगतान संबंधी उल्लंघन के रूप में की जाती है। भर्ती अक्सर ठेकेदारों, बिचौलियों, जाति और रिश्तेदारी नेटवर्क या मज़दूर "अड्डों" के ज़रिए होती है, जिनमें कई बंधुआ मजदूरी सहित शोषणकारी रियाज़तों से जुड़े होते हैं। प्रवासी मज़दूरों को नियमित रूप से लंबे समय तक काम करने, असुरक्षित वातावरण, ख़राब आवास, न्यूनतम मज़दूरी से वंचित रहने और शिकायत निवारण या न्याय व्यवस्था तक बेहद सीमित पहुँच का सामना करना पड़ता है। उनका प्रवास और अस्थाई निवास उन्हें कल्याणकारी योजनाओं, सामाजिक सुरक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से वंचित रखते हैं। वे अक्सर उन गंतव्य शहरों में सामाजिक रूप से अदृश्य और प्रशासन् द्वारा अपरिचित रह जाते हैं जो उनके श्रम पर बहुत ज़्यादा निर्भर हैं लेकिन उनके अधिकारों को शायद ही कभी मान्यता देते हैं।

महिलाओं के लिए प्रवासन का अनुभव और भी कठोर होता है। प्रवासन के निर्णय अक्सर पुरुषों द्वारा लिए जाते हैं। महिलाओं के पास बहुत कम अधिकार बचते हैं। जब महिलायें पीछे रह जाती हैं तो उन्हें कृषि श्रम, घरेलू जिम्मेदारियों के साथ बड़े स्तर पर अवैतनिक देखभाल का कार्य करना पड़ता है। जब वे प्रवास करती हैं तो उन्हें अक्सर अनौपचारिक कार्यबल में अपरिचित सहकर्मियों के रूप में शामिल कर लिया जाता है जहाँ उनके श्रम या अधिकारों को बहुत कम मान्यता मिलती है। उन्हें असुरक्षित परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है , बच्चों की देखभाल और स्वास्थ्य सेवा का अभाव होता है, और नियोक्ताओं, ठेकेदारों और सहकर्मियों द्वारा यौन उत्पीड़न के जोखिम का सामना करना पड़ता है। हालाँकि इन चुनौतियों के बावजूद श्रम बल में महिलाओं की भागीदारी में नाटकीय रूप से वृद्धि हुई है। पिछले दो दशकों में, यह दर लगभग दोगुनी होकर अब 41.7 प्रतिशत हो गई है। चाहे आर्थिक आवश्यकता हो या आकांक्षाएँ, औपचारिक और अनौपचारिक दोनों क्षेत्रों में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ रही है। इस वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक चेतना और सामूहिक मुखरता भी बढ़ रही है, जिससे श्रम अर्थव्यवस्था के भीतर महिलाओं की एजेंसी को मजबूत करने का एक महत्वपूर्ण अवसर पैदा हो रहा है।

हालाँकि, काम की सहज और गतिशील प्रकृति ने सामूहिक संगठन के पारंपरिक रूपों को कमज़ोर कर दिया है। हालाँकि ट्रेड यूनियनें इस दिशा में काम कर रही हैं फिर भी उन्हें चक्रीय प्रवासियों, अनौपचारिक कामगारों और अनिश्चित या घर-आधारित व्यवसायों में लगी महिलाओं को संगठित करने में कठिनाई हो रही है। प्रवासियों को अक्सर गंतव्य शहरों में प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जो "भूमिपुत्रों" की भावनाओं और पहचान-आधारित राजनीति से प्रेरित होती हैं। इससे सामाजिक बहिष्कार गहराता है और प्रवासियों को अपनी पहचान दबाने के लिए मज़बूर होना पड़ता है या भेदभाव से बचने के लिए अदृश्य होना पड़ता है।

कोविड-19 महामारी ने भारत के प्रवासी श्रमिकों की अनिश्चितता को नाटकीय रूप से उजागर कर दिया है। सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर घर लौटने वाले श्रमिकों की तस्वीरें राष्ट्रीय चेतना में दर्ज रहेंगी। इस संकट ने अनौपचारिक और प्रवासी श्रमिकों की कमज़ोरियों की ओर अभूतपूर्व ध्यान आकर्षित किया और सुगम आवागमन तथा सामाजिक सुरक्षा को मज़बूत करने के उद्देश्य से कई नीतिगत पहलों को गति दी है। पहली बार, सार्वजनिक और नीतिगत सोच में एक स्पष्ट बदलाव आया: प्रवास को एक अपवाद नहीं, बल्कि भारत की श्रम अर्थव्यवस्था की एक संरचनात्मक विशेषता के रूप में स्वीकार किया गया। कल्याणकारी योजनाएँ निवास-आधारित प्रणालियों से आगे बढ़कर अधिक सुगम प्रारूपों की ओर बढ़ने लगीं। फिर भी इन बदलावों के बावजूद नीतिगत डिज़ाइन और ज़िंदा यथार्थ के बीच की दूरी अभी भी महत्वपूर्ण बनी हुई है।

नीति परिदृश्य: उन्नति और सतत अंतराल

हालिया नीतिगत विकास वादा और अंतराल, दोनों को दिखाते हैं। 29 श्रम कानूनों को चार श्रम संहिताओं में समाहित करना एक बड़ा सुधार है, जिसमें अनौपचारिक और गिग श्रमिकों को शामिल करते हुए श्रमिकों की विस्तृत परिभाषा दी गई है। इससे उन श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक नीतिगत ढाँचा तैयार होता है जिन्हें ऐतिहासिक रूप से वंचित रखा गया है। हालाँकि, प्रभावी कार्यान्वयन अनिश्चित बना हुआ है। प्रवर्तन तंत्र कमज़ोर हैं, निरीक्षण प्रणालियाँ संसाधनों से वंचित हैं, और अंतर-राज्यीय तथा चक्रीय प्रवासियों के संबंध में प्रशासनिक स्पष्टता का अभाव है। मज़बूत कार्यान्वयन के बिना, संहिताओं के केवल प्रतीकात्मक ही रह जाने का खतरा है।

महामारी के दौरान जारी अनौपचारिक श्रमिकों के अधिकारों पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की परामर्शी ने एक मजबूत अधिकार-आधारित ढाँचा पेश किया। (एनएचआरसी, 2020) गैर-भेदभाव, सुगमता, स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच, बेदखली से सुरक्षा और सुरक्षित परिवहन पर इसका ज़ोर समयोचित था और आज भी प्रासंगिक है।

इसी प्रकार, ई-श्रम पोर्टल की शुरुआत असंगठित श्रमिकों के लिए एक राष्ट्रीय डेटाबेस बनाने और पोर्टेबल सामाजिक सुरक्षा को सक्षम बनाने की दिशा में एक बदलाव का प्रतिनिधित्व करती है। हालाँकि ई-श्रम से जुड़े लाभ अभी भी सीमित हैं और डिजिटल बाधाएँ अभी भी बनी हुई हैं, फिर भी यह पोर्टल सार्वभौमिक, चलायमान सामाजिक सुरक्षा की नींव रखता है। अन्य महत्वपूर्ण ढाँचे भी प्रवासी श्रमिकों के अधिकारों को आकार देते हैं। बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए केंद्रीय क्षेत्र की योजना महत्वपूर्ण बनी हुई है, खासकर इसलिए क्योंकि प्रवासी श्रमिक ईंट भट्टों, खदानों, निर्माण और घरेलू कामों में बंधुआ मजदूरी के प्रति अनुपातहीन रूप से असुरक्षित हैं। महिलाओं, बच्चों और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के श्रमिकों के लिए इस योजना में बढ़ा हुआ मुआवज़ा, अंतर्विषयक कमज़ोरियों को स्वीकार करता है, लेकिन राज्यों के बीच अधिक सक्रिय पहचान और मज़बूत समन्वय की आवश्यकता है। लैंगिक रूप से संवेदनशील श्रम प्रशासन, विशेष रूप से POSH अधिनियम के तहत स्थानीय शिकायत समितियों जैसे तंत्रों का क्रियान्वयन अभी भी आवश्यक बना हुआ है। हालाँकि कानून मज़बूत है, लेकिन इसके क्रियान्वयन में कमियाँ–जैसे जागरूकता की कमी, प्रशिक्षण का अभाव और निष्क्रिय समितियाँ–प्रवासी महिलाओं की सुरक्षा को लगातार कमज़ोर कर रही हैं। उनके लिए, कार्यात्मक एलसीसी कोई वैकल्पिक अतिरिक्त सुविधा नहीं, बल्कि एक बुनियादी ज़रूरत है।

शहरी आजीविका कार्यक्रमों ने भी शहरी अर्थव्यवस्था में प्रवासियों की केंद्रीय भूमिका को स्वीकार करना शुरू कर दिया है। पीएम-स्वनिधि ने प्रवासी रेहड़ी-पटरी वालों के लिए वित्तीय सहायता बढ़ाई है, लेकिन केवल कर्ज देना ही पर्याप्त नहीं है। उत्पीड़न, जबरन हटाए जाना, तय वेंडिंग ज़ोन की कमी, और शहरी योजनाओं से बाहर रखा जाना–ये सभी संरचनात्मक समस्याएँ हैं जिन्हें केवल ऋण से हल नहीं किया जा सकता। शहरी रोज़गार गारंटी के साथ प्रयोग कर रहे राज्य बढ़ती शहरी अनिश्चितता को देखते हुए कदम उठा रहे हैं, लेकिन ये प्रयास अभी भी छोटे पैमाने पर हैं। एक राष्ट्र एक राशन कार्ड और आयुष्मान भारत जैसे व्यापक कल्याणकारी उपायों ने खाद्य और स्वास्थ्य सेवा की सुगमता में सुधार किया है, फिर भी डिजिटल से दूरी, आधार कार्ड संबंधी त्रुटियाँ, नौकरशाही बाधाएँ और कम जागरूकता कई प्रवासियों को उनके अधिकारों तक पहुँचने से रोक देती हैं।

उभरती चुनौतियाँ: जलवायु, अनिश्चितता और प्रवासन

भारत में प्रवास को नये ढंग से बदलने वाला जलवायु परिवर्तन एक अन्य चुनौती के रूप में उभर रहा है। सूखा, बाढ़, चक्रवात, भीषण गर्मी (हीट वेव) और तटीय कटाव समुदायों को संकटग्रस्त प्रवास की ओर तेज़ी से धकेल रही हैं। इसके बावजूद,

जलवायु-प्रेरित प्रवासन नीतिगत ढाँचों में काफ़ी हद तक अदृश्य बना हुआ है। अनुकूलन उपाय शायद ही कभी संकटग्रस्त श्रमिकों तक पहुँच पाते हैं, और श्रम सुरक्षा अभी तक जलवायु-संबंधित विस्थापन की वास्तविकताओं को संबोधित नहीं करती है। भारत को श्रम प्रशासन में जलवायु न्याय को एकीकृत करना होगा। आने वाले वर्षों में जलवायु प्रवासियों को मान्यता देना, संकट ग्रस्त समुदायों के लिए समायोजन में निवेश करना और जलवायु-जनित आजीविका हानि के लिए सामाजिक सुरक्षा स्थापित करना महत्वपूर्ण होगा।

भविष्य की ओर देखते हुए, भारत को श्रमिकों के प्रवासन के लिए एक अधिक न्यायसंगत और व्यापक ढाँचा तैयार करना होगा। इसके लिए खंडित कल्याणकारी उपायों से हटकर सार्वभौमिक, सुगम सामाजिक सुरक्षा की एक मज़बूत व्यवस्था की आवश्यकता है जो विभिन्न राज्यों और व्यवसायों के श्रमिकों के साथ चलती हो। न्यूनतम मजदूरी, लिखित अनुबंध, श्रम ठेकेदारों का नियमन, मजदूरी की चोरी की रोकथाम, और मजबूत निरीक्षण एवं प्रवर्तन प्रणालियाँ केंद्रीय प्राथमिकताएँ बननी चाहिए। प्रवासियों के लिए आवास एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, इसलिए कम किराये की आवास योजनाओं, श्रमिक छात्रावासों और किफायती शहरी आवासों को मजबूत करना आवश्यक है। लिंग-संवेदनशील उपाय भी उतने ही ज़रूरी हैं। प्रवासी महिलाओं को कार्यस्थलों पर कार्यात्मक क्रेच, सुरक्षित और विश्वसनीय परिवहन, सार्वभौमिक मातृत्व लाभ, निवास-आधारित बहिष्कार के बिना स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच और सभी कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए मज़बूत तंत्र की आवश्यकता है। POSH अधिनियम, समान पारिश्रमिक अधिनियम और श्रम संहिताओं में लिंग-संबंधी प्रावधानों के कार्यान्वयन को स्पष्ट जवाबदेही तंत्र के साथ मजबूत किया जाना चाहिए।

प्रवासन को केवल जनसांख्यिकीय तथ्य के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि एक मानवीय स्थिति के रूप में देखा जाना चाहिए जो सम्मान, अधिकार और समर्थन की मांग करती है।

निष्कर्ष

भारत के अनौपचारिक और प्रवासी कामगारों के अधिकारों और सम्मान को साकार करने के लिए, हमें टुकड़ों-टुकड़ों में किए जाने वाले उपायों से आगे बढ़कर सामाजिक सुरक्षा की एक वास्तविक व्यापक व्यवस्था को अपनाना होगा। हमारे कामगार खंडित स्वास्थ्य बीमा योजनाओं या आंशिक वेतन सुरक्षा उपायों पर निर्भर नहीं रह सकते। वे एक ऐसी श्रम व्यवस्था के हक़दार हैं जो सभी क्षेत्रों में न्यूनतम और समान वेतन की गारंटी दे, लिखित अनुबंधों और श्रम ठेकेदारों के कड़े नियमन के ज़रिए वेतन

की चोरी को रोके, प्रधानमंत्री आवास योजना और सम्मानजनक श्रमिक छात्रावासों तक पहुँच का विस्तार करे, और मज़बूत शहरी रोज़गार गारंटी कार्यक्रम बनाए। तभी सचल श्रमिक–जो हमारे शहरों का निर्माण करते हैं, हमारे लिए भोजन उगाते हैं और हमारी अर्थव्यवस्था को जीवित रखते हैं–एक सुरक्षित, निष्पक्ष और सम्मानजनक भविष्य की ओर कदम रख पाएँगे।

महिला श्रमिकों के लिए, यह परिवर्तन लैंगिक न्याय पर आधारित होना चाहिए। उनके जीवन में कार्यस्थलों पर कार्यात्मक क्रेच, सुरक्षित और किफायती परिवहन, निवास स्थान से जुड़े न होने वाले मातृत्व लाभ और ऐसे कार्यस्थलों की आवश्यकता है जहाँ यौन उत्पीड़न को रोका और दंडित किया जाए, न कि अनदेखा किया जाए। श्रम संहिताओं, समान पारिश्रमिक अधिनियम और POSH अधिनियम के माध्यम से कानून पहले से ही इन अधिकारों का वादा करता है, लेकिन वादे और व्यवहार के बीच का अंतर अभी भी बहुत बड़ा है। इस अंतर को पाटना वैकल्पिक नहीं है; यह महिलाओं की सुरक्षा, सम्मान और समान नागरिकता के लिए आवश्यक है।

जलवायु न्याय को भी श्रम प्रशासन का केंद्रबिंदु बनना होगा। जलवायु परिवर्तन से मज़बूर प्रवासियों के लिए सहायता, संवेदनशील क्षेत्रों के लिए अनुकूलन संसाधन, और श्रमिकों को हुए नुकसान और क्षति के लिए मुआवज़ा, अभी भी काफ़ी हद तक अनुपस्थित हैं। इन उभरती वास्तविकताओं का समाधान किए बिना, भारत उन लोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं बना सकता जो पारिस्थितिक परिवर्तन का सबसे भारी बोझ उठा रहे हैं।

मूलतः, सुरक्षित, सम्मानजनक और समर्थित आवागमन मानव अधिकारों का प्रश्न है। प्रवासी श्रमिकों की सुरक्षा केवल एक कानूनी दायित्व ही नहीं है–यह हमारे संविधान, हमारे नीति निर्देशक सिद्धांतों और करुणा एवं एकजुटता की हमारी सदियों पुरानी परंपराओं में निहित एक नैतिक प्रतिबद्धता है। भारत अपने भविष्य की रूपरेखा तैयार कर रहा है, ऐसे में श्रमिकों को विकास के केंद्र में रखना न केवल वांछनीय है; बल्कि एक न्यायसंगत, समतामूलक और समावेशी राष्ट्र के निर्माण के लिए यह अनिवार्य भी है।

संदर्भ

ऐक्शनएड एसोसिएशन. (2024). रिफ्यूजीज़ इन इंडिया: ए नेशनल सर्वे ऑफ़ रिफ्यूजी कम्युनिटीज़ एक्सेस टू एजुकेशन, हेल्थकेयर ऐंड लाइवलीहुड्स. https://nhrc.nic.in/assets/uploads/training_projects/Refugees_in_India.pdf

भारत सरकार. (1950). कांस्टीट्यूशन ऑफ़ इंडिया. भारत सरकार।

मेहरोत्रा, संतोष. (2019). इन्फ़ॉर्मल एम्प्लॉयमेंट ट्रेंड्स इन द इंडियन इकॉनमी: पर्सिस्टेंट इन्फ़ॉर्मैलिटी, बट ग्रोइंग पॉज़िटिव डेवलपमेंट. एम्प्लॉयमेंट वर्किंग पेपर नं. 254, आईएलओ.
https://www.ilo.org/sites/default/files/wcmsp5/groups/public/%40ed_emp/%40ifp_skills/documents/publication/wcms_734503.pdf

श्रम और रोजगार मंत्रालय. (2023)। माइग्रेशन ऑफ़ लेबर इन द कंट्री.
https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1941077#:~:text=As%20per%20the%20Report%20Migration,and%20in%20rural%20was%2026.5%25.

मिंट. (2024). व्हाइ द इंक्रीज़ इन फ़ार्म वर्कर पॉप्युलेशन इज़ अ वरी. (मिंट, 10 दिसंबर 2024).
https://www.livemint.com/economy/farm-worker-population-agricultural-jobs-rural-jobs-rural-workers-rural-economy-rural-job-growth-unemployment-11733811795449.html

एनएचआरसी. (2020). एडवाइज़री: ह्यूमन राइट्स ऑफ़ इन्फ़ॉर्मल वर्कर्स ड्यूरिंग कोविड-19.
https://nhrc.nic.in/assets/uploads/covid1/1721805688_436941f7370965eba4a7.pdf

पालसेटिया, जे. एस. (2001). द पारसीज़ ऑफ़ इंडिया: प्रिज़र्वेशन ऑफ़ आइडेंटिटी इन बॉम्बे सिटी (वॉल्यूम 17). ब्रिल.

वर्ल्ड बैंक ग्रुप. (2025). एम्प्लॉयमेंट इन एग्रीकल्चर (% ऑफ़ टोटल एम्प्लॉयमेंट) (मॉडेल्ड आईएलओ एस्टीमेट)इंडिया.
https://data.worldbank.org/indicator/SL.AGR.EMPL.ZS?locations=IN

मीडिया एवं मानव अधिकार

श्री अजय सिंह*

मानव अधिकार का इतिहास सभ्यता के साथ-साथ चला है। करुणा और प्रतिशोध दोनों भावनाएं मानवीय मनोविज्ञान को संचालित करती हैं। संभवत: मानव के अलावा कोई जीव नहीं है जिसमें अपनी प्रजाति पर ही जुर्म करने की अपार क्षमता हो। सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध में घोर नरसंहार किया। यह नरसंहार इतना हृदय-विदारक था कि वो खुद ही द्रवित हो गए। करुणा का यह भाव ही मानव अधिकार की नींव में है। पश्चिमी सभ्यता में भी इसके कई दृष्टांत मिलते हैं।

मानव अधिकार का संस्थागत ढांचा द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद बना। युद्ध की विभीषिका, यहूदियों पर अत्याचार, कई देशों में राजनीतिक दुराग्रहों की वजह से की गई हिंसा ने एक सक्रिय मानव अधिकार संस्था को जन्म दिया। भारत का इसमें प्रमुख योगदान है। हंसाबेन मेहता ने भारत का प्रतिनिधित्व किया और मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्हीं के प्रभाव में इस मसौदे में 'समस्त मानव' जोड़कर समावेशी दृष्टिकोण लिया गया।

मानव अधिकार का इतिहास भारत में भी अनेक उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरा है। संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों ने भारत में मानव अधिकार की मजबूत नींव डाली। यही वजह है कि इमरजेंसी के काल-खंड को अगर हटा दें तो भारत में मौलिक अधिकारों का बचाव निरंतर होता रहा। न्यायपालिका, मानव अधिकार संगठन, मीडिया एवं

---

*राष्ट्रपति के भूतपूर्व प्रेस सचिव

विधायिका ने प्राय: सजग प्रहरी की भूमिका निभाई। कार्यपालिका के आचरण की समीक्षा होती रही। इन सारी संस्थाओं के सजग प्रयासों से और मानव अधिकार आयोग की निगरानी से भारत में मानव अधिकारों का इतिहास अन्य देशों की तुलना में अच्छा रहा। पर आधुनिक समय में क्या मानव अधिकार की परिभाषा सिर्फ मनुष्यों के जीवन तक ही सीमित रहना चाहिए? यह प्रश्न इस टेकनोलोजी के आधुनिक युग में मुंह बाए खड़ा है। आज जरूरत है इस परिभाषा को व्यापक बनाने की और इसमें पर्यावरण तथा अन्य जीव-जंतुओं को जोड़ने की। मिशाल के तौर पर पर्यावरण-असंतुलन से होने वाले बदलाव क्या मानव अधिकार का हनन नहीं करते। जंगलों के कटने से और वन्य-प्राणियों के लुप्त होने से क्या जंगल में रहने वाले जनजातीय समुदाय का अहित नहीं होता। प्रदूषित वातावरण भी मानव अधिकार का हनन है। इसी तरह स्वच्छ जल भी मानव अधिकार का हिस्सा है।

आज जरूरत है मानव अधिकार के परिभाषा को विस्तृत करने की। इसके लिए आवश्यक है कि समाज के सभी स्टेकहोल्डर्स सचेत रहें और जागरूकता बढ़ाएँ। मानव अधिकार, पर्यावरण और अन्य जीव-जंतुओं के अधिकार का एक समावेशी दृष्टिकोण लेना होगा।

टेकनोलोजी के इस युग में एक खतरा सबसे बड़ा है - वह है अधिकारों का हनन का मशीनीकरण। Artificial Intelligence के इस युग में सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े तबके हमेशा प्रतिकूल परिस्थिति में होंगे। सामाजिक इंटरफ़ेस का माध्यम उन मशीनों के जरिये होगा जो सुपर इंटेलिजेंट हैं, पर संवेदन-शून्य है। सबसे बड़ा खतरा है युद्ध के दौरान इस तरह की तकनीकी का प्रयोग। इन मशीनों की विध्वंसक क्षमता भी असीम है। संवेदन-शून्य होने की वजह से घटना की त्रासदी का अहसास भी नहीं होगा।

कलिंग के युद्ध के मैदान में सम्राट अशोक भी हिंसा की विभीषिका को देखकर विचलित हो गए थे। उन्होंने हिंसा का वीभत्स चेहरा युद्ध क्षेत्र में स्वयं देखा। पर आज के दिन स्वचालित विमान और हथियारों के जरिये आप हजारों मील दूर से मार कर सकते हैं। इन आयुद्ध संयंत्रों के लिए मनुष्य एक टारगेट से ज्यादा कुछ नहीं है। आतंकी संगठन भी इसी तरह इन तकनीकियों का प्रयोग कर सकते हैं। मानव अधिकार हनन का यह सबसे खतरनाक पहलू है।

इस परिपेक्ष में मानव अधिकार की परिभाषा को एक व्यापकता देने की जरूरत है। इसमें शक नहीं है कि आधुनिकता के साथ मानवीय संवेदनाओं के विषयों में चुनौतियाँ बढ़ती है। इस बात में भी संदेह नहीं है कि मानव-जाति करुणा और संवेदना के जरिये हमेशा भविष्य को सँजोती है। मुझे लगता है कि मानव अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय रोडमैप की पृष्ठभूमि भारत में ही बनेगी।

एक पत्रकार के रूप में मानव-अधिकार के हनन की कई घटनाओं को देखने का अवसर मिला। अपराधियों व चरमपंथियों द्वारा की गई घटनाएँ तो जग-जाहीर हैं। इन घटनाओं में साफ तौर पर अभियुक्त कानून-व्यवस्था की परिधि से बाहर होता है। लेकिन सबसे बड़ी समस्या तब होती है जब राज्य के किसी अंग द्वारा मानव अधिकार का हनन होता है। इस तरह की घटना न सिर्फ राज्य का आभा-मण्डल क्षीण करती है अपितु सामाजिक अनुबंध को भी कमजोर करती है।

मिसाल के तौर पर अगर पुलिस ज्यादती का प्रसंग लें। सत्तर और अस्सी के दशकों में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई जिसमें नागरिकों के मूलभूत अधिकारों और जीवन के अधिकार का संकट भी आया। सुप्रीम कोर्ट में ADM जबलपुर केस का प्रकरण चला जिसमें जीवन के अधिकार को नैसर्गिक मानने की बहस चली। सुप्रीम कोर्ट ने अंततोगत्वा इस अधिकार को 2017 में मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार माना।

सभ्यता के तौर पर भारत में समस्त प्राणियों, वनस्पतियों, और जीवनदायिनी संपदाओं के अधिकारों की बात की गई है। पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखने की बात की है। मानव-अधिकार की अवधारणा पाश्चात्य संस्कृति में वास्तव में ग्यारहवीं सदी में मैग्ना कार्टा से देखी जा सकती है। पर इसका सफर बहुत धीमा रहा। बीसवीं सदी तक मानव अधिकारों की यात्रा एक संक्रमण काल से गुजरी। आज भी इन अधिकारों की व्यापक व्याख्या नहीं हुई है जो भारतीय दर्शन की अवधारणा में है। साफ तौर पर भारतीय ऋषि, मनीषियों और विद्वानों को इस बात का आभास था कि मानव अधिकारों को भी समस्त जीवों के अधिकार और पर्यावरण के संरक्षण के साथ देखना चाहिए।

दिलचस्प यह है कि भारत की विभिन्न संस्थाएं, मानव अधिकार आयोग, न्यायपालिका और विधायिका समेकित ढंग से इन अधिकारों के बचाव के लिए सचेत हैं। इन संस्थाओं ने मिलकर एक ऐसे मानव अधिकार को बनाने की कोशिश की है जिसकी मिशाल विश्व के लिए अनुकरणीय हो। मानव अधिकार की नई व्याख्या और उनके विषय में सीमित लक्ष्य से लंबे काल में पृथ्वी पर जीवन का नुकसान होगा। इसलिए यह जरूरी है कि भारतीय सभ्यता का मंत्र 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' ही अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों का मानदंड बने।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

खाद्य सुरक्षा: भारत में प्रगति और प्रमुख चुनौतियाँ

डॉ हेमलता आर.*

परिचय

खाद्य सुरक्षा मानव विकास का केंद्रीय स्तंभ है। यह केवल खाद्य उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें पहुँच, वहनीयता, उपयोगिता और दीर्घकालिक स्थिरता भी शामिल है। FAO के अनुसार, खाद्य सुरक्षा तब मौजूद होती है जब सभी लोगों को हर समय पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक भौतिक, सामाजिक और आर्थिक पहुँच हो। खाद्य सुरक्षा का शिक्षा, जीवन स्तर, लैंगिक समानता और सामाजिक सशक्तिकरण से गहरा संबंध है।

जहाँ अधिकांश सरकारी योजनाएँ खाद्य उपलब्धता और पहुँच पर केंद्रित हैं, वहीं उपयोगिता और स्थिरता के स्तंभ स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, महिलाओं के सशक्तिकरण और आय पर निर्भर करते हैं। इन क्षेत्रों में प्रगति के बिना खाद्य सुरक्षा अस्थिर बनी रहती है। भारत में भोजन का अधिकार संवैधानिक सिद्धांतों और 'सर्वजन हिताय' की व्यापक दृष्टि में निहित है। भारत की खाद्य सुरक्षा प्रणाली दुनिया की सबसे व्यापक व्यवस्थाओं में से एक मानी जाती है।

खाद्य सुरक्षा में भारत की उपलब्धियाँ

भारत ने खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण प्रगति की है। एक प्रमुख उपलब्धि खाद्य-अभाव वाले देश से खाद्यान्न अधिशेष देश में

*पूर्व निदेशक, आई.सी.एम.आर

परिवर्तन है, जिसे हरित क्रांति, उन्नत सिंचाई, उच्च उत्पादकता वाले बीजों और आधुनिक कृषि तकनीकों ने संभव बनाया। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), जो विश्व की सबसे बड़ी प्रणालियों में से एक है, को डिजिटलीकरण, आधार-आधारित प्रमाणीकरण और संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखला सुधारों के माध्यम से मजबूत किया गया है, जिससे लीकेज कम हुए और पहुँच में सुधार हुआ। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए, 2013) के तहत लगभग 80 करोड़ लोग सब्सिडी वाले खाद्यान्न प्राप्त करते हैं, जिससे घरेलू स्तर पर भोजन की बुनियादी उपलब्धता सुनिश्चित होती है। एनएफएसए ग्रामीण आबादी के लगभग 75% और शहरी आबादी के 50% को अत्यधिक सब्सिडी वाले खाद्यान्न उपलब्ध कराता है।

भारत ने पोषण-उन्मुख हस्तक्षेपों को शामिल करते हुए अपने दृष्टिकोण का विस्तार भी किया है, जैसे चावल, गेहूं के आटे और खाने के तेल का सुदृढ़ीकरण, तथा मोटे अनाजों (मिलेट्स) का प्रसार। पीएम-पोषण (मिड-डे मील योजना) जैसी स्कूल-आधारित योजनाएँ प्रतिदिन लाखों बच्चों को पौष्टिक भोजन प्रदान करती हैं, जिससे शिक्षा और पोषण दोनों को समर्थन मिलता है। इसके अलावा, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (स्वच्छ खाना पकाने का ईंधन) और जल जीवन मिशन (सुरक्षित पेयजल) जैसी पहलें खाद्य उपयोगिता और स्वच्छता की नींव को मजबूत करती हैं, जो पोषण सुरक्षा के महत्वपूर्ण घटक हैं।

कुल मिलाकर, कृषि, सामाजिक सुरक्षा, डिजिटल शासन, महिला सशक्तिकरण और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे अनेक क्षेत्रों को शामिल करने वाले भारत के बहु-क्षेत्रीय दृष्टिकोण ने घरेलू खाद्य उपलब्धता में महत्वपूर्ण सुधार किया है और भूख को कम किया है। हालांकि, कई स्थायी समस्याएँ इनके दीर्घकालिक प्रभाव को सीमित करती हैं:

जीवन स्तर और आर्थिक सुरक्षा

जीवन स्तर खाद्य सुरक्षा की आर्थिक नींव को दर्शाता है। गरीबी न केवल क्रय शक्ति को कम करके पौष्टिक भोजन तक पहुँच को सीमित करती है, बल्कि स्वच्छ पानी, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवा और सुरक्षित आवास तक पहुँच को भी सीमित करती है, जो पोषक तत्वों के प्रभावी उपयोग के लिए आवश्यक हैं। एक परिवार को भले ही मुफ्त चावल और गेहूँ मिल जाए, लेकिन यदि उसके पास खाना पकाने के लिए ईंधन, भोजन तैयार करने के लिए स्वच्छ पानी या संक्रमणों को रोकने के लिए स्वस्थ वातावरण नहीं है, तो पोषण सुरक्षा अप्राप्य बनी रहती है।

सरकार की प्रमुख योजना, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (PMUY), का उद्देश्य गरीब परिवारों को स्वच्छ खाना पकाने का ईंधन सुलभ कराना है। यह बीपीएल (गरीबी

रेखा से नीचे) परिवारों की महिलाओं को मुफ्त एलपीजी कनेक्शन और पहले सिलेंडर व रेगुलेटर के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इससे बायोमास पर निर्भरता कम होती है, जो घरेलू वायु प्रदूषण और श्वसन रोगों का कारण बनता है, साथ ही पारंपरिक पकाने के तरीकों से जुड़ा समय और श्रम कम होने से महिलाओं को सशक्त भी बनाता है।

इसी प्रकार, जल जीवन मिशन (JJM) का लक्ष्य हर परिवार को नल जल कनेक्शन उपलब्ध कराना है, जिससे परिवारों को खाना पकाने और भोजन तैयार करने के लिए आवश्यक सुरक्षित पानी मिल सके।

मुफ्त या सब्सिडी वाले भोजन, स्वच्छ ईंधन और सुरक्षित पानी जैसी प्रमुख कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद भारत में पोषण सुरक्षा अभी भी चुनौतीपूर्ण बनी हुई है। इसका कारण यह है कि पोषण केवल भोजन की उपलब्धता और उसे पकाने के साधन पर निर्भर नहीं करता, बल्कि क्रय शक्ति, शिक्षा, महिलाओं के सशक्तिकरण और व्यवहार परिवर्तन पर भी आधारित है।

जब परिवारों की आय स्थिर होती है, तो वे अपने आहार में विविधता लाना शुरू करते हैं, जिसमें फल, सब्जियाँ, डेयरी उत्पाद और दालें शामिल होती हैं। बढ़ते जीवन स्तर से बीमारी या नौकरी छूटने जैसे संकटों के प्रति संवेदनशीलता भी कम होती है, जो परिवारों को फिर से भूख की स्थिति में धकेल सकता है। सतत खाद्य सुरक्षा तभी संभव है जब आर्थिक अवसर और समान विकास सुनिश्चित किए जाएँ।

सतत खाद्य सुरक्षा की नींव के रूप में शिक्षा

शिक्षा, विशेष रूप से लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा, दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा और पोषण कल्याण का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक है। शिक्षा विभिन्न मार्गों से खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करती है। शिक्षित व्यक्ति संतुलित आहार, सुरक्षित खाना पकाने के तरीके, स्तनपान, और स्वच्छता को बेहतर ढंग से समझते हैं, जो भोजन के उपयोग को प्रभावित करते हैं। पोषण साक्षरता सीधे प्रभावित करती है कि परिवार क्या उगाते हैं, क्या खरीदते हैं और क्या उपभोग करते हैं। शिक्षित माताएँ समय पर टीकाकरण सुनिश्चित करने, स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग करने और प्रारंभिक बचपन में संतुलित पोषण प्रदान करने की अधिक संभावना रखती हैं, जिससे कुपोषण और ठिगनेपन (stunting) में कमी आती है।

शिक्षा रोज़गार क्षमता, आय और स्थिर आजीविका तक पहुँच को बढ़ाती है। जब परिवारों की आय बढ़ती है, तो पौष्टिक और विविध आहार को वहन करने की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। शिक्षा घर के भीतर निर्णय लेने की शक्ति में भी बदलाव

लाती है। जब महिलाएँ भोजन उत्पादन, खर्च और बच्चों की देखभाल से जुड़े निर्णयों में भाग लेती हैं, तो परिवार का आहार और स्वास्थ्य परिणाम उल्लेखनीय रूप से सुधारते हैं।

भारत में सरकारी स्कूलों का विशाल नेटवर्क है जो मुफ्त शिक्षा, मध्याह्न भोजन, वर्दी और शिक्षण सामग्री प्रदान करता है, जिससे निम्न-आय वाले परिवारों के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। समग्र शिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, नवोदय और केंद्रीय विद्यालय जैसी योजनाएँ विशेष रूप से लड़कियों के लिए ड्रॉपआउट दर कम करने और सीखने के परिणामों में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

शिक्षा गुणवत्ता, डिजिटल पहुँच, और सहयोगी शिक्षण वातावरण में निवेश करना पोषण सुरक्षा में सुधार के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा सीधे पोषण ज्ञान, आर्थिक अवसरों और दीर्घकालिक स्वास्थ्य व्यवहारों को प्रभावित करती है। जब लड़कियाँ प्रशिक्षित शिक्षकों वाली कक्षाओं में सीखती हैं, तो वे संतुलित आहार, स्वच्छता, बच्चों को खिलाने की सही प्रथाएँ और विविध भोजन के महत्व को समझने की क्षमता विकसित करती हैं। अनेक अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि भारत में मातृ शिक्षा बच्चे के पोषण की सबसे मजबूत भविष्यवाणी करने वाली कारक है, जो कई संदर्भों में आय से भी अधिक प्रभावी है। जिन जिलों में महिला साक्षरता दर अधिक है, वहाँ लगातार ठिगनेपन (stunting), कम वजन (wasting) और एनीमिया के स्तर कम पाए गए हैं। इस प्रकार, शिक्षा में निवेश–विशेषकर लड़कियों की शिक्षा–पोषण कार्यक्रमों पर खर्च किए गए हर रुपये के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है

खाद्य सुरक्षा में स्थायी चुनौतियाँ

कई कार्यक्रमों के बावजूद पोषण सुरक्षा अभी भी बड़ी आबादी के लिए चुनौती बनी हुई है। अनेक परिवार आहार विविधता की कमी, सब्जियों, फलों और दालों के सीमित सेवन और अनाज-प्रधान आहार पर निर्भरता से जूझते रहते हैं। कम क्रय शक्ति, बढ़ती खाद्य कीमतें और पोषक-तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थों तक असमान पहुँच स्वस्थ विकल्पों को सीमित करती है। इसके अलावा, पोषण साक्षरता की कमी, पारंपरिक खाद्य आदतें, महिलाओं की निर्णय लेने की सीमित भूमिका और प्रारंभिक जीवन देखभाल में कमियाँ–इन सभी से पीढ़ी-दर-पीढ़ी कुपोषण की समस्या बनी रहती है। पोषण कार्यक्रमों में निम्नलिखित पहलुओं पर विशेष ध्यान की आवश्यकता है:

कैलोरी-केंद्रित दृष्टिकोण:

कई दशकों तक खाद्य सुरक्षा का मुख्य फोकस पर्याप्त कैलोरी सुनिश्चित करने पर रहा, न कि संतुलित पोषण पर। इससे हिडन हंगर (hidden hunger) और आयरन, जिंक, विटामिन जैसे आवश्यक माइक्रोन्यूट्रिएंट्स की कमी आम होती गई। हालांकि, 2023 में एनएफएसए से जुड़े पोषण मानकों के संशोधनों ने इस दृष्टिकोण को बदलना शुरू किया है, जिसमें दालों, मिलेट्स और फोर्टिफाइड अनाजों को शामिल करके अधिक विविध और पौष्टिक खाद्य टोकरी की दिशा में कदम बढ़ाया गया है।
आहार विविधता:

अनाज-आधारित वितरण प्रणाली क्षेत्रीय आहार की विविधता को अनदेखा करती है और दालों, मिलेट्स तथा सब्जियों जैसे स्थानीय और पोषक खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देने में विफल रहती है। 2023 के एनएफएसए पोषण संशोधनों में दालें, मिलेट्स और क्षेत्रीय रूप से उपयुक्त पोषक खाद्य शामिल करने के प्रावधान भी किए गए हैं, जो इस बढ़ती समझ को दर्शाता है कि वास्तविक खाद्य सुरक्षा केवल कैलोरी से नहीं मिलती।
क्षेत्रीय असमानताएँ:

जहाँ कुछ राज्य लगभग सार्वभौमिक खाद्य पहुँच सुनिश्चित कर चुके हैं, वहीं अन्य राज्य लॉजिस्टिक्स, अवसंरचना और प्रशासनिक क्षमता की चुनौतियों से जूझ रहे हैं।

लीकेज और अक्षमताएँ:

हालाँकि नीति आयोग के हालिया आकलनों के अनुसार पीडीएस लीकेज में उल्लेखनीय कमी आई है, फिर भी औसत लीकेज दर लगभग 28% बनी हुई है, जो सुधार की बड़ी संभावनाओं को दर्शाती है।

कम पोषण साक्षरता:

जब भोजन, ईंधन और पानी उपलब्ध होने के बावजूद पोषण ज्ञान सीमित होता है, तब आहार अनाज-प्रधान रह जाता है, दालों का सेवन कम होता है, गलत खिलाने की प्रथाएँ जारी रहती हैं और कुपोषण बना रहता है। स्कूलों, समुदायों और महिला समूहों में पोषण साक्षरता को मजबूत करना वास्तविक पोषण सुरक्षा प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है।

मानव अधिकार का दृष्टिकोण

खाद्य सुरक्षा दान की नहीं, बल्कि मानव अधिकारों की बात है—गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार की। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन के अधिकार की गारंटी देता है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने भोजन के अधिकार को भी शामिल करने के रूप में व्याख्यायित किया है। लेकिन अधिकार तभी सार्थक होते हैं जब लोगों में उन्हें लागू करने की क्षमता हो—ज्ञान, स्वतंत्रता और अवसर के माध्यम से।

इसलिए शिक्षा लाभार्थियों को अधिकार-धारकों में बदल देती है। जब व्यक्ति अपने अधिकारों को समझते हैं, जवाबदेही की मांग करते हैं और नीति-निर्माण में भाग लेते हैं, तब खाद्य सुरक्षा सतत और लोकतांत्रिक बन जाती है। यह मानव अधिकार-आधारित दृष्टिकोण सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के अनुरूप है, विशेष रूप से लक्ष्य 2 (भूख मुक्त विश्व), लक्ष्य 4 (गुणवत्तापूर्ण शिक्षा)...

निष्कर्ष

खाद्य सुरक्षा, शिक्षा और जीवन स्तर मानव जीवन की गुणवत्ता को परिभाषित करने वाली एक अविभाज्य त्रयी हैं। पोषण कार्यक्रम आवश्यक हैं, कई बार जीवन-रक्षक भी, लेकिन उन्हें एक गंतव्य नहीं बल्कि पुल के रूप में देखा जाना चाहिए। कोई राष्ट्र केवल भोजन देकर अपने नागरिकों को समृद्धि तक नहीं पहुँचा सकता; उसे शिक्षित, सशक्त और सक्षम बनाना होगा ताकि वे स्वयं अपने पोषण को सुरक्षित कर सकें।

भारत की भविष्य की खाद्य सुरक्षा इस पर कम निर्भर करेगी कि सरकार कितना अनाज बाँट सकती है और अधिक इस पर कि वह साक्षरता, आय और आकांक्षाओं को कितनी प्रभावी तरह बढ़ा सकती है। प्रगति का वास्तविक मापदंड पीडीएस के माध्यम से कितना चावल वितरित हुआ यह नहीं होगा, बल्कि कितने परिवार ऐसे हुए जिन्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं रह गई।

केवल जब खाद्य सुरक्षा निर्भरता से गरिमा, और राहत से लचीलापन (resilience) की ओर विकसित होगी, तभी भारत समान और सतत मानव विकास की उस दृष्टि को साकार कर पाएगा—जहाँ प्रत्येक नागरिक के पास न केवल थाली में भोजन हो, बल्कि वह शिक्षा, अवसर और स्वतंत्रता भी हो जो शरीर और मन दोनों को पोषित करने वाले विकल्प चुनने की क्षमता प्रदान करे।

*****

महिलाओं द्वारा कानून निर्माण और महिला अधिकार

डॉ. विद्या देवधर*

बीसवी और इक्कीसवी सदी मे सबसे अधिक चर्चित विषयों मे एक है नारी जीवन! स्त्री शिक्षा, परिवार मे स्त्री का स्थान, स्त्री का अर्थार्जन एवं स्त्री का एक स्वतंत्र व्यक्ती के रूप मे विकास और स्त्री के अधिकार, इस दृष्टी से स्त्री जीवन परिवर्तन के लिए पुरे विश्व मे प्रयत्न हो रहे थे। स्त्री जीवन अधिक सुखमय हो, इस हेतू से संपूर्ण भारत मे सतीबंदी से सरोगसी तक कानून भी पारित हुए। स्त्री जीवन सुधार में, समाज के विचारवंत बंधू तथा कुछ महिलाएं भी जुडी थी यह हमे ज्ञात है। शिक्षा, कला, विज्ञान, राजनीति ऐसे अनेक क्षेत्रों में महिलाओं के कार्य और अधिकारों की चर्चा आज दिखाई देती है। इस विषय पर बहुत लिखा भी गया है परंतु स्त्री का एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र, अर्थात **स्त्री को अधिकार देने वाले कानून निर्माण करने मे महिलाओं का योगदान** यह विषय अभी तक अनदेखा रह गया है।

आधुनिक काल मे बीसवी सदी में, महिलाएं जागृत होने के बाद अपने अधिकारों की मांग करने लगी और उससे संबंधित कानून भी बन गये। इस समय अचानक भारतीय स्त्री जागृत हुई, सक्षम हुई और उसे अपने अधिकार दिये गये, ऐसा नही है। स्त्री की बुद्धिमत्ता, विचार शक्ति और निर्णय क्षमता को भारतीय समाज मे वेदकाल से ही महत्त्व दिया है।यह वेद उपनिषद मे महिलाओ द्वारा लिखित ऋचाओं से स्पष्ट होता है।

*अध्यक्ष, मराठी साहित्य परिषद, तेलंगाना

स्त्री पुरुष समानता और समान अवसर यह महिला हक्क का मुख्य तत्व माना जाता है। भारतीय तत्वज्ञान में स्त्री और पुरुष समानही माने जाते है। एक ही आदि तत्व के दो भाग याने स्त्री (प्रकृति) और पुरुष है, इस मे कोई छोटा अथवा बडा नही है। विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी रही महिलाओं की जानकारी भी वेद और उपनिषद मे मिलती है। महिलाएं अपनी क्षमता समझ सकती थी।इसलिये अपने अधिकारों के लिए उनको कभी लढना भी नही पडा। ऋग्वेद के दसवे मंडल मे 125 वे सूक्त मे, वाक्भृणी कहती है।'इस विश्व की अधिष्ठात्री, जगत्स्वामिनी, निर्माणकर्ती, रक्षणकर्ती, सर्वसंचारी मैं ही हूं। मेरी महिमा स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। इस संपूर्ण सुक्त में अन्य सारे सत्ता स्थानों की क्षमताओं की मर्यादा स्पष्ट करते हुए शक्ती (स्त्री) तत्व की महत्ता एवं सामर्थ्य सिद्ध किया है। वर्तमान भारतीय संस्कृति का मूलरूप यही वैदिक संस्कृती, सभ्यता है। इस सभ्यता के निर्माण में पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। तप, प्रतिभा, मेधा ये आत्मा के धर्म है, शरीर के नही ऐसा हम मानते है। अतः ये दिव्य गुण स्त्री और पुरुष मे भेद नही करते। यही कारण है की वेदकाल मे मंत्रदृष्टा पुरुष ऋषियों के समान स्त्री ऋषी भी हुआ करती थी। ऋषि शौनक ने स्त्री ऋषियों को मुनी, ब्रह्मवादीनी और ऋषी कहा है। शादी तक वेदाध्ययन करने वाली महिलाओं को 'साध्योद्वास' कहते है। ऋग्वेद के दशम मंडल मे घोषा द्वारा रचित सुक्तों मे देवता अश्विनीद्वय से घोषा कहती है, 'जैसे पिता पुत्र को शिक्षण देता है, उसी प्रकारमुझे शिक्षण दो।(10/39/6) घोषा, भाई की बराबरी मे शिक्षा पाने का अधिकार मागती है। पति के संन्यास ग्रहण करने पर पत्नी का पति की संपत्ती पर अधिकार हुआ करता था। महर्षी याज्ञवल्क की पत्नी मैत्रेयी एवं कात्यायनी इसके उदाहरण है। स्त्री लिखित उपलब्ध ऋचाएं हमे कानून निर्माण मे महिलाओं का योगदान एवं महिला अधिकार का एहसास कराती है।

वर्तमान भारतीय संस्कृति का मूलरूप यही वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता है। इस सभ्यता के निर्माण में पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। तप, प्रतिभा, मेधा ये आत्मा के धर्म है, शरीर के नही ऐसा हम मानते है। अतःये दिव्य गुण स्त्री और पुरुष मे भेद नही करते। यही कारण है की वेदकाल मे मंत्रदृष्टा पुरुष ऋषियों के समान स्त्री ऋषी भी हुआ करती थी। शौनक ने स्त्री ऋषियों को मुनी, ब्रह्मवादीनी और ऋषी कहा है। शादी तक वेदाध्ययन करने वाली महिलाओं को साध्योद्वास कहते है। ऋग्वेद के दशम मंडल मे घोषा द्वारा रचित सुक्तों मे देवता अश्विनीद्वय से घोषा कहती है, 'जैसे पिता पुत्र को शिक्षण देता है, उसी प्रकार मुझे शिक्षण दो। (10/39/6) घोषा, भाई की बराबरी मे शिक्षा पाने का अधिकार मागती है। पति के संन्यास ग्रहण करने पर पत्नी का पति की संपत्ती पर अधिकार हुआ करता था। महर्षी याज्ञवल्क की पत्नी मैत्रेयी एवं कात्यायनी इसके उदाहरण है। स्त्री लिखित उपलब्ध ऋचाएं हमे कानून निर्माण मे महिलाओं का योगदान एवं महिला अधिकार का एहसास कराती है।

मध्ययुगीन भारत का अत्यंत अल्प इतिहास उपलब्ध है। राज व्यवहार मे रानियों ने अहम भूमिका निभाई है यह वहा स्पष्ट होता है। 'पांड्यवंशीय महिलाएं राज्यशासन में ध्यान देती थी और उचित निर्णय भी लेती थी' ऐसा मेगॅस्थेनीस ने लिखा है। अल्पवयीन बेटे के लिए सातवाहन राणी नागनिका शासन चलाती थी और वाकाटक राजपुत्र के लिए चंद्रगुप्त (द्वितीय) की बेटी प्रभावती भी राज्यव्यवस्था देखती थी। सातवी सदी मे गुजरात की रानी रूप सुंदरी ने पति राजशेखर की मृत्यु के पश्चात अपने अकेले बेटे का लालन पालन किया। अपने राज्य मे सुव्यवस्था रखने के लिए विशेष कानून बनाये थे तथा इस कार्य मे सहायता करने वाले वनवासी भिल्लों का सम्मान किया था। 150 से अधिक मध्ययुगीन महिला प्रशासक एवं विरांगनाओं का इतिहास आज हमने महिला कोश द्वारा उपलब्ध कराया है। ये सारी महिलाये अपने अधिकारों के प्रति सजग थी और अन्य महिलाओं को उनके हक दिलवाने मे अग्रेसर रही।

रुद्रम्मा - तेरहवी सदी मे, दक्षिण में काकतिय राजा प्रभावशाली माने जाते थे। राजा गणपती देव की महारानी से दो बेटिया थी। अन्य रानियों से पुत्र प्राप्ती होने पर भी राजा ने अपनी सबसे ज्येष्ठ संतान, जो की बेटी थी उसको अपना उत्तराधिकारी चुना। बडी बेटी रुद्रम्मा की तरह उसकी बहन गनपम्बा की बहुत अच्छी परवरिश की गयी थी। किसी राजपुत्र की तरह इन कन्याओं को भी शिक्षा दी गई थी। स्वयं राजाने रुद्रम्मा को शस्त्र चलाना सिखाया था। दोनो बहने बडी तेज थी। राजा ने रुद्रमा को राजगद्दी पर बिठाने का निर्णय कर 'रुद्रदेव' नाम से उसे उत्तराधिकारी घोषित किया। इसवी सन 1259 से इसी नाम से रुद्रम्मा राजनीति का हिस्सा रही। दुर्भाग्यवश रुद्रम्मा के पती वीरभद्र की असमय मृत्यु के कारण राजा गणपती देव के पश्चात 1262 मे रुद्रम्म ने राजगद्दी संभाली। रुद्रम्मादेवी को प्रारंभ से आपसी तथा बाहरी विरोधीयों का सामना करना पडा। 30 साल का लंबा शासन काल उन्हे मिला था। इस कार्यकाल मे रानी ने प्रजा हित पर अधिक ध्यान दिया। महिलाओं को बराबरी की शिक्षा तथा व्यवसाय मे भी समान हक दिलवाये।

राणी अबक्का (1544-1623) केवल सत्रह साल की आयु में अपने मामा तिरुमल राय के पश्चात उल्लाल की रानी घोषित कि गई बांगड प्रांत के राजा कामराया अर्स से शादी होते समय अबका रोज घोडे पर अपने कार्यक्षेत्र उल्लाल मे कारोबार देखकर शाम को ससुराल वापस जायेगी ऐसा निश्चित हुआ था। कामराया अर्स ने पोर्तुगीजों की मदद की और उन्हे मंगलोर किले मे आश्रय दिया, ये समझने के बाद रानी अपने सारे सौभाग्य अलंकार पति को वापस कर, उसे छोड़ के उल्लाल ही रहने लगी। जाती भेद, खाप पंचायत इन परंपराओं से त्रस्त समाज को अबक्का ने राहत दी। सनातन जैन संप्रदाय की एक लडकी मोगावीर जाती के मछुवारे को जीवनसाथी बनाना चाहती थी। तब उन्होने कानून बनाया की 'अंतरधर्मीय विवाह मे लडकी के लिए अपने माता पिता के धर्म

के रीति-रिवाज छोडना अनिवार्य नही होगा।' पूर्तुगाल के विरोध में हिंदुस्थानी राजाओ को इकठ्ठा करने का प्रयास रानी निरंतर कर रही थी। अरब देशों के साथ मे व्यापार भी बढाया। अस्सी साल की रानी पूर्तुगालियों को भारत से हटाने के लिए प्रयत्नशील रही। अष्टभुजा-अष्टावधानी भारतीय महिला की एक महत्वपूर्ण मिसाल है राणी अबक्का का चरित्र!

सत्रहवी सदी मे महाराष्ट्र मे छत्रपती शिवाजी महाराज ने हिंदवी स्वराज्य स्थापित किया शिवाजी की **माता जिजाबाई** उनके प्रेरणास्त्रोत रही। एक बालिका पर अत्याचार करनेवाले रांझा गाव के मुखिया को शिवाजी महाराज ने छोटी आयु में कडी से कडी सजा दी।इसी घटना से 'स्त्री को हमेशा संरक्षण देना और न्याय देना राजा का कर्तव्य है' यह जिजाबाई की सीख स्पष्ट होती है। हिंदवी स्वराज्य का एक प्रदेश, मालवा प्रांत में **अहिल्याबाई** ने 18 वी सदी मे प्रशासन किया और महिलाओं को न्याय दिलवाने के लिए अनेक कानून किये। स्वसंरक्षण एवं राष्ट्ररक्षण करने वाली महिला सेना तैयार की। जो पुने के पेशवा राघोबादादा के प्रचंड सेना के सामने आत्मविश्वास के साथ खडी रही थी। सदियों से महिलाओं पर होने वाले अन्याय व अत्याचार एक स्त्री होने के कारण संवेदनशील दृष्टी से, अहिल्याबाई देख- समज सकती थी। इसका प्रत्यय हमे 21 जून 1778 के विशेष कानून से होता है। उस समय निसंतान विधवा की संपत्ति सरकारी खजाने मे जमा करने का रिवाज था, क्यूँ की विधवा को बच्चा गोद लेने की कानूनी इजाजत नही थी। इस कानून के तहत विधवा स्त्री को बच्चा गोद लेने काअपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार अहिल्याबाई ने दिलवाया। विधवा को यह अधिकार देने वाली अहिल्याबाई उस समय की एकमात्र शासक रही।

महिलाओं के अधिकार रक्षा के कानून - उन्नीस वी सदी के प्रारंभ मे लगभग पुरे भारतपर अंग्रेजों ने कब्जा किया। प्रशासनिक कारोबार संभलने के लिए अंग्रेजों ने यहा नयी शिक्षा पद्धती विकसित की। आम महिलाए भी पढना-लिखना सीखे इसलिये 1848 मे पहिली भारतीय कन्या पाठशाला महात्मा फुलेजी ने महाराष्ट्र के पुणे में शुरू की। वहां अध्यापिका बनी उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले। वेदकालीन उपाध्याया तथा मध्ययुगीन अत्यल्प अध्यापकों के बाद पहली बार आधुनिक भारत मे भारतीय महिला, शिक्षिका बनकर पढाने लगी। नये परिवर्तन का प्रारंभ हुआ। बालविवाह के कारण भारतीय समाज मे अनेक बालविधवाएं भी थी। पत्नी के देहांत के बाद पुरुष शादी करते थे, लेकिन बाल विधवाओं को अत्यंत कठीन परिस्थिति मे जीवन बिताना पडता था। सावित्रीबाई ने 'विधवा पुनर्विवाह मंडळ' स्थापित करके वहां 1860 मे नर्मदा नामक विधवा का विवाह रचाया। इसी प्रकारका काम आंध्र प्रदेश के राजमहेंद्री मे वीरेशलिंगम पंतलू और उनकी पत्नी राज्यलक्ष्मी इन्होंने शुरू किया था। विधवाओं को पढाना, आत्मनिर्भर बनाना एवं उनका पुनर्विवाह करवाना यह काम इस दांपत्याने 1875 मे किया था। लडकी के

बालविवाह पर कानूनी पाबंदी लगाने के लिए तथा विवाह की आयु निश्चित करने के लिए मुंबई-पुणे से 2000 महिलाओं के हस्ताक्षर किया हुआ ज्ञापन मुंबई सरकार को भेजा गया। रमाबाई रानडे और काशीबाई कानिटकर इन दोनो ने हस्ताक्षर संकलन का काम किया। आगे सुरत मे भी विधवा महिलाओ ने एक अर्जी दाखल की। महिलाओं के प्रयत्नसे बिल पास हो गया और विवाह की आयु बढाई गई। महिलाओं के अधिकारों की मांग करते हुए, संघटित होकर महिलाओं ने प्रयत्न किये। महिलाओं के हक ध्यान में रखकर कानून बनते गये। महिलाओं को भी मतदान का अधिकार हो, स्थानिक स्वराज्य संस्थांओं में महिलाओं का सहभाग हो इसलिये 1917 से मार्गारेट कझिन्स प्रयत्नशील रही। साउथ बरो कमिटी को 800 महिलाओं ने मताधिकार कि मांग करते हुए एक निवेदन दिया। तीन दिवस बहस चलती रही, जिसमे विभिन्न धर्म की महिलाये उपस्थित थी। नये कानून बनेंगे तभी समाज मे स्त्री का दुय्यम दर्जा बदल कर वे समान अधिकार प्राप्त कर पायेगी। इस बात को ध्यान मे रख कर कानून निर्माण मे महिलाओं ने प्रयास किये। जनमत बनाया, हस्ताक्षर इकठ्ठा किये। प्रयासो के चलते अंत मी स्त्री पुरुषों को समान मताधिकार दिये गये। राजनीति और सामाजिक कार्य मे महिलाये अग्रेसर रही। मार्गारेट कजीन्स मद्रास विधानसभा की सदस्य बनने वाली प्रथम महिला रही। प्रथम पत्नी रहते हुए भी द्वितीय विवाह करने वाले पुरुषों के विरुद्ध महिलाये संघटित हुई, मोर्चे निकाले गये, सभाये हुई। कुमुदनी रांगणेकर जैसी महिलाओं ने उपन्यास तथा कथाए भी लिखी। परिणाम स्वरूप 1952-1955 मे **द्विभार्या प्रतिबंधक कानून** पारित हुआ। 17वी सदी के प्रारंभ मे मलबार मे उन्नीयार्चा की वीरकथा गाई जाती है। युद्ध शास्त्र निपुण उन्नीयार्चा ने गुंडो के यवननायक को अपने तलवार-युद्ध से पराभूत किया और पराभूत करने के बाद उससे वचन लिया की इस क्षेत्र में आगे किसी भी लडकी से छेडछानी नही होगी, तथा स्त्री सुरक्षा पर ध्यान दिया जायेगा। एक स्त्री महिला सुरक्षा के लिए कानून बना सकती है इसका यह एक उदाहरण। हर एक महिला उन्नीयार्चा जैसी स्वसंरक्षण क्षम बने इसलिये 1936 में लक्ष्मीबाई केळकर तथा वंदनीय मावशीजी ने 'राष्ट्र सेविका समिती' इस अखिल भारतीय संघटना की स्थापना की। यहां पर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के साथ उनका शारीरिक तथा बौद्धिक विकास भी हो यह ध्यान मे रखते हुए कार्यक्रम का आयोजन आज भी किया जाता है। महिलाए स्वतंत्र रूप से कोई भी काम कर सके, इसलिये उनको तयार करने के साथ, समाज मन भी जागृत करने का प्रयत्न स्वतंत्रता पूर्व काल की महिलाएं कर रही थी।

महिलाओं के अधिकारों का संरक्षण करणे का प्रयत्न हमेशा होता रहा। **समान काम- समान वेतन** यह महिलाओं का हक है इस मांग कोलेकर मुंबई के परेल इलाके के जेकब मिल की लगभग 400 महिलाओ ने 25 मार्च 1985 को काम करने से मना कर दिया था। परिणामतः महिलाओं के काम के घंटे तय किये गये यह हड़ताल सफल रही। स्वतंत्रता के पश्चात महिला मजदूरों को संविधान के तहत न्याय मिल गया।

दहेज के विरोध में इसवी सदी के प्रारंभ से ही महिलाये आवाज उठाती रही। सर्व भाषिक महिलालेखकों ने अपने कथा, उपन्यास तथा अन्य लेखन द्वारा यह विरोध स्पष्ट किया था। जिससे जनमत जागृत हुआ था। 1961 मे लोकसभा मे दहेज विरोधी बिल रखा गया। साथ मे पुरे देश मे महिला फेडरेशन ने आंदोलन छेडा। उसके बाद 1961 मे दहेज विरोधी कानून लोकसभा मे पास हो गया। रेणू चक्रवर्ती ने बादमे सुधारित बिल पेश किया। 1975 मे इसी विषयपर सुशीला आडीवरेकर ने सदन के सामने बिल रखा।1980 मे तीन बार Dowry restrained bill लोकसभा मे श्रीमती कृष्णा साही तथा प्रमिला दंडवते द्वारा रखा गया। उसके बाद 1986 मे और सुधार और सूचनाये लेकर मार्गारेट अलवाने दहेज संबंधी बिल पेश किया था। लोक जागृती, महिला अर्थार्जन और आंदोलन के कारण समयानुसार दहेज कानून मे बदलाव आता रहा।

हिंदू परंपरा मे तलाक को मान्यता नही है। 1930 से महिलाओं ने इस मसले पर आवाज उठाई। 1955 के हिंदू विवाह कानून के तहत सेक्शन 29(2) यह कानून बन गया। 1971 मे पुणे मे मुस्लिम सत्यशोधक मंडल और इंडियन सेक्युलर सोसायटी ने मिलकर मुस्लिम स्त्री परिषद बुलाई थी। बाद मे तलाक पीडित मुस्लिम महिला, तलाक विरोध मे प्रयत्न करती रही। लोकसभा मे २८ डिसेंबर 2017 मे तीन तलाक विरोधी कानून पारित हुंआ। जिसमे महिलाओं के प्रयत्न का बहुत बडा योगदान है। शराब बंदी पर कोई कानून नही है जब कि कई महिलायें पति के शराब की लत से आर्थिक तथा शारीरिक अत्याचार की शिकार बन जाती है। शराब के विरोध में आंध्र प्रदेश में,1990 से महिलाओं का आंदोलन शुरु हुआ और 1995 में शराब बंदी का कानून पारित हो गया।

भारतीय संविधान समिती की 15 महिला सदस्य, भारत के स्वातंत्र्य तथा भविष्य के प्रती सजग थी। भारतीय इतिहास, संस्कृति, परंपरा के साथ भारतीय सामाजिकता से वे परिचित थी। दुर्गाबाई देशमुख, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, हंसा मेहता से लेकर सारी बहनों का स्वातंत्र्य आंदोलन तथा समाज कार्य मे सालों तक सहभाग था। महिलाओं के प्रश्न के साथ न्यायव्यवस्था, धार्मिक स्वातंत्र्य, अल्पसंख्यक तथा पिछडे वर्गो के महिलाओं की समस्याएं, समान नागरी कानून, आदी विषयों पर महिलाओं ने समिती में विचार प्रकट किये थे और जो सुझाव दिये थे, उसका भी संविधान समिति ने गंभीरतापूर्वक विचार किया था। इसके कारण केवल 15 महिलाएं संविधान समिति मे होते हुए भी अंतिम निर्णय लेते समय इनकी रायपर जरूर विचार होता था। संविधान निर्माण मे महिलाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है संविधान से ही हमारे देश का कानून बना है। संविधान समिति की महिला सदस्यों का आदर्श सामने रखकर आज अधिकाधिक ज्ञानी एवं विविध क्षेत्र की महिलाएं राज्यसभा एवं लोकसभा में प्रतिभागी है।

राज्यसभा की महिला संसदों की क्षमता केवल राज्यसभा मे ही नही बल्की अन्य क्षेत्रों मे भी झलकती रही. राजकुमारी अमृत कौल, अम्मू स्वामीनाथन ये अखिल भारतीय महिला परिषद की संस्थापक सदस्य थी। राज्यसभा मे मनोनित सदस्य रहते हैं. यहा के अनेक सदस्य को पद्म पुरस्कार से गौरवानगीत किया गया है। इन कर्तृत्ववान महिला सदस्यों की सूची काफी लंबी है।1952 मे अधिकतर राज्यो मे निशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का नियम लागू किया तब राज्यसभा मे श्रीमती लक्ष्मी मेनन लडके और लडकियों के लिए यह धारा समान रूप से लागू की जायेगी क्या इस संबंधित प्रश्न उठाये। प्रारंभिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए भारतीय ने महिलाओं के लिए सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने का विषय उठाया। सीता परमानंद ने महिला तथा बाल संस्थांओं की अनुज्ञाप्ती पर सदन मे विधेयक प्रस्तुत किया था, याने महिला और बच्चों के इन्स्टिट्यूशन का रजिस्ट्रेशन होना अनिवार्य है।इस पर संसद मे बहुत चर्चा हुई और अंत में उसका कानून बना। परिवार नियोजन, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य संबंधित कुछ मुद्दे शकुंतलाजी परांजपे ने सदन मे उठाये। मातृत्व का अवकाश सभी क्षेत्र के महिलाओं के लिए अनिवार्य हो ऐसा उनका आग्रह था। परिणाम स्वरूप परिवार नियोजन केंद्र सरकार के स्वास्थ्य योजना का हिस्सा बन गया १९६४ मे शकुंतलाजी ने 'अक्षमों की नसबंदी' यह विधेयक का प्रस्ताव सदन मे रखा। बिल पर चर्चा हुई प्रारंभ में नकारात्मक प्रतिक्रिया आती रही चर्चा के अंत में सदन के उपाध्यक्ष श्री. अकबर अली खानने शकुंतला जी का गौरव करते हुए कहा की,'एक अत्यंत संवेदनशील तथा महत्वपूर्ण विषय सरकार को शकुंतलाजी ने अवगत कराया' परिवार नियोजन केवल जनसंख्या हे नियंत्रण हेतू नाही बल्की महिला स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। सामान्यतः कन्याप्राप्ती का उत्सव समाज मे नही मनाया जाता इसलिये जन्मपूर्व लिंग चिकित्सा प्रतिबंधक विधेयक चक्रवर्तीने सदन मे रखा। इस संबंधित आगे कानून बन गया। मॅरीड वुमन (प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स) बिल 1988 बिल, सहित अनेक विधेयक महिलाओ ने संसद मे रखे और उससे कानून भी बन गये। जैसे की कमिशन ऑफ सती बिल 1987 पर चर्चा मे इला भट ने अपने विचार प्रकट किये थे। 'सरकार गंभीरता से कदम उठाती तो राजस्थान के देवराला जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना नही होती' ऐसा बताया। कृष्णा कौल ने ही बिल को संपूर्ण समर्थन दिया। 'विधवा को संरक्षण मिले तथा पती की संपती पर उसका अधिकार हो, गरीब महिलाओं को सहाय्यता मिलनी चाहिये' ऐसे भी कहा गया। हमारे संविधान के अनुसार महिलाओं का विकास तथा उनकी स्थिति मे सुधार लाने के लिए राज्यसभा और लोकसभा की सदस्य होणे हमेशा प्रयत्न किये है।

संसदों को लॉ मेकर्स कहा जाता है। भारतीय सरकार के कार्यकारी अधिकार का निर्वहन केंद्रीय मंत्रिमंडळ द्वारा किया जाता है। इसमे कॅबिनेट मंत्री और राज्यमंत्री सम्मिलित होते है, जिनका नेतृत्व प्रधानमंत्री करते है। भारत की अब तक की एक मात्र

महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी धैर्य की मूर्ति थी। इंदिराजी ने अपने कार्यकाल मे शिक्षा के क्षेत्र में नयी योजनाएं बनाई। लडकियों के शिक्षा पर विशेष ध्यान रखा। गरिबी हटाव एवं 20 सूत्री कार्यक्रम की उनकी जनहित कल्पना पर आधारित नितियों मे महिलाओं के उन्नयन पर विशेष विचार किया था। सत्ता से हटने के न्यायाधीश आदेश को इंदिराजीने अमान्य करने की चेष्टा मे राजनैतिक जीवन का त्रुटिपूर्ण एवं गलत निर्णय लिया। संविधान की धारा 365 का प्रयोग करके सारे देश मे आपातकाल की घोषणा कर, सभी राजनैतिक विचार एवं कार्य पर रोक लगा दी। जनतंत्रते इस हनन से, उनकी छबी एक राजनैतिक व्यक्ती से बदल कर तानाशाह मे रूपांतरित हो गई। 1975 से 1977 तक के काल मी जनतंत्र, वैचारिक स्वातंत्र्य, सभी पर बुरा आघात हुआ। न्याय पालिका का स्वातंत्र्य खतरें मे पड गया। यह कार्यवाही संविधान द्वारा बनाये गये उद्घोषण के साथ का खिलवाड है। अपितु इंदिरा गांधीजी एक राजनीतिज्ञ, एक कूटनीतिज्ञ, एक संसद के रूप मे इस देश के लिए बहुत कुछ कर गयी।

भारत सरकार के पहले कॅबिनेट मे राजकुमारी अमृत कौर को स्वास्थ्य मंत्रीपद देकर एक महिला को का सन्मान किया गया।16 साल तक राजकुमारी जी, महात्मा जी की सहायक रही थी और संविधान समिती की सदस्य भी थी। स्वास्थ्य मंत्री के नाते आपने आय.आय. एम., रेड क्रॉस सोसायटी, इंडियन नर्सिंग कौन्सिल, ऐसे महत्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत करके संबंधित कानून बनाने मे बडा योगदान दिया है। पश्चात अनेक वर्षों तक महिलाओं का कॅबिनेट मे कोई प्रतिनिधित्व नही दिखाई दिया था। महिलाओं को मानव संसाधन विकास संबंधित विषय और खेल राज्यमंत्री तथा महिला एवम बाल विकास मंत्री, जैसे नियुक्त किया जाता रहा। सुषमा स्वराज जी वाजपेयी जी की प्रथम मंत्री परिषद मे सूचना एवं प्रसारण मंत्री रही। एन.डी.ए. सरकार ने महिलाओं के सशक्तीकरण पर बातचीत की और 16वी लोकसभा में प्रधानमंत्री मोदी जी के मंत्रिमंडल मे छः महिलाएं रही। मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री के नाते सुमित्राताई महाजन ने घरेलू हिंसाचार से महिलाओं का संरक्षण विधेयक 8 मार्च 2002 को किया था यह कानून 2005 मे बन गया। विधेयकों पर चर्चा करने वाली अपने विचारों को अध्ययन पूर्ण तथा आग्रह पूर्वक रखने वाली सभी महिला सांसदों का कानून निर्माण मे उतना ही योगदान है जितना मंत्रियों का यह ध्यान मे रखते हुए बिलों पर संसद मे हुई चर्चा लोकसभा ग्रंथालय मे उपलब्ध है।

स्वतंत्र भारत मे महिलाओं ने अनेक प्रतिष्ठित एवम महत्वपूर्ण पदों का कार्यभार संभाला है। आजादी के बाद सत्रह महिलाये मुख्यमंत्री बनी। कुछ महिलायें एक से अधिक बार मुख्यमंत्री पद पर चुनी गई। अपने अपने राज्य मे इन्होने सुशासन, विकास, कानून और सुव्यवस्था का कार्य बखुबी निभाया है। भारत की प्रथम महिला

मुख्यमंत्री, सुचेता कृपलानी, राष्ट्रध्वज समिती एवं अस्थाई संसद की भी सदस्या थी। तमिलनाडु की जयललिता जी चार बार मुख्यमंत्री बनी। मुख्यमंत्री बनने के पश्चात आपने सस्ती शराब की सारी दुकाने बंद करवा दी। देसी शराब निर्मिती पर अनेक कानून लगाये। शराबी घरों के कारण महिलाओं को मारपीट के साथ अनेक समस्याओं को सहना पडता था, ये ध्यान मे रखते हुए आर्थिक नुकसान सहकर शराब बंदी का कदम ललिता जी ने उठाया और महिलाओं का जीवन सुखकर बनाया। वंचित महिलाओं का राजनीति मे सन्मानपूर्वक प्रवेश करवाया। पाचवी कक्षा तक सरकारी पाठशालाओं मे केवल महिला अध्यापकों की नियुक्ती को अपने अनिवार्य किया। सालाना 12000 से कम आय वाले अभिभावकों की लडकिया स्नातक परीक्षा तक निःशुल्क शिक्षा ले सकेंगे ऐसा कानून बनाया और लडकियों को प्रशिक्षण तथा रोजगार देने वाले लघु उद्योगों को बढावा दिया। सभी महिला मुख्यमंत्रीयों ने महिला विकास पर काफी चिंतन किया और अनेक योजनाएं तथा कानून बनवाएं। महिला राज्यपाल भी महिला विकास के प्रति सतर्क रही।

कानून बनाते समय न्यायालयों के निर्णयों का भी गंभीरतापूर्वक विचार होता है। इस संबंध मे सर्वोच्च न्यायालय की निवृत्त न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर जी के विचार बहुत मार्गदर्शक है। कानून बनाने वाले लोकप्रतिनिधीयों को समय समय पर न्यायमूर्ती के निर्णय का अध्ययन करने की आवश्यकता है। कोर्ट गाईडलाईन्स का विचार सरकारी नितीया बनाते समय होना आवश्यक है ऐसी उनकी मान्यता है। कार्यस्थल मे महिलाओं के साथ अनुचित व्यवहार ना हो, इसलिये कार्यस्थल पर एक संशोधन कमिटी रहे जिसमे महिलाओं की संख्या पुरुषों के बराबर हो तथा इसके अध्यक्ष महिला हो। स्त्री पुरुष समानता के आंतरराष्ट्रीय संकेतानुसार सुजाता जी ने विशाखा अँड अदर्स वर्सेस स्टेट ऑफ राजस्थान अँड अदर्स का निर्णय दिया था। आगे चलकर 2018 मे यह कानून बना। The sexual harassment of women at workplace (prevention, prohibition, redressal) act 2013 यह कानून बनने मे न्यायमूर्ति सुजाता मनोहरजी के निर्णय ने अहम भूमिका निभाई है। न्यायमूर्तीने लोकमत जानना जरुरी है। पर निर्णय लेते समय संतुलित रहना आवश्यक है। यह बताते समय सुजाता जी ने स्पष्ट किया की तलाक के मामलों मे बच्चों की कस्टडी- अभीरक्षा से संबंधित निर्णय देते समय यह सोचना आवश्यक है कि उसकी मां आर्थिक तौर आत्मनिर्भर होनी चाहिये। तलाक मे पत्नी को जो निर्वाहनिधी (Alimony) पती के द्वारा दिया जाता है उसमे बदलाव आवश्यक है। न्यायाधीश कानून नही बनाते है मगर कानून को परखना उसका निरीक्षण करना यह न्यायाधीश का काम होता है।

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिये आज भारत सरकारने एक स्वतंत्र व्यवस्था की है। जिससे पीडित महिलाओं को मानसिक आधार मिलता है। अति प्राचीन काल मे भारत मे स्त्री की बुद्धी एवं शक्ति का आदर होता था। उस समय भी महिला

अपनी क्षमता तथा व्यक्तित्व के प्रती सजग थी। ई. सा.के प्रारंभ कालीन १०१५ सदियों मे महिला प्रशासक ने पती निधन के बाद राजकाज देखती थी। भारतपर निरंतर बाहरी आक्रमण होते रहे तब भी प्रशासक महिलाए तथा रानीयां डटकर खडी रही। महिलाओं के संरक्षण का विचार किया। नारी सेना खडी की। मध्ययुगीन भारत मे महिलाओंको न्याय्य अधिकार दिलवाने के लिये महिलाओ ने भी प्रयास किये है। आधुनिक भारत मे १९ वी सदी के अंत से महिला प्रश्नोको लेकर महिलाए इकठ्ठा हुई। आंदोलन छेडे।पैतृक संपत्ति में कन्या और पुत्र दोनो को समान अधिकार मिले इस के लिये १९२३ से महिलाए जोर देती रही।संविधान निर्मिती मे सहभागी होकर महिलाओं की समस्याएं सबको अवगत करायी। पंतप्रधान. मुख्यमंत्री एवं मंत्री पद निभाते समय महिलाओं की प्रगतिपर विशेष ध्यान दिया। सांसद महिलाए भी महिला प्रश्नोंसे से अधिक जुडी रही। अश्लील चित्र प्रदर्शन, अवैध मानव तस्करी, पर्यावरण, एड जैसे दुर्धर रोग ऐसी अनेक समस्याओ का स्त्रीजिवन से नजदिकी संबंध है। संबंधित विषयोपर कानून बने इसलिये आज की महिलाए प्रयत्नशील है। स्त्री बलवान शीलवान तथा चारित्र्य वान बने इसलिये स्त्री संघटन काम कर रही है। स्त्री मुक्ती से अधिक स्त्री शक्ति जागरण का महत्व भारतीय मानते है। उसी रास्ते से महिलाओ का कार्य चल रहा है। स्त्री के अधिकारो की रक्षा मे महिलाओ निर्मित कानून का विशेष महत्व है।

*****

मानसिक स्वास्थ्य सेवा की पहुंच: मानवतावाद से मानव अधिकार तक

प्रोफेसर (डॉ.) निमेश जी देसाई*

मानसिक स्वास्थ्य सेवा की पहुंच और मानव अधिकारों के संरक्षण तथा संवर्धन के बीच का संबंध मूल रूप से संतुलन की आवश्यकता रखता है। यह संतुलन गंभीर मानसिक विकारों (SMD) वाले व्यक्तियों के लिए और भी सूक्ष्म तथा संवेदनशील हो जाता है। इस समूह में उन मानसिक बीमारियों को शामिल किया जाता है जिन्हें पहले मनोविकृति (Psychoses) कहा जाता था, जैसे सिज़ोफ्रेनिया और बाइपोलर विकार। इस प्रकार के मानसिक विकारों से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः गंभीर व्यवहारगत अव्यवस्थाओं का सामना करते हैं और उपचार की आवश्यकता के प्रति उनकी समझ कम होती है, साथ ही यदि उनके साथ किसी तरह की वंचना या गंभीर दुर्व्यवहार हो रहा हो तो वे अपनी आवाज उठाने में भी सक्षम नहीं होते। कई अन्य प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में, व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने की एक अर्थपूर्ण स्थिति बनी रहती है, जिसके कारण बाहरी निगरानी की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है। गंभीर मानसिक विकारों वाले व्यक्तियों को सेवाएँ प्रदान करते समय मानव अधिकारों के उल्लंघन की आशंका अधिक होती है एक ओर मानसिक अक्षमता की प्रकृति के कारण, और दूसरी ओर इसलिए कि ऐतिहासिक रूप से "मानसिक अस्पतालों" सहित कई अन्य संस्थागत व्यवस्थाओं में ऐसे उल्लंघन और बुनियादी अधिकारों के दुरुपयोग की दर्दनाक वास्तविकताएँ मौजूद रही हैं। सच यह है कि समाज के किसी भी हिस्से में किसी भी संवेदनशील समूह के साथ अधिकारों का उल्लंघन अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन स्थिति तब और भी अधिक

*मनोरोग विशेषज्ञ

निंदनीय हो जाती है जब सुरक्षा प्रदान करने वाले ही किसी न किसी रूप में उत्पीड़क बन जाते हैं।

पुराने प्रकार के निगरानी आधारित मानसिक अस्पतालों को अधिक संवेदनशील एवं देखभाल-उन्मुख मानसिक स्वास्थ्य सेवा केंद्रों में बदलने का कार्य, दशकों से जन-सक्रियता और न्यायिक हस्तक्षेप के कारण संभव हुआ है, जिसमें 1993 में स्थापना के बाद से राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन मानसिक अस्पतालों में सुधार के साथ-साथ, विश्वभर में, भारत सहित, गम्भीर मानसिक विकारों वाले व्यक्तियों की संवेदनशील देखभाल हेतु मानवीय सुधारों की एक धीमी लेकिन स्पष्ट प्रगति हुई है। परंपरागत संस्कृतियों में, और संभवतः दक्षिण एशिया में और भी अधिक, ऐसे व्यक्तियों की देखभाल परिवार और पड़ोस जैसी छोटी सामुदायिक संरचनाओं में होती थी। सामान्य रूप से, गम्भीर मानसिक विकारों वाले व्यक्तियों की परिवार तथा समुदाय आधारित देखभाल मानवतावाद, करुणा और सहानुभूति जैसे मूल्यों पर आधारित हुआ करती थी। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में हुए उच्च गुणवत्ता वाले अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान में ज्ञात हुआ कि सिज़ोफ्रेनिया जैसी गंभीर बीमारियों का सामाजिक परिणाम “अविकसित” या “विकासशील” देशों में, “विकसित” देशों की तुलना में बेहतर था, जबकि विकसित देशों में आधुनिक उपचार सुविधाएँ अधिक उपलब्ध थीं। इस प्रवृत्ति का कारण इन विकासशील एवं पारंपरिक समाजों में परिवार और सामाजिक समर्थन प्रणालियों की मजबूती को माना गया। इन मूल्यों का क्षरण और बदलती सामाजिक सोच ने परिवारों में रह रहे ऐसे व्यक्तियों की देखभाल की गुणवत्ता को भी प्रभावित किया है। विश्वभर में मानव समाजों की बदलती प्रकृति तथा भारत और दक्षिण एशिया में इस परिवर्तन की तीव्र गति ने अधिक संख्या में ऐसे व्यक्तियों को सड़कों पर ला दिया है, जिससे बेघर मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों की समस्या और गंभीर हो गई है। बेघर मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के लिए सामुदायिक आधारित कार्यक्रमों के कुछ उत्साहजनक उदाहरण अवश्य हैं लेकिन आवश्यकता की विशालता और उपलब्ध सेवाओं के बीच का अंतर अभी भी बहुत बड़ा है।

मानसिक बीमारी वाले व्यक्तियों (PMIs) के मानव अधिकारों के उल्लंघन का यह पैटर्न, तथा स्वास्थ्य लाभ कर रहे या स्वस्थ हो चुके व्यक्तियों के साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाला भेदभाव इन दोनों ने मिलकर मानसिक बीमारी से संबंधित दिव्यांगता को दिव्यांगता ओं के समूह में शामिल करने का समर्थन किया। इस समावेश का उद्देश्य और प्रयोजन निश्चित रूप से मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकना और व्यापक रूप से प्रचलित भेदभाव के विरुद्ध सकारात्मक संरक्षण प्रदान करना था। पिछले कुछ दशकों में गम्भीर मानसिक विकारों के उपचार में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, जिससे स्थायी दिव्यांगता वाले व्यक्तियों का अनुपात कम हुआ है और फिर भी दिव्यांग

व्यक्तियों के लिए सभी प्रावधान अब भी लागू रहते हैं। सबसे बुनियादी मानव अधिकारों में से एक है व्यक्ति को अपने लिए चुनाव की स्वतंत्रता देना, जिसमें उपचार को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार, या किसी भी प्रकार की सहायता के लिए स्वयं निर्णय लेने का अधिकार शामिल है। अधिकार-आधारित यह दृष्टिकोण विश्व के पश्चिमी हिस्सों से उत्पन्न हुआ जहाँ परिवारों या सामाजिक एजेंसियों की मूलतः सहायक और सौम्य भूमिका समय के साथ संदिग्ध होती गई है, और व्यक्ति की अपने लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता सर्वोपरि मानी जाने लगी है। अपने लिए निर्णय लेने के व्यक्तिगत अधिकार की उपयोगिता विश्व के सभी हिस्सों पर लागू होने की तर्कसंगतता अवश्य प्रस्तुत की जा सकती है, परंतु यह मूलतः यूरो-अमेरिकी संदर्भ में पाई जाने वाली व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि पर आधारित है, जो अफ्रीकी-एशियाई संदर्भ समष्टिवादी प्रवृत्तियों से भिन्न है।

हाशिए पर मौजूद और/या दिव्यांग आबादी के लिए सेवाओं के ढांचे में, पहले के सामाजिक मूल्यों पर आधारित मानवतावादी मॉडल से एक अधिक कानूनी रूप से स्थापित मानव अधिकार आधारित मॉडल की ओर बदलाव आया है। मानवीय अस्तित्व का यह "कानूनीकरण" इतना स्पष्ट है कि इसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। यह परिवर्तन 21वीं सदी में मानव जीवन के बड़े बदलाव की प्रक्रिया का हिस्सा भी माना जा सकता है, जिसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि सामाजिक मूल्यों द्वारा संचालित मानवतावादी देखभाल मॉडल, उल्लंघन या भेदभाव का सामना करने वालों के लिए पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने में विफल या अपर्याप्त साबित हुआ और इसलिए कानूनी या न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ी। बदलते सामाजिक ढांचे के संदर्भ में कानूनी रूप से न्यायसंगत देखभाल मॉडलों की उपयोगिता और लाभों पर कोई संदेह नहीं है। परंपरागत मानवतावादी देखभाल मॉडल से समकालीन, क़ानूनी रूप से कठोर मानव अधिकार आधारित ढांचे की ओर इस बड़े परिवर्तन की वैश्विक आवश्यकता और प्रासंगिकता को लेकर, विशेषकर गंभीर मानसिक विकारों वाले व्यक्तियों के परिवार आधारित देखभालकर्ताओं के दृष्टिकोण से कुछ सक्रिय बहस भी उभर रही है।

इसी प्रकार, 21वीं सदी की समकालीन दुनिया में जहाँ अधिकांश गंभीर मानसिक स्वास्थ्य विकारों के लिए प्रभावी और कम लागत वाली उपचार विधियाँ उपलब्ध हैं–अक्सर अस्पताल में भर्ती किए बिना वहीं ऐसे गंभीर मानसिक विकारों से प्रभावित व्यक्तियों को उपचार सुविधाओं तक पहुँचाना अब भी एक चुनौती है। इस चुनौती का समाधान मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों, पुलिस, न्यायालयों तथा सरकार के आउटरीच कार्यक्रमों की सक्रिय भागीदारी से ही संभव है। मानव अधिकार ढाँचे से जुड़े कानूनी मुद्दों का पालन कई हितधारकों–विशेष रूप से परिवार-आधारित देखभालकर्ताओं और मनोचिकित्सकों को बोझिल या कभी-कभी निरुत्साहित करने वाला प्रतीत हो सकता है। उम्मीद की जा सकती है कि समय के साथ

ऐसे अधिक उपयुक्त मॉडल विकसित होंगे, जो कानूनी दायित्वों के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों को ध्यान में रखेंगे और व्यवहार में अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। तब तक, यह सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रयास किए जाने चाहिए कि कानूनी प्रावधान और दायित्व गंभीर मानसिक स्वास्थ्य विकारों के लिए उपचार-अंतराल (Treatment Gap) को कम करने के बड़े लक्ष्य पर प्रतिकूल प्रभाव न डालें, विशेष रूप से उन स्थितियों में जहाँ प्रभावित व्यक्ति अक्सर सहयोग नहीं करते या उपचार के लिए जाने का विरोध भी करते हैं।

सामान्य मानसिक विकारों (CMD) जैसे अवसाद और चिंता विकारों के लिए उपचार सेवाओं तक पहुँच के रास्ते अपेक्षाकृत कम कानूनी और प्रक्रियात्मक बाधाओं से भरे होते हैं, लेकिन सहायता लेने से जुड़ी कलंक की भावना, जागरूकता की कमी और सशक्तिकरण की अनुपस्थिति के कारण उपचार-अंतराल (ट्रीटमेंट गैप) बहुत अधिक बना रहता है। मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के लिए सहायता या उपचार लेने के संबंध में मौजूद कलंक पिछले कुछ दशकों में–विशेष रूप से हालिया कोविड महामारी के बाद कम हुआ है, और फिर भी इसे दूर करने की आवश्यकता बनी हुई है। अतः कलंक कम करने के लिए अनेक और बार-बार चलाए जाने वाले कार्यक्रम अब भी आवश्यक हैं, जिनमें सरकारी एजेंसियाँ, संबंधित पेशेवर, गैर-सरकारी संगठन, मीडिया तथा मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोगकर्ताओं और देखभालकर्ताओं के समूह शामिल हों। इसके अतिरिक्त, शहरी, अर्ध-शहरी और ग्रामीण आबादी के विभिन्न समूहों के लिए उपयुक्त और सही जानकारी उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है, ताकि वे मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए उपलब्ध विकल्पों में से अपने लिए सही चुनाव कर सकें। यह दुखद तथ्य है कि अवसाद और चिंता जैसे इन दैनिक सामान्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के लिए कम लागत वाले प्रभावी उपचार उपलब्ध होने के बावजूद, व्यक्ति और परिवार अब भी पीड़ित रहते हैं लोक स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण की व्यापक पहलों में शामिल सभी लोगों के लिए अत्यंत गंभीर चिंता का विषय है।

उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञान से लाभ उठाने वाले सभी लोगों तक मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाने के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं में, बुजुर्गों, दिव्यांग व्यक्तियों, सड़क पर रहने वाले बच्चों, हाशिए पर मौजूद महिलाओं, तथा जातीय हिंसा या जबरन आंतरिक विस्थापन के शिकार लोगों जैसी संवेदनशील आबादी पर विशेष ध्यान देना भी शामिल होना चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य, स्वास्थ्य का ही एक हिस्सा है–उससे अलग नहीं। इसके अलावा, मानसिक स्वास्थ्य देखभाल एक अधिकार है, जैसा कि 2017 के नए मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम की धारा 18 में प्रावधान किया गया है, जिसका क्रियान्वयन 2018 से शुरू हुआ है और फिर भी व्यवहारिक रूप से इसका पर्याप्त

कार्यान्वयन अभी दूर है। अंततः, भारत के संविधान का अनुच्छेद 21, जो जीवन के अधिकार को प्रदान करता है, को सही रूप से "गरिमा के साथ जीवन के अधिकार" तक विस्तारित किया गया है और यदि मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो और उसे यथासंभव पुनर्स्थापित न किया जाए, तो मानवीय अस्तित्व में गरिमा का होना संभव ही नहीं है।

इसी कारण, सभी उपलब्ध रणनीतियों को लागू करना होगा और नई दिशाएँ भी पहचाननी होंगी, ताकि मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ उन सभी लोगों तक पहुँच सकें जिन्हें उनकी आवश्यकता है, और यह प्रक्रिया यथासंभव सरल और सुगम हो सके। यह दुविधा शायद सबसे तीव्र तब होती है जब उपचार सेवाओं को एक अधिकार के रूप में सुनिश्चित करना हो, और साथ ही यह भी सुनिश्चित करना हो कि सभी मानव अधिकारों की रक्षा हो। भारत जैसे देशों में यह संभव होना चाहिए कि मानव अधिकारों के ढाँचे को ऐसे तरीकों से लागू किया जाए जो मानसिक स्वास्थ्य देखभाल को भी प्रोत्साहित करें।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

बाल अधिकार: मानव अधिकारों का विशेष और विस्तृत रूप

डॉ. शुचिता चतुर्वेदी*

मानव अधिकार और बाल अधिकार में एक गहरा और अभिन्न संबंध है। बाल अधिकार वास्तव में मानव अधिकारों का ही एक विशेष और विस्तृत रूप है। प्रगतिशील भारत में जहां एक तरफ सतत विकास महिला अधिकार, पर्यावरण संरक्षण जैसे ज्वलंत मुद्दों से देखा जा रहा है वहीं मानव अधिकार और बाल अधिकारों के मुद्दे भी बहस का विषय बने हुए है। भारत देश विश्व का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश है। भावी पीढ़ी के लालन-पालन और शिक्षा से ही देश का भविष्य तय होना है। भारत में बच्चों की जनसंख्या कुल आबादी का लगभग 39 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या 47.2 करोड़ है जिसमें करीब 22.5 करोड़ लड़कियां तथा 0 से 6 वर्ष के बच्चों के संख्या करीब 16 करोड़ है अर्थात भारत बाल जनसंख्या के मामले में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है।

पारंपरिक तौर देखा जाए तो हमारे समाज में बच्चों के अधिकारों को स्पष्टता से नहीं समझा जाता। परिवार के छोटे सदस्य होने के नाते उन पर परिवार के नियंत्रण को मान्यता दी जाती है, अक्सर इस नियंत्रण के चलते परिवार के लोग खानदान की हैसियत और सामाजिक रीति-रिवाज के मुताबिक उनकी शिक्षा, देखरेख, दण्ड,व्यवसाय, शादी आदि को तय करते हैं, परंतु पारंपरिक सोच से हटकर भारतीय संविधान और अंतरराष्ट्रीय संविदा बच्चों को अधिकारों का हकदार मानती है। परिवार, स्कूल संस्थाओं और सरकार पर उनके हित को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी सौंपती है।

*पूर्व सदस्य, उत्तर प्रदेश, बाल अधिकार संरक्षण आयोग

इसी के क्रम में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ बाल अधिकार सम्मेलन जहां इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है वहीं राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संविधान के अनुछेद 21(क), अनुच्छेद 39 (च) ,अनुच्छेद 45, आदि इसके उदाहरण हैं।
भारत में बच्चों के अधिकारों की रक्षा और उनके कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए कई महत्वपूर्ण कानूनी प्रावधान किए गए हैं, जिनमें संवैधानिक प्रावधान और विशेष अधिनियम दोनों शामिल हैं:

I. संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

भारतीय संविधान कई मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से बच्चों के संरक्षण को सुनिश्चित करता है:
अनुच्छेद 15(3): राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है।

अनुच्छेद 21 : जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, जिसमें स्वस्थ विकास का अधिकार भी निहित है।

अनुच्छेद 21(क) : शिक्षा का मौलिक अधिकार - राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। (इसे 86वें संविधान संशोधन, 2002 द्वारा जोड़ा गया)।

अनुच्छेद 24 : बाल श्रम पर रोक - 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी भी कारखाने या खान में या अन्य किसी खतरनाक कार्य में नियोजित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 39(ङ) और (च) राज्य को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देता है कि बच्चों के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न हो, तथा उन्हें स्वस्थ तरीके से विकसित होने के अवसर और सुविधाएं मिलें और वे शोषण से सुरक्षित रहें।

अनुच्छेद 45: राज्य 0 से 6 वर्ष के बच्चों की प्रारंभिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 51ए (क) : माता-पिता या संरक्षक का मौलिक कर्तव्य है कि वे अपने 6 से 14 वर्ष तक के बच्चे को शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

II. विशेष अधिनियम और कानून

बच्चों को शोषण, दुर्व्यवहार और उपेक्षा से बचाने के लिए कई विशेष कानून बनाए गए हैं:

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (Juvenile Justice(Care & Protection of Children) Act, 2015

यह अधिनियम 18 वर्ष से कम आयु के सभी व्यक्तियों पर लागू होता है।

इसका उद्देश्य विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चों और देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों के लिए कल्याणकारी और सुधारात्मक न्याय प्रणाली प्रदान करना है। यह बच्चों की देखभाल, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करता है।

बालकों को लैंगिक अपराधों से संरक्षण अधिनियम, 2012 (POCSO Act, 2012)

यह अधिनियम बच्चों को यौन उत्पीड़न, यौन शोषण और अश्लील साहित्य जैसे अपराधों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक मजबूत कानूनी ढाँचा प्रदान करता है। यह कानून लिंग तटस्थ है अर्थात बालिकाओं व बालकों पर समान रूप से लागू है तथा बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है। अतः यह लैंगिक समानता पर आधारित है और बच्चो के मामलों को ध्यान में रखते हुए विशेष न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान करता है ताकि ऐसे मामलों की सुनवाई जल्दी और बाल-मैत्रीपूर्ण माहौल में हो सके।

बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (RTE Act, 2009)

यह अधिनियम 6 से 14 वर्ष के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में लागू करता है।

यह सुनिश्चित करता है कि सभी सरकारी स्कूल मुफ्त शिक्षा प्रदान करें, और निजी स्कूलों में कमजोर वर्गों के लिए कम से कम 25% सीटें आरक्षित हों।

बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 (Child & Adolescent Labour (Prohibition Regulation) Act 1986)

यह अधिनियम 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में काम करने से रोकता है।

2016 के संशोधन के बाद, 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के किसी भी प्रकार के नियोजन पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया है (कुछ अपवादों के साथ, जैसे परिवार-

आधारित उद्यमों में स्कूल के बाद सहायता करना)।

14 से 18 वर्ष के किशोरों के लिए खतरनाक व्यवसायों में काम करना प्रतिबंधित है।

बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 (Prohibition of Child Marriage Act, 2006)

यह अधिनियम बाल विवाह को रोकने और अवैध घोषित करने का प्रावधान करता है।

इसके तहत विवाह के लिए कानूनी आयु लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष निर्धारित की गई है। जिससे बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास सही हो सके और वह परिपक्व होने पर अपने भावी जीवन के निर्णय लेने में सक्षम हो सकें।

III. राष्ट्रीय एवं राज्य निकाय

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग और राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग (NCPCR/SCPCR)

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (NCPCR) और राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग (SCPCRs) बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए वैधानिक निकाय हैं। यह आयोग बाल अधिकारों के उल्लंघन की जाँच करते हैं और कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन की निगरानी करते हैं तथा कानूनों व योजनाओं की कमी या उन्हें कैसे प्रभावी बनाया जाएं इसकी सलाह सरकार को देते हैं।

आयोगों के पास बाल अधिकारों से वंचित करने या उनके उल्लंघन से संबंधित शिकायतों की जाँच करने की शक्ति है। वे बालकों के संरक्षण तथा विकास के लिए कानूनों के क्रियान्वयन न होने के मामलों का स्वतः संज्ञान (Suo Motu) भी ले सकते हैं । इसके अतिरिक्त, ये निकाय नीतिगत निर्णयों, दिशा-निर्देशों या निर्देशों का अनुपालन न होने पर उचित प्राधिकारियों के समक्ष मुद्दों को उठाते हैं। आयोग हाशिये पर पड़े बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु भागीदार संस्थाओं को सक्षम बनाने के लिए भी काम करते हैं ।

बाल अधिकार के अंतरराष्ट्रीय मानक: संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार सम्मेलन (United Nations Convention on the Rights of the Child (यूएनसीआरसी) एक अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार बाध्यकारी संधि है, जो बच्चों के नागरिक, राजनीतिक,

आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक अधिकारों को स्थापित करती है। यह संधि 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी मानव को "बच्चा" के रूप में परिभाषित करती है, जब तक कि राष्ट्रीय कानून के तहत वयस्कता की आयु पहले प्राप्त न हो जाए। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कन्वेंशन (UNCRC) जिसका भारत 11 दिसंबर 1992 में हस्ताक्षरकर्ता देश बना, भारत के बाल-केंद्रित विधानों और नीतियों की नींव रखता है। यह कन्वेंशन बाल अधिकारों को चार व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत करता है, जिन्हें सामूहिक रूप से बाल संरक्षण पारिस्थितिकी तंत्र के चार स्तंभ (The Four Pillars) के रूप में जाना जाता है।

उत्तरजीविता का अधिकार (Right to Survival)

इसमें बच्चे को जीने का मूलभूत अधिकार, स्वास्थ्य की उच्चतम संभव मानक प्राप्त करने का अधिकार, पोषण, आश्रय, और राष्ट्रीयता व नाम प्राप्त करने का अधिकार शामिल है।

विकास का अधिकार (Right to Development)

इसमें बच्चे को शिक्षा का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा, खेल और मनोरंजन का अधिकार, और उसकी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक क्षमताओं का पूर्ण विकास सुनिश्चित करने का अधिकार शामिल है।

संरक्षण का अधिकार (Right to Protection)

इसमें बच्चों को सभी प्रकार के दुर्व्यवहार, उपेक्षा, शोषण, हिंसा, बाल श्रम, तस्करी और सशस्त्र संघर्ष में शामिल होने से सुरक्षा का अधिकार शामिल है।

भागीदारी/सहभागिता का अधिकार (Right to Participation)

इसमें बच्चे को अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अधिकार और यह सुनिश्चित करना शामिल है कि उन विचारों को बच्चे की उम्र और परिपक्वता के अनुसार महत्व दिया जाए। साथ ही, विचार की स्वतंत्रता और सूचना प्राप्त करने का अधिकार भी इसी वर्ग में आता है।

नीतियों और कार्यक्रमों पर प्रभाव

राष्ट्रीय बाल नीति (National Policy for Children), 2013: यह नीति UNCRC के चार मुख्य श्रेणियों (उत्तरजीविता,विकास, संरक्षण एवं भागीदारी) को प्राथमिकता देती है। एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (ICDS) और राष्ट्रीय पोषण मिशन:

ये कार्यक्रम UNCRC के जीवन और विकास के अधिकार (पोषण और स्वास्थ्य) को सुनिश्चित करने पर केंद्रित हैं।

संक्षेप में, भारतीय संविधान और अंतरराष्ट्रीय संविदा ने भारत में बच्चों को एक निष्क्रिय लाभार्थी मानने के बजाय अधिकारों के धारक (Rights Holders) के रूप में मान्यता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत सरकार पर बच्चों के समस्त हितों की रक्षा करने और उन्हें हर प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करने का दायित्व संविधान और संयुक्त राष्ट्र संघ की संधियों से उभरता प्रतीत हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कन्वेंशन (UNCRC) में नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी प्रकार के मानव अधिकारों को शामिल करते हुए उन्हें बच्चों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।

इसमें बच्चों के लिए उत्तरजीविता और विकास का अधिकार, पहचान का अधिकार, दुर्व्यवहार और शोषण से सुरक्षा का अधिकार, संरक्षण और भागीदारी का अधिकार जैसे कई महत्वपूर्ण अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं। बाल अधिकारों की प्रमुख विशेषता यह है कि बच्चों से संबंधित सभी कार्यों या निर्णयों में बच्चे का उत्तम हित (Best Interest of the Child) सर्वोपरि होना चाहिए। यह सिद्धांत बच्चों के अधिकारों को मानव अधिकारों के ढाँचे के भीतर एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान करता है।

*****

पर्यावरण एवं महिला

अरूणा सारस्वत*

पर्यावरण शब्द दो पदों के योग से बना है परि आवरण, परि का अर्थ है-चारों और आवरण का अर्थ है-आच्छादन। इस आधार पर पर्यावरण का सामान्य अर्थ "चारों ओर से व्याप्त रहने वाला भौतिक तत्वरूप आवरण"।

संसार का प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति को प्रेम करता है। भारतीयों का प्रकृति से संबंध माता और संतान का रहा है और मानव का सबसे गहन और आत्मीय संबंध अपनी माँ से होता है। पुत्र माँ से झगड़ता है, गुस्सा करता है, किंतु माँ यदि कष्ट में है तो संतान उसके कष्ट को दूर करने के लिए यथासंभव प्रयास करता है। यही कारण है कि हमारे ऋषिमुनियों ने अपने तपोमय स्वाध्याय के बल पर यह ज्ञात कर लिया था कि प्रकृति द्वारा स्थापित विधान के अंतर्गत कुछ भी निरर्थक नहीं है। ये मानवों के हितैषी है। अतः मानव को चाहिये कि वे इन पर्यावरणीय पदार्थों का यथोचित उपयोग करें और सदा ही इनके संरक्षण में निरत रहे। प्रश्न उठता है कि प्रकृति के विधान में क्या-क्या है सूर्य, हवा, जल, मिट्टी, वनस्पति और जीव-जन्तु आदि।

हमारे शीर्षक पर्यावरण और महिला महिला अर्थात् नारी।

नारी ईश्वर की अद्भूत कृति है, क्योंकि ईश्वर सबके पास नहीं पहुँच पाता इसलिए भगवान ने नारी की रचना की, जिसमें स्नहे, वात्सल्य आदि का समावेश किया। केवल यही नहीं उसे सप्तशक्ति सम्पन्ना बनाया। ये सात शक्तियाँ ही महिला को अपने

*राष्ट्रीय संरक्षक, भारतीय शिक्षण मंडल उज्जैन (म०प्र०)

चारों ओर के वातावरण में सामन्जस्य बैठाने में सहायता करती है। भारतीय संस्कृति में परिवार राष्ट्र की धुरी है और परिवार की धुरी महिला है। अर्थात् अपरोक्ष रूप से महिला ही राष्ट्र को उसकी प्रकृति से जोड़ने की कड़ी है। यही कड़ी संस्कृति को जीवंत रखने का कार्य दक्षता के साथ कर रही है। हमारे पूर्वजों ने वैज्ञानिक तथ्यों को धर्म के साथ जोडकर उसे जन सामान्य तक पहुँचाया और इसके पीछे उनकी मंशा पर्यावरण को सुरक्षित करना व प्रकृति में उपस्थित जीव-जंतुओं का पोषण भी है। वनस्पतियों को पर्यावरण के फेफड़े कहा गया है. जो वातावरण से दूषित वायु सोखकर प्राण वायु (ऑक्सीजन) का उत्सर्जन करते हैं। अतः वनस्पतियों या पौधों का संरक्षण करने का कार्य महिलायें करती हैं, जो धर्म से जुड़ा पीपल का वृक्ष सर्वाधिक प्राण वायु उत्सर्जित करता है। इसमें देवताओं (विष्णु) का वास है। अतः विभिन्न पर्वों जैसे अमावस्या, पूर्णिमा पर पीपल पर सुत्र (कलावा) बांधकर बता देती हैं कि ये हमारे पूज्य है। वटसावित्री व्रत पर महिलायें बरगद की पूजा करती हैं। कच्चा सुत लपेट देती हैं। इसी प्रकार कार्तिक मास में तुलसी का पूजन सभी महिलायें करती हैं। तुलसी के औषधीय गुणों से सभी परिचित है। ऑवला नवमी दीपावली के बाद आने वाली नवमी तिथि को ऑवले के वृक्ष का पूजन करती है। उस दिन परिवार के सभी लोगों को ऑवला खिलाती है। यहाँ तक कि श्रावण मास में नीम की शाखा को कजली तीज के समय पूजा जाता है और पत्ती खाना अनिवार्य होता है। इन सभी उदाहरणों से समझ में आता है कि महिलायें ही वृक्षों की सुरक्षा में अग्रणी है। इतना ही नहीं हमारे यहां दीपदान का बहुत अधिक महत्व है। दीपदान में महिलायें केले के पत्ते पर आटे का दिया रखती है और कुछ वृक्षों के बीज दिये के नीचे रख देती है और नदी में प्रवाहित कर देती है। दिया मछलियों के पोषण का काम करता है और बीज नदी में जल के साथ बह जाते हैं। जहां भी भूमि मिलती है वहीं अंकुरित हो जाते हैं। अश्विन मास (श्राद्धपक्ष) में हम कौवों को भोजन देकर पुष्ट करते हैं क्योंकि यही समय उनका प्रजनन काल होता है। कौवा हमारे पर्यावरण संरक्षण में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि केवल कौवा ही पीपल के बीजों का प्रकिर्णन करता है, इस कारण जगह-जगह पीपल के वृक्ष उगते हैं। अर्थात् ऑक्सीजन की फेक्ट्री तैयार करने में मदद करते हैं। इसी प्रकार नागों की सुरक्षा नागपंचमी पर होती है। केवल धर्म आधारित ही नहीं जहां आवश्यकता हुई वहां शक्ति का प्रदर्शन भी किया। राजस्थान की अमृता देवी को कौन भुला सकता है जिन्होंने जोधपुर के पास खेजडिया ग्राम के खेजडी के हरे भरे वृक्षों को बचाने हेतु अमृतादेवी विश्नोई के नेतृत्व में 363 लोगों ने पेड़ों से लिपट कर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, पर पेड़ों को कटने नहीं दिया। इसी प्रकार सुन्दरलाल बहुगुणा के चिपको आन्दोलन में गोरादेवी की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी। जल संरक्षण का संस्कार भी महिलायें ही बच्चों में रोपित करती, जितना चाहिए उतना ही जल ग्लास में ले. थाली में भोजन भी उतना ही लें जितना खा सकते हैं, भोजन को व्यर्थ नहीं करना। यदि हम छोटी सी सूची बनाये तो समझ में आयेगा कि महिलायें

कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है -

(1) आवश्यकता हो उतनी ही बिजली जलाये।

(2) बाथरूम (स्नानघर) में पानी का अनावश्यक उपयोग न करें समझाती हैं।

(3) फल व सब्जी के छिलके गाय को खिलाये, नहीं तो कम्पोस्ट बनाती है जिससे भूमि पुष्ट होती है।

(4) दीपावली पर मिट्टी के दिये जलाने के लिए प्रेरित करती है जिससे कार्बन उत्सर्जन कम होता है।

(5) परिवार में समरसता को बनाये रखती है।

(6) विभिन्न अवसरों पर यज्ञ (हवन) घर में करती है जिससे वायु शुद्ध होती है।

उपरोक्त वर्णन के अलावा एक और प्रदूषण है जिसे रोकना अत्यन्त आवश्यक है वह है विचारों का प्रदूषण। यह अन्य सभी की अपेक्षा अधिक खतरनाक है। इसको रोकने में महिला की भूमिका महत्वपूर्ण है। वही अपनी प्रारंभिक परवरिश में बच्चों को देश प्रेम राष्ट्र सर्वोपरि की शिक्षा देकर शिवाजी महाराज, भगतसिंह जैसी संतानों को गढ़ सकती है। सभी तथ्यों को जानने के बाद लगता है पर्यावरण, महिला इन विषयों में मानव अधिकार की बात कहाँ आती है तो यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि जब हम वनस्पतियों पेड़ों को जीवित मानते हैं, नदियों को माँ मानते हैं, पर्वतों को सहोदर व समुद्र को बाबा कहते हैं तो क्या इनके अपने कोई अधिकार नहीं है, क्या ये केवल दूसरों की भलाई के लिए है, तो जी हाँ इनके भी अपने अधिकार है- जीने का अधिकार, बढ़ने का अधिकार, स्वच्छता का अधिकार। इन सब अधिकारों की रक्षा में महिलाओं का योग हम लेख में देख चुके हैं।

आज के भौतिक युग में प्रत्येक व्यक्ति एक अंधी दौड़ में दौड़ रहा है जिसका कोई अंतिम लक्ष्य दिखायी नहीं देता। इस दौड़ का सबसे बुरा असर हमारे बच्चों के कोमल मन पर होता है क्योंकि हमारे परिवारों का पर्यावरण बिगड़ रहा है। परिवार में किसके पास समय नहीं है कि वे नन्हें मन की सुने और उनके मन को किसी ग्रंथी से ग्रसित न होने दे वरना शार्य पाटिल जैसे कई किशोर असमय इस दुनियों को अलविदा कह देंगे तो यहाँ भी महिला अर्थात् मों की जिम्मेदारी है कि सर्वप्रथम अपने परिवार के पर्यावरण को संभाले तभी उसके सारे प्रयास सार्थक होंगे। मैं आयोग से भी अपील करती हूँ कि इस दिशा में कोई अभियान अवश्य प्रारंभ करें और नन्हें फूलों की बगियों को अपने पूर्ण प्रभाव से खिलने दे। अंत में 5 तत्वों के लिये -

आकाशस्याधियो विष्णुश्ग्नैश्चैव महेश्वरी
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः

ये पांचों साक्षात् परमेश्वर के नित्य स्वरूप हैं। अतएव सनातन धर्म में पंच देवोंपासना तथा पंच महायज्ञों के पालन की अनिवार्यता बतायी गयी है। यही कारण है कि पंच तत्वों की स्थूल एवं सूक्ष्मरूप से शुद्धि सभी प्रकार से कल्याणकारी है। इन्हें पवित्र और दूषणरहित रखने पर न केवल पर्यावरण शुद्ध रहेगा अपितु व्यक्ति शरीर एवं मन से स्वस्थ तथा प्रसन्न रहेगा और उसकी आध्यात्मिक सम्पदा में भी अनुदित वृद्धि होगी।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

खंड-II

कविताएं

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

बचाकर रखो बंधुत्व

अरविन्द मिश्र*

ऐ बंधु शांति से रहो
तुम्हारे आतंक से दहल गई है मनुजता
हिल गई है धरती
तुम्हें मान्य नहीं प्रकृति का दिया पानी

रोक रहे नदियों का कल-कल रास्ता
सीमाओं में बाँध रहे जल
स्वीकार नहीं फलदार वृक्ष, सघन वन
रोप रहे चुभीली झाड़ियाँ

समाप्त कर रहे वन्य प्रदेश
कहाँ नाचेंगे मोर, कुलाचें मारेंगे हिरण
लुप्त होती जा रही पशु-पक्षियों की प्रजातियाँ
जनसंख्या के बोझ तले दब रही जमीं

जो हाथ एक बाल नहीं उगाते
वे भी खाने खड़े थाली भर भात
धूल, धुआँ, बदबू से पटे हैं आवासीय क्षेत्र
पता नहीं पड़ता हो जाती है सुबह

*कवि, लेखक, व्यंगकार

न पक्षियों का कलरव सुनाई देता
न भौरों का गुंजार, न गायों का रँभाना,
न पाट चरने जाते मवेशियों के गले की घंटियाँ
बस्स सुनाई देते पों-पों, पी-पी

और कारखानों के सायरन
भूल गए ग्राम्य जीवन
दूरियाँ इतनी बढ़ गईं
लोग नहीं जानते पड़ोसियों के नाम

तीज, त्योहार-सी खिंचती चेहरे की रेखाएँ
प्रकृति की विनाश लीला में ढेर हो रहे अहं, लोभ
नहीं बच पा रहा जीवन
अर्थ संग्रह बाद प्राप्त हो रहा अनर्थ

निर्बल-सा दुबका रहता धन, बल
सुनो बंधु ! कभी भी आ सकता भूकम्प, सुनामी
बचाकर रखो बंधुत्व, प्रेम, पेड़-पौधे, शुद्ध हवा,
आँखों में पानी और ओठों पर मुस्कान ।

*****

मिट्टी से जुड़ना जड़ों से जुड़ना है

अरविन्द मिश्र*

मिट्टी से जुड़ना जड़ों से जुड़ना है
न्यूटन के सिद्धांत की पुष्टि है

मिट्टी से परहेज मत करो
मिट्टी सहेजो

मिट्टी में सृजन है
मिट्टी संसार की जननी है

देखने में काली, लाल, पीली, सफेद
पर मिट्टी से सब रंग निकलते

सारे स्वाद हैं मिट्टी में
मिट्टी महाजननी है

मिट्टी सब कुछ सहती
भार सह संबल देती

*कवि, लेखक, व्यंगकार

जहाँ जाओ वहाँ मिट्टी
मिट्टी किसान का वजूद है

मिट्टी से वनस्पति, जीव-जंतु,
नदी, पहाड़, जंगल और हम सब हैं
मिट्टी में आत्मीय आलिंगन भाव है
जो संपर्क में आता संग हो लेती
जो सहेजता उसकी हो लेती।

*****

खंड-III

कहानियाँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

खिडकियाँ

-डॉ. वन्दना मिश्र*

सुर्ख पलाश के खिलने के साथ वसंत आया देख सारी खिड़कियाँ खोल दी थी मोहना ने। सरसराती हवा कमरे के वातावरण को आनंदित करने लगी।

बंद दरवाजे खिड़कियों से पूरे घर में सीलन की बदबू सी आने लगती है, इसलिए माँ अक्सर कहा करती थी -

"धूप आए तो दरवाजे खिड़कियों को खोल दिया करो घर की हवा शुद्ध हो जाती है।"

हवा के साथ मोंगरा -महुआ की महक घर के कोने-कोने का स्पर्श करने लगी। कुछ सोच ही रही थी कि यका-यक टेबिल पर रखी जिंदगी की किताब के पन्ने तेज हवा के आवेग से धड़ाधड़ पलट कर अतीत के गलियारों में घुस गये।

समय की डायरी में माँ की हर सीख करीने से लिख रखी थी। यह भी कि "बेटी पराया धन होती है और यह भी कि बेटी दो कुल की लाज होती है।"

दादी के सूत्र वाक्य भी सजे थे कि-

"माँ के घर से डोली उठती है और पति के घर से अर्थी..."

वक्त की करवटों ने जमाने को इतनी तेजी से बदला कि डायरी पर धूल की मोटी परतें जमा दी। लगा कि इसकी बातें मोहन जोदड़ो और हड़प्पा संस्कृति को संजोए हैं।

*प्रमुख - प्रज्ञा, प्रवाह महिला आयाम

विवाह कर विदा करते समय माँ ने रितिका से कहा था-

"बेटा ! अब से ससुराल ही तुम्हारा घर है, और उससे जुड़े हुए सारे रिश्ते तुम्हारे अपने हैं सबको आदर सम्मान देना और सबके दिलों पर राज करना।"

गले लगाते हुए यह भी समझाया था-

"बेटा ! हर माँ एक लम्बे इंतजार के बाद बहू पाती है इसलिए वह बेटे से ज्यादा बहू को प्यार करती है। लेकिन तुम्हारे अच्छे गुण ही उस प्यार को स्थायी बनाए रख सकते हैं। अन्यथा साल भर के भीतर ही सास-बहू की अनबन समाज में सुनाई देने लगती है।"

डायरी का हर पन्ना माँ की समझाईश से भरा हुआ था। लगता है माँ सामने से ही समझा रही हैं-

"बेटा ! सास को माँ जैसा सम्मान दोगी तो पति के दिल सहित पूरे घर का सम्मान मिलेगा । एक बात और समझ ले बेटा! दिल का रास्ता पेट से होकर जाता है। सब के दिलों पर राज करना है तो खाना अपने हाथ से बनाकर खिलाना और अच्छे से। जहाँ भी रहो ऐसे काम करो कि तुम्हारे बिना लोगों को घर में अच्छा ही न लगे। पूरे घर में अपने काम की छाप छोड़ दो। चाहतें बहुत करीब लातीं है बेटा!"

माँ की इस सीख को सजाकर डायरी में लिख लिया था। दिन-रात महिने -वर्ष गुजरते गये। इस अपने परिवार की जिम्मेदारी निभाते निभाते चालीस वर्ष हो गए हैं, पूरे चालीस। इन वर्षों में नौकरी घर-परिवार बच्चे की भागम-भाग में बहुत कुछ कमाया पर बहुत कुछ पीछे छूट गया ...। नदी- सी अनवरत् बहती रही... रेत के से कुछ कण चिपके हैं आज भी हाथ में। घर-गृहस्थी की उलझन ने यह चालीस साल हवा में उड़ा दिए से लगते हैं।

पापा रहे नहीं...

आज दो साल हो गये, पापा को गए हुए। माँ की तबीयत खराब है। भैया का फोन आया है, कह रहे थे कि -

"आकर मिल जाओ दो-चार दिन की छुटटी लेकर आना। फिर होली का त्योहार भी आने वाला है माँ को अच्छा लगेगा "

सोचा - "जाती हूँ माँ से मिलना भी हो जाएगा और भैया को होली का टीका भी लगा लूँगी । अपने हाथ से उसका अपना अलग ही सुख है।"

कुछ सुख होते ही ऐसे हैं कि उनके शब्दों का संसार नहीं होता, होता है तो बस एहसास। एहसास किए जाते हैं।

मायके जाने के पहले तैयारी करते ही मन में अनोखी हिलोर-सी उठने लगती है और रास्ते इतने लंबे कि समय सिकुड़ता-सा प्रतीत होता है। जाऊँगी... जरूर।

आज दो साल हो गये, पापा को गए हुए। पर किसी त्योहार पर भी जाना नहीं हो सका। अब जरूर जाऊँगी। माँ का बिसुरता चेहरा आँखों से सामने आ गया"बेटा अपना ध्यान रखना। और दोनों कुल की लाज रखना ।"

कल्पना में खो गयी रितिका अपने हाथ से भैया को दोज का टीका लगाने लगी मुँह से निकला भैया ! अचानक तंत्रा टूटी और जुट गयी तैयारी में भाई के घर जाना है।

हर त्योहार पर हर बार सोचती पर कभी जितेंद्र के आफिस का टाइम होता या खाना बनाने की व्यस्तता और आनन-फानन में फार्मेलिटी कर फोन तक काटना होता मम्मी का। सोचते आँखें भर-भर आ रही हैं रितिका की। पर क्यों ?

कहीं माँ ज्यादा बीमार तो नहीं? प्रश्नों की चकरघिन्नी से सिर घूम गया रितिका का।

हर बार कुछ न कुछ काम आ जाता और वह नहीं निकल पाती-

कभी बच्चों की पढ़ाई तो कभी सास का पूजा-पाठ। ससुर की दवाईयों और शाम होते ही सब का घर लौटना। किसी को चाय, किसी को नाश्ता, नहीं हो पाता माँ को फोन... भी ओफ। सिर पकड़ कर बैठ गयी...।

तभी माँ का फोन आ गया"आ जा बेटा समय निकाल कर। पता नहीं कितनी साँसें शेष हैं मेरी बेटा, हो सके तो आ जा।"

सब ठीक तो है बेटा। खाना खा लिया ? खा लिया करो, समय निकाल कर काम तो चलता ही रहता है। आज क्या-क्या बनाया है बच्चे कैसे हैं, जितेन्द्र और माताजी ?"

आँखों से आँसू गिरने लग गये रितिका के।

'फोन माताजी ने सुन लिया शायद। रितिका के आँसू भी देख लिए जिसे उसने छिपाकर बाहों से पोंछ लिए थे। यह भी सुन लिया कि माँ की तबियत खराब है रितिका को बुलाया है।'

माताजी ही तो कहते हैं सब रितिका की सासू माँ को। वह भी इसी संबोधन में मम्मी ढूँढने लगी थी। और हद तक पा भी लिया था।

हद तक इसलिए कि माताजी बेटी को बेटी और बहू को बहू मानती हैं। उनका साफ कहना है कि-

" बेटी घर की इज्जत होती है और बहू नाज..."

वह नाज बनाए हुए थी। शायद इसीलिए माताजी रितिका को बहुत प्यार करती थीं। फोन सुनते ही माताजी ने झटपट रितिका के जाने की तैयारी कर दी।

उसके भाई-भाभी, और बच्चों के लिए सौगात स्वरूप कुछ कपड़े, सामान नारियल मँगा कर रख दिया और जितेन्द्र से कहा-

"जा... इसे दो चार दिन कानपुर घुमा कर ले आ। यहाँ मैं सब संभाल लूँगी। बच्चे भी देख लूँगी तू निश्चिंत होकर जा"

इतने सालों में इस घर से इतना प्यार मिला कि मायके की स्मृतियाँ धुंधलके में खो गयी ... सारा सामान ठीक से रख लिया, ध्यान रखना। कहते कहते सासू माँ अर्थात् माताजी ने जल्दी ही अचार और आलू की सब्जी, पूरियों, चिरोंजी की, मिठाई का डिब्बा रख दिया।

यूँ तो रास्ते के आलूबड़े बहुत स्वादिष्ट होते हैं और बिना खाए वहाँ से निकलना कुछ अधूरा-सा लगता है पर जितेन्द्र को स्टेशन का खाना पसंद नहीं सो विचार दबा लिया।

कानपुर स्टेशन आने को है। मन में अजीब सी उमंग हिलोर ले रही थी। भाभी स्वागत को खड़ी होगी। हलुआ, पूरी, खीर, कचौरी तो बना ही ली होगी। भाभी को मालूम है जीजाजी खीर कचौरी शौक से खाते हैं। गाड़ी रुकने के पूर्व ही सारा सामान उठाकर तैयार थी रितिका। माँ इन्तजार कर रही होंगी। हो सकता है माँ ने चूरमा, दाल बाटी तैयार कर ली हो। मन में गुदगुदी सी होने लगी।

"अब की बार होली का त्योहार हम भाई बहन साथ मनाएँगे "

अगले ही क्षण लगा कि मोहना और कौशल कैसे त्योहार ! मनाएँगे। ठीक है दादी तो हैं। मोहना भी तो अब बड़ी हो गई है कर लेगी। मन मचलने लगा पर माँ से मिलने की ललक फलक पर भारी लगी। उसका दिल धड़कने लगा ।

चारों ओर मंजर बदला-बदला-सा था। पूरा रेलवे प्लेटफार्म एकदम साफ बैठने के लिए आरामदायक कुरसियों प्लेटफार्म से बाहर निकल कर देखा... भैया नहीं दिखे फोन लगाया भैया को, रिसीव नहीं ! हुआ। मन अंदर तक कॉप गया किसी अनहोनी की आशंका ने जकड़ लिया । रितिका का चेहरा फक पड़ गया... खुशी काफूर...

जितेंद्र ने कहा- "क्या फर्क पडता है रितिका टैक्सी बुक कर ली है आओ घर मुश्किल से 12 किलोमीटर दूर ही तो है, हो सकता भैया को छुट्टी न मिली हो। माँ की तबियत ठीक न हो तो कैसे आते।

आओ बैठो, चलें माँ राह देख रही होगी।

मन ही मन सोचने लगी बहुत दिनों के बाद अपने परिवार शहर दोस्तों से मिलूँगी। शहर की तस्वीर ही बदल गई। सब कुछ नया नया-सा सुखद कितना सुहाना लग रहा है। बहुत कुछ जाना-पहचाना पर उतना ही अनजाना- सा ।

बड़ी-बड़ी बिल्डिंग ने शहर को बांध लिया हवा पानी सब थमा थमा सा क्या यही विकास है अच्छी गुणवत्ता वाले चमड़े, प्लास्टिक कपड़ा उत्पादों के लिए प्रसिद्ध है यह शहर अपनी औपनिवेशिक वास्तुकला, उद्यानों, पार्कों के लिए भी प्रसिद्ध है। कतार बद्ध एक से मकान जहाँ देखो वहीं फ्लैट्स सड़कें एकदम साफ काली और चौड़ी। डूप्लेक्स ले लिया था भैया ने पुराना मकान बेचकर नयी कालोनी में।

कहा था-"शहर की पॉश कालोनी है यह"

पार्क के पास अचानक मकान न 143.. इंदिरा नगर, सिविल लाइन रुकी... सामान उठाने कोई नहीं... टैक्सी ड्राइवर ने सामान सड़क पर उतार दिया। जितेन्द्र ने पेटीएम का बिल का भुगतान कर दिया।

आन लाइन पेमेंट के यह फायदे तो हैं कि पैसे देने का दुख नहीं होता। बटन क्लिक और कितना भी दे दो जेब से निकाल कर पैसे देने में थोड़ा बचत का भी ध्यान आता है। खैर,

बड़ा सुन्दर-सा गेट कालबेल दवाई तो सुमन बाहर आई

"ओह बुआ..आप.".
"पापा कहाँ हैं...."

"टूर पर गये हैं लखनऊ, कल तक आ जाएँगे बुआ" 'कहती पैरों से लिपट गयी सुमन।

प्यार से हाथ फेरा रितिका ने और गले लगाकर पूँछा-

"और भाभी.."

" माँ!... माँ की आज अर्जेन्ट मीटिंग है। कह रही थी कि बुआ आएँ तो चाय वगैरह पिला देना मैं जल्दी आ जाऊँगी। आती ही होंगी।

"ओह फूफाजी नमस्ते। आइए "

काम वाली बाई से सुमन ने कहा "बुआ जी को चाय बनाओ

रितिका ने पूछा माँ कहाँ हैं सुमन ने कमरे की तरफ इशारे से बताया- वहाँ

अज्ञात भय मन में समाने लगा। माँ बाहर क्यों नहीं आयी। जो मेरा आने का नाम सुनते ही उछल जाती थीं। दामाद के आते ही विभिन्न व्यजंन बना कर, खिलाने की कवायद करती पर, आज माँ बाहर नहीं आयी। रितिका घबरा गयी ।

सामान वहीं पटक कमरे की ओर भागी बड़े कदम ठिठक गये।

माँ के कमरे को शंका से देखा। सब कुछ बुझा-बुझा का एहसास दे रहा था। सच में! माँ इतनी बीमार हैं। पीली-पीली रोशनी में माँ का चेहरा एकदम कमजोर पीपर पात-सा पीला झुर्रियों से झुलसा-सा दिख रहा है। आँखों के नीचे काले स्याह गड्ढे, चेहरे आभा कांतिहीन हो क्षीणकाय... कमजोर हलक में प्राण अटके बीमार पुतली-सी पुराना फटा कंबल ओढ़ कर लेटी हुई

"यह मेरी माँ हैं हे भगवान! "

रोंगटे खड़े हो गये रितिका के वह चिल्लाई-

" माँ..."

शरीर से कृशकाय माँ ने बेटी की पुकार सुनी... वे-बसी, लाचारी, हताशा से माँ ने देखा।

"अरे बेटा ! तू कब आई... बताया नहीं "

"भैया को फोन किया था... आप सो रही थीं सोचा चलकर ही बात करते हैं। पर यह क्या माँ तेरा कोई ध्यान नहीं रखता क्या ...?

" तेरी भाभी बहुत ध्यान रखती है बेटा... उसकी अपनी भी तो जरूरतें और परेशानियों हैं। जितना बनता है वह कर ही लेती है बेटा..."

रितिका ने कंबल हटाकर माँ से गले लगने की कोशिश की एक ही क्षण में बदबूदार झोंका हवा में तैर गया। माँ की आँखों से निरीह से आँसू बह निकले। उन्हें पोंछने के लिए साड़ी का छोर पकड़ा। साड़ी पुरानी फट चुकी थी बदन पर चिपकी-सी प्रतीत हुई। पापा का पुराना पूरी आस्तीन का स्वेटर बलाऊज का काम कर रहा था।

"यह क्या माँ "

"बस पहन लिया बेटा... इससे ठंडी हवा नहीं लगती, और मच्छर भी नहीं

काटते... पूरा शरीर ढँका रहता है

फरूरी-सी उठ रही थी सो पहन लिया" कहती जा रहीं थीं।

" दो तीन दिन से बुखार आ रहा था भाभी के आफिस में काम है.. उठ नहीं पा रही थी, इसलिए भैया से फोन करवा कर मैंने ही तो बुलाया हैं बेटा तुझे "

माँ झूठ बोल गई।

इस कमरे में और तो कोई आता नहीं। खिड़कियों बंद हैं। बदबू -सी भर गई जरा खोल तो दे सारी खिड़कियों ताजी हवा आ जाए। पानी ला कुछ लाई है तो खा लें दवा का समय हो गया।

रितिका के ऑसू थम नहीं रहे थे। रोए जा रही थी। फटी आँखों से कभी माँ को, कभी कमरे को असहाय -सी देखती माताजी के वाक्य याद आ रहे थे-

"बेटी, बेटी है बहू, बहू"

गीले व सीलन की बदबू व कपड़ों से भरे हुए कमरे में लोहे का पलंग, पतला सा गद्दा, मैली -कुचैली चादर फटी-सी तौलिया सच है माँ को इससे ज्यादा की जरूरत ही क्या है?

हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाते हुए रितिका ने पूछा-

"कोई केम्फर या पानी का मटका नहीं है अपने पास ?

माताजी के रखे हुए लड्डू एवं कैम्फर से गिलास निकाल पीने के लिए पानी दिया रितिका ने।

"सुमन ! सुन माँ को रात में एक गिलास पानी रख दिया कर बेटा। " रितिका ने आवाज लगाते हुए कहा।

"नहीं बुआ पापा कहते हैं ज्यादा पानी पीने से बिस्तर गीला होने का खतरा रहता है। दादी बीमार हैं।"

घर-भर को खाने का सामान बना बना कर दौड़ती भागती माँ की लाचारी देख रितिका ने माँ को उठाया आँगन में ले आई। नहा धुलाकर नई साड़ी पहनाकर और करीने से माँग निकाल कंघी कर दी। थोड़ा सा पाउडर लगाकर माथे पर छोटी बिंदी लगा दी। अब तो वही प्यारी माँ दिखने लगी जो कलफदार साड़ी पहनकर आँखों में काजल लगा कभी कालेज जाया करती थीं... थियेटर जाती थीं।

रितिका का मन अशांत है उदास है वह सोचती कि जितेन्द्र ने कहा "जैसी तुम्हारी माँ वैसी हमारी, दुखी मत हो या हल निकालो।

भैया-भाभी को काम से फुर्सत नहीं मिलती। उनके अपने काम हैं। बच्चों की अपनी दुनिया है। तुम चाहो और माँ का अच्छे से ख्याल रख सकती हो तो साथ लो और चलो"

" परन्तु भैया क्या सोचेगे, अगर भाई को बताती हूँ तो उनको लगेगा माँ ने कुछ कहा है।"

"भाभी का मन खराब होगा कहेंगी दो-चार दिन के लिए आई है बड़ी सगी बन रही है।"

" सब साधना एक साथ नहीं हो सकती रितिका ! समाज ने सब व्यवस्थाएँ सोच समझ कर ही तो बनाई होंगी "

"माँ भी शायद हमारे साथ जाना पसंद न करें। हमारे ससुराल वालों ने माँ को पसंद नहीं किया तो... रिश्तेदार क्या सोचेंगे, माताजी क्या सोचेगी"

"सोचता रहे जिसको जो सोचना है सोचे। आखिर माँ मेरी भी तो हैं तुम क्या चाहती हो ? माँ को क्या जरूरी है ? रितिका बस यह सोचो"

"समाज भैया भाभी के लिए क्या कहेगा। रिश्तेदार भैया भाभी को भला बुरा कहेंगे "

"रितिका अगर तुम यह सब सोचती रही तो तुम कुछ नहीं कर पाओगी ठंडे दिमाग से निर्णय लो। निर्णय तुम्हारा है। माँ तुम्हारी है। भाई- भाभी तुम्हारे ही है इसीलिए सोचना भी तुम्हें ही है।"

" मेरी माँ.. तो माँ है. माँ को साथ ले जाऊँगी "

और झट से सामान पैक करने लगी।

मर्मो ने टोकते हुए कहा बेटा - "

" कैसा समय आ गया है पहले लोग बड़े-बूढ़ों की सेवा अपना पुण्य धर्म समझते थे। अपना कर्त्तव्य समझते थे और पूरी श्रद्धा से पालन भी करते थे "

मगर आज वृद्धाश्रम खोल दिए मनमर्जी से जीवन जीना चाहते हैं "

जितेन्द्र ने बीच में टोकते हुए कहा-

"माँ सब ऐसा नहीं कर रहे हैं। हम सब काम में उलझे हैं। पर यह कदापि नहीं कि ध्यान नहीं रखते।

एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है। इस समाज रूपी ताल के साथ भी यही हाल है।"

'नहीं माँ ! आप मेरी श्रद्धा हैं और मेरा कर्तव्य भी। मैं अपने साथ आपको लेकर चल रही हैं।

"बस रितिका तुम्हारे साथ नहीं चल सकती बेटा। कुछ सामाजिक मर्यादाएँ हैं उनका निर्वाह जरूरी है।"

"कोई सामाजिक नहीं। आजकल कानून ने भी बेटा-बेटी को बराबर अधिकार दिए हैं।"

"समाज के अपने नियम हैं और वे उचित भी हैं। जहाँ सामाजिक नियम टूटे हैं वहाँ अराजकता दिखती है।"

"नियम बनाए ही जाते हैं तोड़ने के लिए माँ "

"तू जा और खुश रह रितिका। समय समय पर मिलने आ जाया कर। तेरे भाई भाभी ही मेरी देखभाल करेंगे। अच्छी या बुरी, तू अपने सास-ससुर को देख।

जितेन्द्र मुझे देखने लग जाएगा तो उसके माँ-बाप को कौन देखेगा। ऐसे तो समाज सारा बिखर जाएगा।"

थोड़ा रुककर गहरी साँस लेते हुए-

"अगर हर लड़की अपने सास-ससुर की केयर करे तो किसी के भी माता- पिता वृद्ध होने पर तकलीफ नहीं उठाएँगे। जा तू सुख से जा तेरी भाभी आती होगी। भाई कल आ जाएगा।"

"माँ मैं त्योहार मनाने आयी थी। माँ अब होली के बाद जाऊँगी। अपने भाई को भाई दूज का टीका लगाकर"।

आँगन में उड़कर आया हवा का झोंका महुए की गंध बहाता चला गया। एक मुटठी अबीर से जीवन के रंग से खिलते हुए सतरंगी आभा बिखेरने लगे -

एक दूर मोर मोरनी का जोड़ा भावलीन हो नृत्य मुद्रा में आ गया संसार प्रकृति प्रदत्त आनंद में सराबोर हो उठा। टैक्सी रुकी भैया टूर से लौटे। रितिका और जितेन्द्र से कहा-

चलो इस बार गंगा नहाते हैं। हरिद्वार चलो माँ, रितिका, तेरी भाभी, बच्चे, और जीजाजी सब एक साथ चलते हैं। रंग अबीर गुलाल टेबिल पर रखते हुए बोले होली के बाद पक्का। रितिका के मन की सारी खिड़कियों खुलती गई जिनमें खुशियों से भरी बयार दिल का मैल उड़ाती ले गयी। अचानक रितिका को लगा एक घुटन भरी वैतरणी पार कर गयी हो।

*****

रेवा

-डॉ. वन्दना मिश्र*

रेवा... ओ रेवा... कहाँ गयी पुत्री...! मैकाल... ! सतपुड़ा...! अरे ओ विंध्य... रेवा कहाँ है...? अमरकंटक जोर से चिल्लाया-यहाँ महाराज यहाँ... अभी यही से तो निकली है- "क्या हाल कर रखा है... तुम लोगों ने... मैं पूरा स्थल देखते आ रहा हूँ... बिल्कुल कृशकाय हो गयी है... एक साथ लहराती... बलखाती अरे! मध्यप्रदेश तो जीवन रेखा... कहता... क्या हुआ अपनी रेखा... नहीं सम्भाल पा रहा है... पता है कैसे उतारा था धरा पर... और क्यों... तो सुनो-

"चन्द्रमौली के पौत्र राजा बुध और इला (सूर्य पुत्र मनु की बेटी) के पुत्र महाराजाधिराज पुरूरवा अपने राज-काज में तल्लीन रहते हुए सबका आदर करते थे। उनके कार्यकाल में सब प्रसन्नता का अनुभव करते। सब सुखी थे। प्रजा भी चन्द्रवंश के राजा की माँ का सूर्यवंशी होना इस संबंध होने से गर्व अनुभूति करते थे।

दिन-रात महिने बीतने लगे... राजा पुरूरवा ने ब्राह्मणों और ऋषि मुनियों से जप कराएँ, दान दक्षिणा दी, इससे राज्य में सुख-शांति का वरदान प्राप्त हुआ। सबके आशीर्वाद का आदर करते हुए पुरूरवा चक्रवर्ती सम्राट बने। चक्रवर्ती सम्राट बनने पर स्वर्ग के राजा इन्द्र देव पृथ्वी लोक में उपस्थित हुए। भगवान इन्द्र को प्रत्यक्ष पाकर- "भगवन आप" पुरूरवा ने कहा -

"आइए -... आइए मृत्यु लोक में आपका स्वागत है देवाधिदेव ! आप कैसे पधारे...?" "महाराज पुरूरवा की ख्याति सुनकर आया हूँ। "आप चक्रवर्ती महाराज बने तो

*प्रमुख - प्रज्ञा, प्रवाह महिला आयाम

उपहार तो बनता है..." "उपहार..." हाँ! पुरूरवा उपहार। देवाधिदेव इन्द्र की ओर से यह यज्ञ की अग्नि स्वयं उपहार स्वरूप आपको सौगात देने आया हूँ... स्वीकार करें"

"यज्ञ अग्नि ! पर

"आजकल पृथ्वी पर यज्ञ कहाँ हो रहे हैं इन्द्र देव!"

"अब तो लोग हुक्का गाँजा सिगरेट का धुआँ उड़ाना पसंद कर रहे हैं।"

नहीं पुरूरवा यह अग्नि स्वीकार करो..."

"नहीं देव अब लोग यज्ञ को आडंबर मान रहे हैं"

"पुरूरवा ! यह अग्नि स्वीकार करो यज्ञ करो और करवाओ।"

"जैसी आपकी आज्ञा देवाधिदेव !"

यज्ञ अग्नि प्राप्त कर पुरूरवा के राज्य में रोज यज्ञ हवन होने लगे... संभ्रांत लोग तो धनव्यय कर यज्ञ कार्य करते किंतु आम आदमी क्या करे... सोच ही रहे थे कि एक दिन जब... यज्ञ अग्नि से पवित्र यज्ञ कराकर जब आम सभा कर रहे थे तभी सभी ऋषि मुनियों, बाह्मणों व प्रजाजन सभा में आए और कहा-"महाराज की जय हो। प्रजा आपसे कुछ चर्चा करना चाहती है...

बताइए स्वागत है प्रजाजन !

क्यों न हम सब चलकर एक 'पाप मुक्त समाज' की स्थापना का प्रयास करे. "सभी ने एक स्वर में कहा -"जय हो! है... "जय हो महाराज पुरूरवा की जय हो! जय हो... राज दरबार की जय हो! महाराज राजसभा में हैं...

महाराज की जय हो चंद्र एवं सूर्यवंश की जय हो। जय हो प्रजाजन !

हमें पृथ्वी पर बिना यज्ञ दान आदि किए मोक्ष कैसे मिलेगा... राजन कैसे ? कैसे तृप्ति मिलेगी जीव को... जबकि... यज्ञ आदि करने की शक्ति हर किसी में नहीं... है महाराज... इसलिए दर्शन मात्र से लोक कल्याण हो ऐसा उपाय बताइए... आप बताइए... मुनिवर!"

ऋषिवर बोले-महाराज शिवपुत्री नर्मदा ही एकमात्र ऐसी शक्ति हैं जो मानवमात्र को पाप मुक्त कर सकती हैं... परन्तु...

"परन्तु क्या मुनिश्रेष्ठ..." नर्मदा पृथ्वी पर कैसे अवतरित होगी... उनका निवास कहाँ और.. कैसे... कौन उनके भार को धारित करेगा।"

"यह तप आपको करना होगा... पुरूरवा... शिव को प्रसन्न कर नर्मदा को लाना... आप जैसा लोक मंगलकारी व्यक्तित्व ही कर सकता है।"

जन हितैषी पुरूरवा हिमालय की तराई में जाकर तप कर शिव को प्रसन्न करने बैठ गये... शिव ने प्रसन्न हो इच्छित वर माँगने को कहा- "हे राजन! मैं प्रसन्न हूँ... अपना इच्छित वर माँगो!"

पुरूरवा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले-"

-हे प्रभु मैं सामर्थ्यवान ... शक्तिशाली, बलशाली भी हूँ... इसलिए यज्ञ कर लेता हूँ... आमजन को कुशल रखने का प्रयास करता हूँ... लेकिन अन्य व्यक्ति किस प्रकार से बिना यज्ञ दान आदि किए बिना पाप विमोचित नहीं हो सकता, हर व्यक्ति यज्ञ हवन जप तप भी नहीं कर सकता ... मानव व समस्त संसार के कल्याण के लिए लोक हितकारी संसार को केवल अपने दर्शन मात्र से ही पाप नष्ट करने की शक्ति आपकी पुत्री नर्मदा में है। हे शिव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो नर्मदा जी को धरती पर अवतरित करें... ताकि मानव कल्याण और निर्जल जम्बू द्वीप जो जल के बिना निराधार हो रहा है का उद्धार हो सके।"

"मैं तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी करूँगा पुरूरवा !"

"प्राणीमात्र के कल्याण के लिये निर्जल हो रही इस पृथ्वी पर आपकी पुत्री उद्धारक है।" शिवजी आश्वासन देकर चल दिए... अपनी पुत्री को दूर करने के दुःख के साथ... पृथ्वी के कष्टों का सामना कैसे करेगी... मेरी तरल सरल पुत्री शंकर भाव विभोर हो उठे... लेकिन वचन दे चुके पुरूरवा को...

शिवजी ने अपनी पुत्री नर्मदा से आदेशात्मक रुख में कहा "नर्मदे तुम्हें जन कल्याण के लिए पृथ्वी पर जाना होगा। मैं पुरूरवा को वरदान दे चुका हूँ...। तुम्हें पृथ्वी पर नदी रुप में अवतरण की करना होगा। "

नर्मदा ने कहा- "आपने मेरे जीवन का निर्णय बिना पूछे कैसे ले लिया पिताजी ! वह भी कलयुग के लिए...! पृथ्वी के लिए...! जहाँ के निवासी स्वार्थ के लिए सब कुछ नष्ट कर रहे हैं....! मैं नदी रूप धारण कर जाऊँगी... और पृथ्वी वासी कहीं निर्माल्य विसर्जन कर तो कहीं अन्य सामग्री से मैला कर डालेगे। सोख... डालेंगे... आपकी पुत्री की समूची सामर्थ्य को ! आपको विचार करना था ....पिताजी.. "पिताजी फिर मैं आपके बिना वहाँ कैसे रहूँगी ?... जब कि मैं बिना आपके संरक्षण के बिल्कुल नहीं रह पाती... अब आपने वचन दिया है तो निभाना मेरा कर्तव्य है पिताजी... आपको मेरे साथ... मेरे सभी तटों पर मुझे दर्शन देते हुये निवास करना होगा.... मेरी रक्षा के लिए... मेरे अवतरण के समय... आप मेरे साथ रहिए... मैं आपके वरदान का मान रखती हूँ।"थोड़ा ठहर कर...

मेरी अपार जल शक्ति को सहन करने वाला धरा पर कोई नहीं... नहीं पिता मैं आपकी गोद में रहूँगी... मुझे आपकी गोद चाहिए जहाँ मैं अवतरित हो सकूँ। शिव जी ने हिमालय की ओर देखा....तो हिमालय ने कहा- मैं अभी शैशवास्था में हूँ देवी नर्मदा को वहन करने की शक्ति मुझमें नहीं विंध्याचल पर्वत में है। विंध्याचल ने अपने पुत्र पर्यंक, मेखला, मैकाल और दूसरी ओर सतपुड़ा से कहा देवी नर्मदा का पृथ्वी पर अवतरण लोक कल्याण के लिए है ... वह अपना पितृगृह छोड़कर पिता के आदेश का पालन करने पृथ्वी पर पधार रहीं हैं... हम सभी को साथ मिलकर उनकी शक्ति को वहन करना होगा... मैं तो सबसे पुराना पर्वत हूँ। सब ने एक साथ जयकारे लगाए-" हर हर नर्मदा।"। विंध्याचल की बात से संतुष्ट हो शिव अमरकंटक पहुँचे। अमरकंटक का सुरभित शांत वातावरण देख शिवजी उमा के साथ लवलीन हो लास्य नृत्य करने लगे। इस नृत्य से दोनों की पसीने की बूंदें रव बन कर पृथ्वी पर गिरीं ...तो नर्मदा इन पसीनें की बूँदों से संयोग करती रेवा बनकर प्रकट हो गई। अपनी पुत्री का इस रूप में अवतरण देख शिव जी आनंदित होकर बोले "आज से बेटी तुम्हारा नाम नर्मदा के साथ ही रेवा भी पुकारा जाएगा।"

नर्मदा के अवतरण की सूचना से पुरूरवा एवं साथी आये भृगु ऋषि आदि सभी मुनियों आए और शिव पार्वती के देवी नर्मदा की वंदना करने लगे-नमामि देवी नर्मदे.... हरहर नर्मदे! " जय हो नर्मदे शंकरजी की पुत्री नर्मदा का हर एक कंकर माँ नर्मदा की रक्षा करता शंकर प्रतिरूप है।

लेकिन यह क्या सदियों बाद पुरूरवा आज पुनः नर्मदा को धन्यवाद देने पहुँचे तो... घाट के सिकुड़ती जल राशि से चिंतित हो उठे... गंगा... यमुना... सतलुज... शिप्रा... नर्मदा सवका जल पाट दिया मानवों ने अपने स्वार्थ के लिए... हुँकार भरी... पुरूरवा ने जागो ! इंसानों जागो! आज जल राशि बचाओ... बहुत तप और तपस्या से इनका अवतरण हुआ था... मुझे... पुनः जन्मना होगा... नमामि देवी नर्मदे से माफी माँगनी होगी... शिव पुत्री को अपने विश्वास और वचन पर लाए पुरूरवा ने कहा... एक नहीं अनेक पुरूरवा आगे आएँ तभी हम अपार जलराशि का संचय कर कल बचा पाएँगे... आओ... सब आगे आओ.. "पुरूरवा!

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

खंड-IV

अन्य लेखकों से प्राप्त आलेख

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

ट्रांसजेंडर, जेंडर परिवर्तन और मानव अधिकारों से संबंधित मुद्दे

छाया शर्मा*

ट्रांसजेंडर की परिभाषा और सामाजिक स्थिति

ट्रांसजेंडर उन व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त एक व्यापक शब्द है जिनकी लिंग पहचान, लिंग अभिव्यक्ति या व्यवहार उस लिंग के अनुरूप नहीं होता जो उन्हें जन्म के समय प्राप्त था। ट्रांसजेंडर या LGBTQIA+ समुदाय हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा हैं और प्रकृति द्वारा जैविक और शारीरिक रूप से अलग बनाए गए हैं। हालांकि, उनकी यह भिन्नता समाज की पारंपरिक मान्यताओं से मेल नहीं खाती, जिससे उन्हें स्वीकृति नहीं मिल पाती। कई देशों में ट्रांसजेंडर समुदाय को कानूनी अधिकार दिए गए हैं और उनकी पहचान को मान्यता मिली है, लेकिन फिर भी कई देश ऐसे हैं जो उनकी अलग पहचान, यौनिकता, सामाजिक और व्यावसायिक प्राथमिकताओं को स्वीकार नहीं करते, जिससे उनके साथ अमानवीय व्यवहार होता है और उनके मूलभूत मानव अधिकार प्रभावित होते हैं।

संवैधानिक प्रावधान और वास्तविकता की खाई

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 "राज्य को किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, नस्ल या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव करने से रोकता है। यह नागरिकों को दुकानों, रेस्तरां और सार्वजनिक स्थानों पर किसी भी प्रकार की असमानता या पाबंदी से भी संरक्षण प्रदान करता है। हालांकि, यह अनुच्छेद महिलाओं, बच्चों,

*आई.पी.एस., पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली

सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए विशेष प्रावधानों की अनुमति देता है, जैसे कि आरक्षण।"

फिर भी, ट्रांसजेंडर समुदाय को लगातार भेदभाव का सामना करना पड़ता है। उनके मूलभूत मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है और समाज में उन्हें उपेक्षा व अपमान का शिकार बनना पड़ता है। उनके लिए न तो भेदभाव को दंडनीय बनाने वाले कोई विशेष प्रावधान हैं और न ही उन्हें कोई सकारात्मक लाभ देने के लिए कोई विशेष व्यवस्था की गई है।

जनगणना और पहचान की समस्याएं

भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 4,87,803 व्यक्ति, महिला एवं पुरूष के अतिरिक्त अन्य श्रेणी में आते हैं। हालांकि जनगणना में पहचान की कठिनाइयों के कारण वास्तविक संख्या अधिक हो सकती है। यह आंकड़े आत्म-पहचान पर आधारित हैं और इनमें हिजड़ा, किन्नर जैसे सामाजिक-परंपरागत पहचान वाले व्यक्ति भी शामिल हैं। चूंकि यह समुदाय कुल जनसंख्या का बहुत छोटा हिस्सा है, इनके मुद्दों को अक्सर महत्व नहीं दिया जाता और अनदेखा कर दिया जाता है।

पारिवारिक दबाव और सामाजिक बहिष्कार

समाज का दबाव इतना अधिक होता है कि कई माता-पिता अपने ट्रांसजेंडर बच्चों को स्वीकार नहीं करते और उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से खतरनाक 'उपचार' प्रक्रियाओं से गुजरने को मजबूर करते हैं। कुछ लोग समाज के तिरस्कार के डर से चुप रहते हैं, तो कुछ अपने ट्रांसजेंडर रिश्तेदारों को जान-बूझकर बहिष्कृत कर देते हैं, यह जानते हुए भी कि उस व्यक्ति को समाज से कितना भेदभाव और अपमान सहना पड़ेगा।

कार्यक्षेत्र में भेदभाव और सामाजिक चुनौतियां

यहां तक कि पढ़े-लिखे और आर्थिक रूप से सक्षम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को भी कार्यस्थल पर उत्पीड़न और भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिससे उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ सकती है, और कई प्रतिभाशाली व्यक्तिव सदा के लिये खो जाते हैं। उन्हें बिना किसी आलोचना या पूर्वाग्रह के चलते अकारण ही पारस्परिक मेल-जोल तक के लिए कोई सुरक्षित स्थान नहीं मिलते। वे किस शौचालय का उपयोग करें, यह भी एक बड़ा सवाल बन जाता है। ऐसे हालात में वे बेरोज़गार, बेघर और सामाजिक रूप से बहिष्कृत हो जाते हैं।

आजीविका की सीमित संभावनाएं

कई ट्रांसजेंडर लोग अपनी रुचियों और क्षमताओं के अनुसार दर्जी, पैडिक्योरिस्ट, हेयर और मेकअप आर्टिस्ट, बैकग्राउंड डांसर, किचन सहायक आदि के रूप में चुपचाप काम करने लगते हैं, लेकिन फिर भी उन्हें सम्मानजनक जीवन की कोई उम्मीद नहीं होती।

संगठित शोषण और आपराधिक तंत्र

कुछ संगठित समूह ऐसे बेसहारा ट्रांसजेंडर्स को संरक्षण देने के नाम पर उनका शोषण करते हैं। ये उन्हें घेट्टो (झुग्गी या सीमित क्षेत्र) में रहने को मजबूर करते हैं और उनके जीवन व उनकी आजीविकाओं को नियंत्रित करते हैं। इन क्षेत्रों में प्रभावशाली ट्रांसजेंडर, जिन्हें 'गुरुजी' कहा जाता है, वे सुनिश्चित करते हैं कि उनके अधीन रहने वाले ट्रांसजेंडर स्वतंत्र रूप से जीवन यापन न कर सकें, और उन्हें मजबूरन ट्रैफिक सिग्नल्स पर भीख मांगने या देहव्यापार के लिए लुभाने में लगने को बाध्य किया जाता है। यह पूरा नेटवर्क एक संगठित आपराधिक सिंडिकेट की तरह काम करता है, जिसे अन्य अपराधी नेटवर्क भी अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।

पारंपरिक पेशा: आशीर्वाद और उसकी चुनौतियां

एक अन्य पारंपरिक पेशा जो ट्रांसजेंडर समुदाय द्वारा अपनाया जाता है, वह है नवविवाहित जोड़ों या नवजात शिशु को आशीर्वाद देना। यह परंपरा कई जगहों पर समाज में स्वीकार्य है और इस पेशे में ट्रांसजेंडर लोग स्थानीय घरेलू कामगारों, अस्पताल कर्मियों, सब्जीवालों और पड़ोसियों की सूचना पर जाते हैं। हालांकि, यह परंपरा अब मुख्यतः छोटे शहरों और गांवों तक सीमित होती जा रही है, क्योंकि बड़े शहरों में गेटेड कम्युनिटी इस प्रथा को प्रोत्साहित नहीं करतीं।

इस प्रथा में भी कई बार विवाद हो जाता है, जब ट्रांसजेंडर समूह द्वारा मांगी गई राशि परिवार की भुगतान क्षमता से अधिक होती है, और वे परिवार को श्राप देने की धमकी देते हैं। ऐसे मामलों में जब पुलिस हस्तक्षेप करती है तो ट्रांसजेंडर समूह को ब्लैकमेलिंग या वसूली के आरोपों का सामना करना पड़ता है।

सामुदायिक संगठन और कानूनी संघर्ष

ट्रांसजेंडर अधिकारों के लिए काम करने वाले गैर सरकारी संगठनों की संख्या कम है, और वे भी अधिकतर ट्रांसजेंडर या उनसे जुड़े व्यक्तियों द्वारा संचालित होते हैं।

इन संगठनों की आपसी एकता की कमी के कारण अधिकारों के मुद्दे पर सामूहिक लड़ाई का अभाव रहता है। उल्लेखनीय है कि पूरे समुदाय की एकता उस समय देखने को मिली थी जब आईपीसी की धारा 377 को हटाने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ी गई थी। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने बड़ी सहिष्णुता दर्शाते हुए- सहमति से बनाए गए यौन संबंधों को अपराध की श्रेणी से हटाकर LGBTQIA+ समुदाय को राहत दी, लेकिन बिना सहमति बनाए गए अप्राकृतिक यौन संबंध तब भी 2023 तक दंडनीय बने हुए थे।

कानूनी सुरक्षा में अंतराल

2023 में नये कानूनो की संरचना हुई। जहाँ नाबालिग लड़कों को POCSO कानून और नाबालिग लड़कियों और औरतों को भारतीय न्याय संहिता 2023 में बलात्कार की परिभाषा के अंतर्गत सुरक्षा दी गई है। परंतु बिना सहमति अप्राकृतिक यौन हिंसा के शिकार हुए ट्रांसजेंडर या पुरुषों के लिए अभी कोई स्पष्ट कानूनी प्रावधान नहीं है। भारतीय न्याय संहिता 2023 में भी इस प्रकार के अपराधों का कोई उल्लेख नहीं है, जिससे इन मामलों को गंभीरता से लिया जाए। उम्मीद की जाती है कि नवसृजित भारतीय न्याय संहिता में जल्द ही संशोधन कर उचित धाराएं जोड़ी जाएंगी।

कन्वर्ज़न थैरेपी और लिंग परिवर्तन के मुद्दे

इस समुदाय के सामने एक महत्वपूर्ण मुद्दा लिंग परिवर्तन का है जिसमें कठोर उपचार विधियों के माध्यम से समलैंगिकता का इलाज करने का प्रयास डॉक्टर करते हैं। संभावित रोगियों को यौन अभिविन्यास परिवर्तन प्रयास (एसओसीई) के नाम पर दवा और बिजली का झटका दिया जाता है, या जिसे प्रमाणित डॉक्टरों और चिकित्सा कर्मचारियों द्वारा व्यापक रूप से 'रूपांतरण चिकित्सा' या 'रिपेरेटिव थेरेपी' के रूप में जाना जाता है।

न्यायिक हस्तक्षेप और नियामक कार्रवाई

2021 में माननीय मद्रास हाईकोर्ट के जस्टिस आनंद वेंकटरमन ने सुषमा बनाम पुलिस आयुक्त केस में कहा कि किसी भी LGBTQIA+ व्यक्ति की यौनिकता या लिंग पहचान को जबरदस्ती बदलने के प्रयास गैरकानूनी माने जाएंगे। कोर्ट ने ऐसे चिकित्सकों के खिलाफ कार्रवाई और उनका मेडिकल लाइसेंस रद्द करने का आदेश भी दिया।

सितंबर 2022 में नेशनल मेडिकल कमीशन (NMC) ने 'कन्वर्ज़न थैरेपी' पर प्रतिबंध लगा दिया और इसे पेशेवर दुराचार (प्रोफेशनल मिसकंडक्ट) की श्रेणी में रखा।

NMC ने सभी राज्य चिकित्सा परिषदों को पत्र लिखकर उन्हें यह अधिकार दिया कि वे इस प्रकार की थैरेपी करने वाले चिकित्सकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करें।

प्रतिबंध की सीमाएं और व्यावहारिक चुनौतियां

हालाँकि, NMC का यह प्रतिबंध यह सुनिश्चित नहीं करता कि ऐसे संवेदनशील तंत्र मौजूद हों जो व्यक्तिगत डॉक्टरों तक पहुँचें – जिससे न केवल उन्हें शिक्षित किया जा सके बल्कि उनके LGBTQIA+ जीवन के प्रति मौजूद पूर्वाग्रहों को भी समाप्त किया जा सके।

इन हस्तक्षेपों के बावजूद, कन्वर्ज़न थैरेपी आज भी जारी है – न केवल चालाकीपूर्ण चिकित्सा तरीकों के माध्यम से, बल्कि आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य छद्म तरीकों से भी। भले ही NMC के नियमों ने डॉक्टरों के बीच कुछ हद तक दंड के डर को जन्म दिया हो, फिर भी, इन अवैध प्रथाओं को करने वाले और उन्हें बढ़ावा देने वालों के लिए कानून में कई छिद्र (loopholes) हैं, जिनका लाभ उठाकर वे बच निकलते हैं।

स्पष्ट कानूनी परिभाषा की आवश्यकता

कन्वर्ज़न थैरेपी को अपराध की श्रेणी में लाने के लिए सबसे बड़ी बाधा इसकी स्पष्ट परिभाषा का अभाव है। इसलिए, आवश्यकता है कि इसे एक अलग कानून के तहत लाया जाना चाहिए, जिसमें यह स्पष्ट रूप से बताया जाए कि: कन्वर्ज़न थैरेपी क्या है,इसमें क्या-क्या दंडनीय होगा,और ऐसे कृत्यों को अंजाम देने वालों पर अपराध कैसे सिद्ध किया जाएगा। इसमें यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि क्या-क्या तरीके (जैसे चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक) इस श्रेणी में आते हैं और ऐसे मामलों में जवाबदेही तय करने की प्रक्रिया क्या होगी। अन्यथा, डॉक्टरों के खिलाफ केवल अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है या उन्हें फिरौती लेने, अपहरण और मारपीट करने जैसे दूसरे अपराधों के लिए ही अदालत में लाया जा सकता है।

माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के एक फैसले में कन्वर्ज़न थैरेपी को विदेशी चिकित्सा जर्नलों के संदर्भों से परिभाषित किया गया था। NMC द्वारा जारी परिपत्र (सर्कुलर) इस बात को समझाने के सबसे करीब आता है कि कौन से कृत्य या तरीके कन्वर्ज़न थैरेपी की श्रेणी में आते हैं। लेकिन यह स्पष्ट नहीं करता कि टॉक थैरेपी, कॉग्निटिव बिहेवियरल थैरेपी (CBT) या किसी प्रकार की 'शुद्धिकरण', 'हीलिंग' या मनो-धार्मिक अनुष्ठान भी कन्वर्ज़न थैरेपी का हिस्सा माने जाएंगे।

पेशेवर पक्षपात और संवेदनशीलता का अभाव

कुछ व्यक्ति, जैसे ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिसऑर्डर (OCD) से पीड़ित लोग, अक्सर अपनी यौन पहचान को लेकर संदेह में रहते हैं। यह संदेह और अन्य मनोवैज्ञानिक तनाव या व्यवहार संबंधी अवरोध, उन्हें एक असंगत जीवन जीने का डर पैदा करते हैं, जो समय के साथ अन्य मानसिक समस्याओं से जुड़ जाते हैं। लेकिन कठोर कानून की अनुपस्थिति में, कई डॉक्टर इस स्थिति का फायदा उठाते हैं और रिपेरेटिव इंटरवेंशन (उपचारात्मक हस्तक्षेप) करते हैं, जो व्यक्ति के मानव अधिकारों का उल्लंघन है। इसके अतिरिक्त, लिंग परिवर्तन से जुड़े मुद्दों को लेकर मेडिकल पेशेवरों, कानूनी विशेषज्ञों और पुलिस अधिकारियों में LGBTQIA+ समुदाय के प्रति व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और पेशेवर आचरण की कमी स्पष्ट रूप से देखी जाती है। इससे पूरे LGBTQIA+ समुदाय के प्रति संवेदनहीनता और सहानुभूति की कमी को और बढ़ावा मिलता है। इन पेशेवरों की निजी नैतिकता, पेशेवर आचरण, और प्रशिक्षण के बीच गहरी खाई है, जिसे समग्र (holistic) रूप से संबोधित किया जाना जरूरी है।

मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वीकृति की चुनौतियां

LGBTQIA+ समुदाय का कोई भी सदस्य हो, उसे सामान्य जीवन में भी लगातार संघर्ष, मानसिक व शारीरिक समस्याएं और समाज के दबाव में जीने की मजबूरी झेलनी पड़ती है। वे हमेशा किसी न किसी रूप में बदलाव, अनुकूलन या बहिष्कार के दबाव में रहते हैं – और अपने प्रियजनों व समाज से थोड़ी सी सहानुभूति की उम्मीद में तड़पते रहते हैं। केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि जरूरी है कि समाज इस इंद्रधनुषी विविधता को पूरी गरिमा के साथ स्वीकार करे। उनके मानसिक स्वास्थ्य को केवल 'उपचारात्मक हस्तक्षेप' के नजरिए से नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि उन्हें एक स्वस्थ, स्वतंत्र और आत्मसम्मान से भरे जीवन की दिशा में मार्गदर्शन देना चाहिए।

सकारात्मक नीतिगत हस्तक्षेप और आरक्षण, मुख्यधारा में सम्मिलन और राष्ट्रीय विकास में योगदान

इस समुदाय के मुद्दों को समझने की आवश्यकता बेहद महत्वपूर्ण है ताकि उनकी भिन्न लिंग पहचान को उचित मान्यता दी जा सके और उन्हें सुनिश्चित और सकारात्मक आरक्षण, सरकारी नौकरी में प्रतिनिधित्व और अन्य समाज कल्याण योजनाओं का लाभ मिल सके। राज्य को LGBTQIA+ व्यक्तियों और उनके समुदाय के लिए कानूनी और नीति-स्तरीय इच्छाशक्ति दिखानी होगी। इससे उनके बहिष्करण को

कम किया जा सकेगा और उन्हें मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था में शामिल किया जा सकेगा। वे भी देश के सामान्य नागरिक की तरह बुनियादी मानव अधिकारों के साथ अपना जीवन जी सकेंगें। इससे न केवल वे खुद लाभान्वित होंगें, बल्कि समाज और राष्ट्र को भी अपनी पूर्ण मानवीय क्षमता से योगदान दे सकेगें।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

भारतीय समाज में सेक्स एवं जेंडर की अवधारणा

हरिलाल चौहान*

'सेक्स एवं जेंडर' शाब्दिक अर्थों में लेंगिक आधार पर समाज का विभाजन है। लेंगिक आधार पर व्यक्ति को महिला और पुरूष के रूप में विभाजित किया जाता है। 'सेक्स' अथवा लिंग व्यक्ति की जैविक और शारीरिक विशेषताओं को दर्शाता है, जबकि 'जेंडर' समाज द्वारा परिभाषित पुरुष या महिला होने के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं, जैसे समाज में उनकी भूमिकाओं, अन्यों के प्रति व्यवहार और व्यक्तिगत पहचान को दर्शाता है। यह दोनों अवधारणाएँ पूर्णतः विपरीत हैं क्योंकि किसी व्यक्ति की जैविक संरचना उसके सामाजिक व्यवहार या पहचान से भिन्न हो सकती है अथवा नहीं भी। जेंडर की भूमिकाएँ और अभिव्यक्तियाँ सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होती हैं और अलग-अलग समाजों में भिन्न हो सकती हैं। आरंभ में भारतीय समाज में इसका विभाजन द्विआधारी [Binary] संकल्पना के आधार पर किया गया जिसमे समाज को प्रथम दृष्टया महिला या पुरूष के रूप में वर्गीकृत किया जाता है परन्तु कालांतर में मानव अधिकारों में निहित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समानता के प्रति जागरूकता के फलस्वरूप ट्रांस-जेंडर [तृतीय लिंग] को भी अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हुआ है।

---

*वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, एन.एच.आर.सी

इस अवधारणा के अंतर्गत क्रमशः सर्वप्रथम हमें यह मंथन करने की आवश्यकता है कि भारतीय समाज में सेक्स और जेंडर के अंतर को किस प्रकार समझ सकते है। जैसाकि पूर्व में चर्चा की गई कि सेक्स अथवा लिंग को जन्मजात जैविक विशेषताओं जैसे प्रजनन अंग, गुणसूत्र और सम्बंधित हार्मोन स्त्राव के साथ जोड़ा गया है जिससे किसी भी व्यक्ति के जैविक लिंग का निर्धारण होता है। इसी के अनुसार द्विआधारी [Binary] अवधारणा विकसित हुई जिसमें समाज का और महिला के रूप में द्विभाजन करके इसे शारीरिक अंतर पर आधारित किया गया, मुख्यतः इसमें प्रजनन प्रणाली पर आधारित प्राकृतिक यौन विशेषताएं, लम्बाई और मांसलता [Masculinity] को आधार बनाया गया।

इसी के दूसरे पहलू के अंतर्गत दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि समाज में जेंडर [लैंगिकता] की अवधारणा भिन्न रूप से विकसित हुई है। जेंडर एक सामाजिक अवधारणा है जो पुरुषों और महिलाओं के लिए निर्धारित भूमिकाओं, उत्तरदायित्वों और व्यवहारों के आदान प्रदान से सम्बंधित है। हालाँकि यह सांस्कृतिक रूप से निर्धारित होती है और समय के साथ बदलती रहती है। जैसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के समान स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी और उन्हें शिक्षा एवं धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार था परन्तु उत्तर वैदिककाल की पितृसत्तात्मक व्यवस्था और सम्बंधित सामाजिक कुरीतियों के सशक्त होने पर महिलाओं की श्रेणी और कोटि में शनै: शनै: और भी गिरावट आने लगी। सम्पूर्ण उत्तर वैदिककाल, महाकाव्यों, स्मृतियों और बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति ऐसी थी कि उन्हें बुनियादी समानता का अधिकार नहीं था और वे अपने घरेलू सुखों का आनंद भी नहीं ले पाती थीं। महिलाओं को पुरुषों की पत्नी के बजाय केवल काम-तृप्ति का साधन माना जाता था। उत्तर वैदिककाल को महिलाओं के जीवन के लिए सबसे अनुचित और अस्वास्थ्यकर वातावरण के रूप में देखा गया, और उन्हें विकास का हिस्सा बनने की अनुमति नहीं थी। महिलाएं संपत्ति और मतदान के अधिकारों से वंचित थी, साथ ही उन्हें राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति भी नहीं थी।[2]

भारत के मध्यकालीन समाज में पितृसतात्मक व्यवस्था की पूर्णतः स्थापना हो गयी एवं इससे सम्बंधित सामाजिक नियम और भी कठोर होते गए। बाल-विवाह, पर्दा प्रथा एवं सतीप्रथा जैसी कुरीतियां व्याप्त हुई और महिलाओं की स्वतंत्रता सीमित होती गई और कार्य विभाजन पूर्णतः लैंगिक आधार पर ही निर्धारित हो गया। उदाहरण के तौर पर मध्यकालीन भारत में विदेशी आक्रांताओं के भय से समाज में कई कुरीतियां विकसित

[2] https://www.ijhssi.org/papers/vol11(11)/U1111151153.pdf
[3] https://prepp.in/e-492-women-in-the-medieval-period-medieval-india-history-notes
[4] History of Modern India by Bipin Chandra/ Picture

हुईं जिसके अंतर्गत बाल-विवाह, सतीप्रथा आदि प्रमुख है। इसी के अंतर्गत रूढ़िवादिता का हवाला देते हुए महिलाओं के लिए घर एवं बच्चों की देखभाल और पुरुषों के लिए बाहर जाकर काम-काज और व्यवसाय की भूमिका प्रदान की गयी, और इसी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने आगे चलकर जेंडर से सम्बंधित कार्य विभाजन का रूप ले लिया।[3] इस प्रकार परिवार एवं समाज में पुरुषों को महिलाओं की तुलना में ज्यादा अधिकार मिलने लगे।

इतिहासकारों के अनुसार आधुनिक भारत का आरंभ 1857 की क्रांति अर्थात भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद से माना गया है।[4] इस अवधि के दौरान भी जेंडर आधारित कार्य विभाजन की स्थिति कमोबेश वही रही। स्वतंत्रता से पूर्व लेंगिकता से जन्म लेने वाली कुरीतियों के उन्मूलन के लिए कई महापुरुषों के द्वारा समाज सुधारों हेतु पहल की गयी जिसके अंतर्गत यहाँ सतीप्रथा के उन्मूलन का उल्लेख किया जा सकता है। आधुनिक भारत के प्रणेता राजा राम मोहन राय द्वारा अपने अथक प्रयासों एवं तर्कों से आम जन-मानस में यह उद्वेलित किया गया कि सतीप्रथा को भारतीय समाज में स्वीकार्य नहीं किया जा सकता एवं वर्ष 1829 में अंग्रेजी सरकार के द्वारा बंगाल सती रेगुलेशन पारित करवाने में सफल हुए हालाँकि इस कुप्रथा के धरातल से पूर्णतः उन्मूलन होने में कई दशकों का समय और लगा।

स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय संविधान के माध्यम से लैंगिक समानता की गारंटी दी गयी परन्तु कार्य विभाजन के मध्यकालीन प्रभाव आज भी दृष्टिगत होते हैं। लैंगिक विभाजन और इसके दुष्प्रभावों को राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण -2019-21 की रिपोर्ट के अनुसार पाया गया कि 68.3% महिलाओं के पास किसी भी प्रकार की संपत्ति नहीं थी और अध्ययनों में यह भी देखा गया कि मात्र 8.3% महिलाओं के पास भूमि का स्वामित्व उपलब्ध था और 100 में से 13 महिलाओं के पास रहने के लिए मकान था। अतः यहाँ उल्लेख करना आवश्यक होगा कि अभी भी जेंडर आधारित कार्य विभाजन भारतीय समाज का आधार है हालाँकि विभिन्न आंदोलनों और सरकारी पहलों के द्वारा महिलाओं के अधिकारों और सशक्तिकरण पर ध्यान केन्द्रित किया जाने लगा है। इस प्रकार जेंडर की अवधारणा के विकास और वर्तमान स्थिति को इस उदाहरण के माध्यम से सर्वथा परिभाषित किया जा सकता है।

21वीं शताब्दी में वैश्वीकरण और भौगोलिकरण [Globalization] के प्रभाव से भारतीय समाज में सेक्स और जेंडर अवधारणा पर एक नयी बहस का सूत्रपात हुआ। इस काल के उद्भव के साथ एक नई वैश्विक अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ जिसके अंतर्गत विश्व भर की अर्थव्यवस्थाएं, समाज और संस्कृतियाँ परस्पर निर्भरता और एकीकरण के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ने लगी। भूमंडलीकरण का विकास संचार, परिवहन,

प्रौद्योगिकी एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार में प्रगति के कारण संभव हुआ जिससे वस्तुएं, सेवाएँ, पूंजी और वैचारिक बाध्यताओं की सीमाएं समाप्त हो गयीं। इससे भारतीय समाज में भी आधारभूत परिवर्तन हुए और समाज की जेंडर व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन आया।

भारतीय समाज में वैश्वीकरण के साथ महिलाओं के द्वारा जहाँ एक ओर अपने ज्ञान एवं कौशल में अभिवृद्धि के द्वारा विभिन्न सेवाओं में बढ़ चढ़ कर अपनी उपस्थिति के साथ राष्ट्र निर्माण में सकारात्मक योगदान दिया वहीं दूसरी ओर पितृसत्तात्मक समाज में उनके प्रति अपराधों में वृद्धि हुई है। महिलाओं के प्रति हिंसा की घटनाओं की बढ़ोतरी को आधुनिक समाज के जेंडर व्यवस्था दृष्टिकोण से समझा जा सकता है। वैश्वीकरण के प्रभाव से जिन-जिन क्षेत्रों में पुरुषों की अधिमान्यता थी उन सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी भागीदारी के साथ वर्चस्व भी स्थापित किया है परन्तु इसका एक नकारात्मक पक्ष यह दृष्टिगत हुआ कि महिलाओं के द्वारा इस जेंडर व्यवस्था को दी गयी चुनौती से उनके प्रति होने वाले अपराधों में लगातार वृद्धि देखी जा रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के वर्ष 2022 के आंकड़ों के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध अपराध के अंतर्गत घटनाओं में 4% बढ़कर 4,45,256 मामले दर्ज किये गए, वहीं वर्ष 2021 में यह संख्या 4,28,278 थी।

समाजशास्त्रीय संकल्पना के अंतर्गत उपरोक्त अपराधों की व्याख्या भारतीय पितृसत्तात्मक आधार के सहायक तत्व के रूप में जुडी 'जेंडर-व्यवस्था' पर आधारित कार्य-विभाजन दृष्टिकोण से की जा सकती है। हमारे देश में परिवार के स्तर पर बाल्यकाल से ही लड़कों एवं लड़कियों के लालन-पालन में भिन्नता देखी जाती है जोकि फलस्वरूप भविष्य में लैंगिक भेदभाव युक्त व्यवस्था का आधार बन जाता है। कई बार समस्या अति गंभीर होने पर भी समाज का पुरुष वर्ग उसे भेदभाव के रूप में देखने के बजाय उसे एक सामान्य प्रक्रिया का नाम देता है क्योंकि उनका लालन-पालन भी उसी मानसिक अवस्था में हुआ है। अंततः रूढिगत समाज की इस स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध यदि अपने चारों ओर कोई भी परिवर्तन दृष्टिगत होने पर यह विरोध स्वाभाविक रूप से महिलाओं के प्रति हिंसा एवं भेदभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक जेंडर/ लैंगिक व्यवस्था इसके महत्वपूर्ण कारकों के रूप में देखी जा सकती है।

21वीं सदी का भारतीय समाज अपने आधुनिक स्वरुप से सेक्स एवं जेंडर की परिभाषा को परिवर्तित करते हुए एक नई वैचारिक उर्जा प्रदान कर रहा है जिसे 'ट्रांस-जेंडर' के आयाम के रूप में देखा जा रहा है। वास्तविक रूप से ट्रांस-जेंडर शब्द एक व्यापक परिकल्पना है जिसके अंतर्गत समाज का वह वर्ग सम्मिलित होता है जिनकी लिंग पहचान उनके जन्म के समय किये गए सेक्स निर्धारण से भिन्न होती है। जिसे

रूढिगत भारतीय समाज ने कालांतर में एक वर्जना [Taboo] के रूप में अंगीकार किया।

हालाँकि हमारे प्राचीन काल के भारतीय ग्रंथ और महाकाव्य एक तीसरे जेंडर के अस्तित्व को भी स्वीकार करते है। वैदिक साहित्यों में इसे 'पुंस' प्रकृति [नर] और 'स्त्री' प्रकृति [नारी] और तृतीय प्रकृति [ट्रांस-जेडर] का उल्लेख मिलता है। महाभारत के उदहारण के तौर पर बृहनल्ला और शिखंडी के पात्र इसी अवधारणा को दर्शाते है परन्तु आज भी समाज का यह वर्ग अपनी कार्य क्षेत्रों में उपस्थिति एवं योग्यता का पूर्ण अवसर प्राप्त करने हेतु संघर्ष कर रहा है।

उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्यों के अवलोकन के अतिरिक्त यहाँ सन्दर्भित करना आवश्यक है कि आधुनिक भारतीय व्यवस्था में अधिकारिक रूप से तृतीय जेंडर को क़ानूनी मान्यता सर्वोच्च न्यायलय के द्वारा वर्ष 2014 में प्रदान की गयी। इसके उपरांत ट्रांसजेंडर व्यक्ति [अधिकारों का संरक्षण] अधिनियम - 2019 पारित हुआ जिससे उनके अधिकारों की रक्षा और पहचान सुनिश्चित हुई तथा आधुनिक भारतीय समाज में समाज के इस वर्ग को क़ानूनी मान्यता प्राप्त हुई। इसी क्षेत्र में एक अनोखी पहल 04 सितम्बर 2025 को हुई जिसमें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा देश की राजधानी में 'ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकार' विषय पर एक राष्ट्रीय सम्मलेन का आयोजन किया गया। इस सम्मलेन का मुख्य उद्देश्य ट्रांस-जेंडर व्यक्तियों के प्रति संस्थागत भेदभावों को समाप्त करना और उन्हें समाज में गरिमापूर्ण स्थान प्रदान करना है। इस सम्मलेन के माध्यम से माननीय आयोग ने राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ग का समाज में एकीकरण कर क़ानूनी एवं संस्थात्मक जिम्मेदारी की आवश्यकता को अभिव्यक्त किया और साथ ही एक नैतिक अनिवार्यता की मंशा के साथ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सकारात्मक सन्देश प्रेषित किया जिससे आने वाले समय में दूरगामी परिणाम परिलक्षित होंगे।

वर्तमान आधुनिक भारतीय समाज में सेक्स एवं जेंडर को अपनी संकल्पना से आगे बढ़ते हुए एक जटिल विकास के परिणाम के रूप में स्वीकार किया जा रहा है जिसके अंतर्गत प्राचीन ग्रंथों की स्वीकार्यता से लेकर आधुनिक कानूनों और सामाजिक चुनौतियों की यात्रा सम्मिलित है। हमारे समाज में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक

और विशेष रूप से वैधानिक जागरूकता में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, फिर भी पितृसत्तात्मक समाज और रूढ़िवादिता जैसी चुनौतियाँ उपस्थित हैं जिन्हें व्यक्तिगत एवं समाज के सामूहिक प्रयासों से दूर करने की आवश्यकता है। अतः सेक्स एवं जेंडर द्वारा स्थापित समाज में कार्य विभाजन की सीमाओं से परे सभी व्यक्तियों और वर्गों की सहभागिता को सुनिश्चित करके ही **'नव-भारत' [New-India]** के राष्ट्र-निर्माण में बहुमुखी समाज का योगदान सुनिश्चित किया जा सकता है।

जय-हिन्द।

*****

पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में ड्रग्स आदि की समस्या

विवेक किशोर*

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र और पंजाब, नशीली दवाओं / ड्रग्स की तस्करी के संवेदनशील इलाकों में से एक है। इसके साथ ही इन क्षेत्रों में युवा-वर्ग के बीच में नशीली दवाओं का प्रयोग भी एक गंभीर विषय है। 'सात बहनों' के नाम से विख्यात भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र, 'गोल्डन ट्रायंगल' से भौगोलिक रूप से निकट है। गोल्डन ट्रायंगल में म्यांमार, थाईलैंड और लाओस देश आते हैं, जो कि नशीली दवाओं के व्यापार से जुड़े हुए हैं। भारत के पूर्वोतर क्षेत्र में म्यांमार के साथ 1643 किलेमीटर लंबी सीमा लगती है। यह सीमा पूर्वोत्तर के चार राज्यों से होकर गुजरती है और प्रत्येक राज्य में भारत-म्यांमार की इस सीमा की लम्बाई निम्न प्रकार है-अरुणाचल प्रदेश (520 किमी), नागालैंड (215 किमी), मणिपुर (398 किमी) और मिज़ोरम (510 किमी)।1 यह भारत-म्यांमार सीमा न सिर्फ 'खुली सीमा' है, अपितु इसमें, सीमावर्ती गांवों से होकर कई रास्ते जाते हैं, जिनसे ड्रग्स की तस्करी की जाती है। म्यांमार में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति और वहां स्थित आतंकवादी संगठनों का नार्को - आतंकवाद का रिश्ता भी सर्वविदित है। ये आतंकवादी संगठन ड्रग्स की तस्करी द्वारा धन एकत्र करते हैं और इसका दुष्प्रभाव हमारे युवा-वर्ग के नशे की लत और काले धन के रूप में देश की अर्थव्यवस्था को अस्थिर करने में झलकता है। पूर्वोतर भारत के कुछ राज्यों जैसे मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड और मिजोरम के कुछ भागों में अवैध रूप से अफीम की खेती की जाती है। यह अफीम स्थानीय निवासियों द्वारा नशे के लिए प्रयोग की जाती है और संभवतः यह तस्करी के माध्यम से भारत के अन्य राज्यों और भारत-म्यांमार सीमा पार भी भेजी जाती है। इसी प्रकार अवैध रूप से भांग/गाँजा की खेती भी त्रिपुरा, असम, अरुणाचल

*आई.पी.एस., दिल्ली पुलिस

प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और मिज़ोरम में की जाती है। तथापि असम राइफल्स, बीएसएफ, डीआरआई और स्थानीय पुलिस न केवल इन इलाकों की पहचान करके वहाँ अफीम और गांजा की फसल को नष्ट करते हैं, बल्कि छापों में काफी बड़ी मात्रा में इस तरह के पदार्थों को बरामद और जब्त भी करते रहे हैं।

इसी प्रकार पंजाब राज्य के अनेक सीमा क्षेत्रों में भारत-पाक सीमा पर, पाकिस्तान से ड्रग्स की तस्करी एक अहम चुनौती बना हुआ है। यह क्षेत्र 'गोल्डन क्रीसेंट' के निकट होने के कारण ड्रग तस्करी की दृष्टि से विशेष रूप से संवेदनशील है। इस सीमा पर ड्रग्स कानून प्रवर्तन एजेंसियों (डीएलईए) के रूप में पंजाब पुलिस और बॉर्डर सिक्योरिटी फोर्स (BSF) संयुक्त रूप से ड्रग-तस्करी के इस नेटवर्क से लड़ने में कार्यरत हैं।

पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में ड्रग तस्करों की कार्य प्रणाली

ड्रग तस्कर निम्न साधनों एवं माध्यमों का प्रयोग करते हैं -

i) निजी वाहन, ट्रक अथवा बड़े वाहन के टूलबॉक्स या स्पेयर टायर में ड्रग्स को छुपाकर तस्करी
ii) शक न होने के लिए महिलाओं और बच्चों का तस्करी में उपयोग
iii) इनके अतिरिक्त, पंजाब में ड्रोनों के माध्यम से पाकिस्तान की तरफ से भारत-पाक सीमा पर भी ड्रग्स गिराये जाते हैं।

पूर्वोत्तर भारत और पंजाब में नशीली दवाओं / ड्रग्स की राज्यवार जब्ती

वर्ष 2024 - नवम्बर में सभी डीएलईए द्वारा पूर्वोत्तर भारत में मुख्य ड्रग्स की राज्यवार जब्ती[2]

राज्य/2024	गाँजा (kg में)	हशीश (kg में)	हेरोइन (kg में)	मॉर्फीन (kg में)	ओपियम (kg में)	कुल केस	कुल गिरफ्तार
अरुणाचल प्रदेश	2518	-	365	00	110	222	385
असम	26217	-	186.40	19.50	158	3350	5153
मणिपुर	130	-	22.32	0.0	2.0	87	114
मेघालय	5439	-	6.13	0.0	0.0	98	168
मिजोरम	742	-	134.30	0.0	0.0	866	1187
नागालैंड	545	-	16.56	0.0	44	169	289

सिक्किम	**0**	**-**	**2.48**	**0.0**	**0.0**	**33**	**31**
त्रिपुरा	**29530**	**-**	**9.39**	**0.0**	**0.0**	**5.9**	**846**

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट 2024, स्वापक नियंत्रण ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

स्वापक नियंत्रण ब्यूरो (नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो, NCB) की नवीनतम रिपोर्ट वर्ष 2024 के अनुसार भारत में ड्रग्स की तस्करी के कुछ महत्वपूर्ण उभरते रुझानों में से एक है - पंजाब में भारत-पाकिस्तान सीमा से ड्रोन के माध्यम से हेरोइन की तस्करी। इस माध्यम के द्वारा तस्करी में पिछले कुछ वर्षों में काफी वृद्धि हुई है। स्वापक नियंत्रण ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट 2024 (अनुलग्नक-II)3 के अनुसार :

ड्रोन के द्वारा नारकोटिक्स तस्करी के मामले (2024)

क्रम सं	राज्य	केस संख्या	ड्रग्स जब्त	मात्र (Kg) में
1.	पंजाब	163	हेरोइन	187.149
			मेथामफेटामाइन	5.39
			ओपियम (अफीम)	4.22

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट 2024, स्वापक नियंत्रण ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि पंजाब में भारत-पाकिस्तान सीमा पार से तस्करी के माध्यम से आने वाले ड्रग्स में मुख्यतः हेरोइन है, तथापि कुछ मात्रा में मेथामफेटामाइन और अफीम भी जब्त की गई है। पाकिस्तान से पंजाब के अमृतसर, फिरोजपुर, गुरदासपुर, एवं फाजिल्का जिलों के सीमावर्ती गॉवों में ड्रोनों के माध्यम से ड्रग्स के पैकेट गिराये जाते रहे हैं।

पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में ड्रग्स के कुप्रभाव:

ड्रग्स की उपलब्धता का अत्यंत ही बुरा प्रभाव हमारे समाज पर पड़ रहा है। पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में युवा-वर्ग का एक बड़ा प्रतिशत ड्रग्स से आकर्षित हो कर उनका प्रयोग कर रहा है। इन ड्रग्स के सेवन से समाज में एचआईवी /एड्स संक्रमण और युवाओं की स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं ने ड्रग - तस्करी को और भी अधिक गम्भीर बना दिया है। यह सिर्फ तस्करी से संबंधित अपराध नहीं रह गया है, अपितु इसमें सामाजिक सरोकार भी शामिल हो गए हैं जो कि भारत की युवा पीढ़ी के स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं। ड्रग्स, व्यक्ति के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं और स्वास्थ्य

को हानि पहुँचाते है। इनका प्रयोग मनुष्य के सोचने-समझने, महसूस करने और व्यवहार करने के तरीके को प्रभावित करता है। इनके लगातार प्रयोग से चिंता और अवसाद जैसी मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ और इंजेक्शन / सिरिंज के साझा प्रयोग से एचआईवी / एड्स जैसे संक्रमण का खतरा रहता है।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 2019 की 'मादक द्रव्यों के सेवन की मात्रा'4 से सम्बन्धित एक रिपोर्ट, जो कि राष्ट्रीय नशा मुक्ति केन्द्र (एनडीडीटीसी), एम्स, नई दिल्ली के सहयोग से तैयार की गई थी, में वर्णित है कि भारत के किन राज्यों में कितने प्रतिशत व्यक्ति, ओपिओइड, गांजा, शामक (sedatives) और सांस लेने वाली दवाओं (inhalants) नशे की लत के कारण उपयोग करते हैं। यह आंकड़ा सारणी वार निम्न प्रकार प्रस्तुत है:

क्र. सं	राज्य / यूटी	ओपीऑइड (%)	भांग/गाँजा (%)	शामक (%)	सांस लेने वाली दवा (%)	एम्फ़ैटेमिन - प्रकार के पदार्थ (ATS) (%)
1.	अरुणाचल प्रदेश	22.18	7.36	5.65	5.33	3.80
2.	असम	2.91	2.27	0.82	1.24	0.14
3.	मणिपुर	14.22	3.74	7.73	2.11	4.86
4.	मेघालय	6.34	1.68	0.95	0.08	0.05
5.	मिजोरम	25.67	3.24	6.80	2.74	0.31
6.	नागालैंड	25.22	4.65	9.57	0.84	0.17
7.	सिक्किम	18.74	10.94	15.61	4.58	0.06
8.	त्रिपुरा	5.01	2.10	0.62	0.00	0.01
9.	पंजाब	9.69	12.55	4.25	1.01	0.64

स्रोत: 'मादक द्रव्यों के सेवन की मात्रा, रिपोर्ट वर्ष 2019, राष्ट्रीय नशा मुक्ति केन्द्र (एनडीडीटीसी), एम्स, नई दिल्ली

ड्रग्स के खिलाफ लड़ाई - आगे का रास्ता

पूर्वोत्तर भारत एवं पंजाब में राज्य सरकारें एवं अन्य राष्ट्रीय एजेंसियाँ ड्रग्स के खिलाफ लड़ाई में कटिबद्ध हैं। वर्ष 2020 से 'नशा मुक्त भारत अभियान' प्रारंभ किया गया, जो कि देश के सभी जिलों में लागू है। इसके माध्यम से स्कूलों, विद्यालयों, उच्च

शिक्षण संस्थानों और आम जनता को नशीली ड्रग्स के प्रयोग के दुष्परिणामों से अवगत कराया है और इसका उद्देश्य जन जागरूकता फैलाना है।

गृह मंत्रालय द्वारा स्थापित नार्को को-ऑर्डिनेशन सेन्टर (NCORD), एक चार-स्तरीय समन्वय तंत्र है, जो कि बुनियादी स्तर से शीर्ष स्तर तक सभी हितधारकों के बीच समन्वय बढ़ाने और ड्रग्स के खतरे से प्रभावी ढंग से निपटने का कार्य करता है। इसी प्रकार नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो (NCB) का गठन, ड्रग्स की तस्करी से सम्बन्धित समस्याओं से निपटने के लिए किया गया है। तथापि अभी भी सभी ड्रग्स कानून प्रवर्तन एजेंसियों (डीएलईए) के लिए ड्रग्स की तस्करी रोकने और ड्रग्स की आपूर्ति और मांग में कमी लाने के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं।

सर्वप्रथम, ड्रग्स तस्करी के स्रोत से लेकर गंतव्य तक की सघन जांच और इसके बारे में कार्रवाई योग्य खुफ़िया सूचना एकत्र करना और उसका समय से सभी एजेंसियों तक पहुँचाना सबसे बड़ी चुनौती है। इसके साथ ही 'डार्कनेट' जैसे बाजारों पर होने वाली ड्रग्स और अन्य मादक पदार्थों की बिक्री भी इस चुनौती के अहम भाग हैं। अतः उन्नत तकनीकी क्षमताओं वाले एक आधुनिक खुफिया सूचना तंत्र की स्थापना, एनडीपीएस ऐक्ट (NDPS Act) के मामलों में 'स्रोत से लेकर गंतव्य तक' तस्करी का सम्बंध स्थापित करना और इन मामले में कानूनी प्रावधानों के अनुसार उचित तफ्तीश और विवेचना करके न्यायालयों से ड्रग तस्करों को दोष-सिद्ध और सजा सुनिश्चित करवाना हमारा प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए। सिंथेटिक ड्रग्स के उत्पादन और उनकी तस्करी में जुड़े अंतरराष्ट्रीय सिंडीकेट / कार्टेल को नष्ट करना भी ड्रग्स तस्करी को रोकने में एक कारगर कदम सिद्ध होगा।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारत में ड्रग्स कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ सही पथ पर अग्रसर हैं, तथापि 'नशा-मुक्त भारत' और ड्रग्स तस्करी को जड़ से खत्म करने में अभी और गम्भीर प्रयासों की आवश्यकता है।

संदर्भ:

1 https://www.mha.gov.in / Annual Report 202122-24112022.pdf.

2 https://ncordindia.gov.in, - ncb - annual report - 2024.pdf.

3 https://socialjustice.gov.in - Report - Magnitude of substance abuse in India, 2019.

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

डिजिटल युग में मानव दुर्व्यापार से निपटना

डॉ. वीरेंद्र मिश्रा*

मानव दुर्व्यापार एक बहुत ही जटिल और निरंतर विकसित होता विषय है, जो हमेशा लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। फिर भी, इस विषय की समझ आज भी सीमित है। आम व्यक्ति से जब मानव दुर्व्यापार पर चर्चा की जाती है, तो वह अक्सर यह मान लेता है कि यह केवल यौन शोषण के लिए होती है, और यह केवल वेश्यालयों या एस्कॉर्ट सेवाओं में घटित होती है। यह संकीर्ण दृष्टिकोण ही असंतुलित हस्तक्षेपों का कारण बनता है। इसलिए सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि मानव दुर्व्यापार कई उद्देश्यों के लिए होता है।

संक्षेप में, हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि हम क्यों कहते हैं कि यह विषय अभी भी विकसित हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र की पालेर्मो परिभाषा के अनुसार, मानव दुर्व्यापार मुख्यतः तीन उद्देश्यों के लिए होता है – यौन शोषण, जबरन श्रम, और अंग प्रत्यारोपण। इसके अलावा, बाकी प्रकार का दुर्व्यापार भी दासता जैसे शोषण की श्रेणी में आता है। इन तीनों श्रेणियों में प्रयुक्त शब्द बहुत व्यापक हैं और इनमें कई उप-प्रकार शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यौन दुर्व्यापार में वेश्यालय, जाति या समुदाय आधारित यौन शोषण, सेक्स टूरिज्म, अश्लील सामग्री (पॉर्नोग्राफी), विवाह के लिए दुर्व्यापार आदि शामिल हैं। हर प्रकार के दुर्व्यापार का उद्देश्य समान है यौन शोषण लेकिन प्रत्येक का स्वरूप भिन्न होता है। जैसे, दुल्हन दुर्व्यापार में प्रायः परिवार के सदस्य ही इस नेटवर्क का हिस्सा बन जाते हैं। वहीं, पॉर्नोग्राफी में कभी-कभी प्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता; उदाहरण के लिए, वेबकास्टिंग में पीड़ित व्यक्ति अकेले लाइव प्रदर्शन करता है, परन्तु वह ऐसा

*आईपीएस, मध्यप्रदेश

मजबूरी में, तस्कर के दबाव में करता है। इन सूक्ष्मताओं का उल्लेख परिभाषा में नहीं मिलता। इसी प्रकार, जबरन श्रम (forced labour) के कई आयाम हैं – जैसे क्लिनिकल ड्रग ट्रायल्स, सरोगेसी (किराए की कोख), और गोद लेने (adoption) के मामले भी दुर्व्यापार के ही रूप हैं।

फिर मानव दुर्व्यापार से जुड़ा सबसे बड़ा सवाल यह है कि कौन होते हैं दुर्व्यापार के शिकार ? इसका एक आसान जवाब यह है कि दुर्व्यापार के शिकार वे लोग होते हैं जो असुरक्षित होते हैं। असुरक्षितता के कई कारण हो सकते हैं। ये सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक (समाजशास्त्रीय परिभाषा) या पर्यावरणीय हो सकते हैं। अब यह समझना महत्वपूर्ण है कि क्या एक ही असुरक्षित स्थिति में सभी के साथ दुर्व्यापार किया जायेगा। इसका जवाब है नहीं। असुरक्षित लोगों में, जो अपनी असुरक्षितता को उजागर करते हैं, उनके दुर्व्यापार के शिकार होने की पूरी संभावना होती है। डिजिटल युग में, यह उजागर होना बहुत आसान हो गया है। और इस डिजिटल युग में तस्करों के लिए यह और भी आसान हो गया है कि वे उन संभावित पीड़ितों की पहचान कर लें, जो डिजिटल माध्यम में अपनी असुरक्षा या निराशा को खुलकर प्रकट करते हैं। डिजिटल जगत की पहुँच और प्रसार असीमित है कोई भी व्यक्ति, कहीं से भी, किसी संभावित लक्ष्य की कमजोर मानसिक अवस्था को देख-परख सकता है और उसका विश्लेषण कर सकता है। यही वह मुख्य बिंदु है, जहाँ से पीड़ित अपनी ही उजागर कमजोरी का शिकार बन जाता है।

डिजिटल युग से उत्पन्न खतरे को समझने के लिए, आइए कुछ आंकड़ों पर नजर डालें। भारत जनसंख्या के जनसांख्यिकीय लाभांश के गौरव का आनंद ले रहा है। भारत 1.46 बिलियन या 146 करोड़ लोगों के साथ दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है। भारत की इस आबादी में से लगभग पैंसठ प्रतिशत लोग पैंतीस वर्ष से कम आयु के हैं। और जनसंख्या की औसत आयु 29 वर्ष से कम है। एक बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि यहां उल्लिखित आंकड़े 1.46 बिलियन के संदर्भ में हैं, जो शायद कुछ महाद्वीपों की आबादी से भी अधिक है। इस आबादी में से (डेटा रिपोर्ट, 2025), जनवरी 2025 में, भारत में 806 मिलियन व्यक्ति इंटरनेट उपयोगकर्ता थे, जो कुल जनसंख्या का 55.3% है। जनवरी 2024 और जनवरी 2025 के बीच एक वर्ष में 49 मिलियन लोग जुड़े इनमें से 49.1 करोड़ लोग सोशल मीडिया उपयोगकर्ता थे (जनसंख्या का 33.7%), और जनवरी 2024 से एक साल में 2.9 करोड़ लोग जुड़े, यानी 6.3% की वृद्धि। ये आँकड़े हैरान करने वाले हैं।

डिजिटल संवाद अगर सावधानी से न किया जाए, तो यह बेहद जोखिमभरा हो सकता है। ऑनलाइन जो दिखता है, वह हमेशा वास्तविक नहीं होता। बहुत से

उपयोगकर्ता इस तथ्य से अनजान हैं। सोशल मीडिया एक बड़ा प्रभावकारी माध्यम है, इसे "सोशल मीडिया यूनिवर्सिटी" भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ प्रायः अप्रमाणिक जानकारी फैलाई जाती है। जीन बॉडरिलार्ड द्वारा दी गई एक अवधारणा है, जिसका नाम है "सिमुलक्रम"। यह अवधारणा बताती है कि सोशल मीडिया पर उपलब्ध जानकारी वास्तविकता का एक नकली संस्करण कैसे है। जानकारी इतनी बढ़ा-चढ़ाकर पेश की जाती है कि कभी-कभी यह वास्तविकता से कोसों दूर हो जाती है। सिमुलक्रम अति-वास्तविक है, क्योंकि यह वास्तविक की नकल नहीं है, बल्कि अपने आप में सत्य बन गया है। " "सिमुलक्रम वह नहीं है जो सत्य को छिपाता है - बल्कि सत्य वह है जो इस तथ्य को छिपाता है कि वहाँ कोई वास्तविकता है ही नहीं। सिमुलक्रम स्वयं ही सत्य है।" एक्लेसियास्ट्स (मॉरिस, 2020)। लेकिन दुर्भाग्य से, उपयोगकर्ताओं के पास जानकारी की सत्यता को सत्यापित या प्रमाणित करने के लिए कोई आसान उपकरण नहीं हैं। तस्कर इसी अज्ञानता और अंधविश्वास का फायदा उठाते हैं।

जैसा कि शुरुआत में बताया गया है, ज्यादातर लोग मानते हैं कि दुर्व्यापार करने वालों में से अधिकांश यौन शोषण के उद्देश्य से होते हैं। तथ्यों और आंकड़ों पर बहस किए बिना, यौन दुर्व्यापार पर डिजिटल माध्यम के प्रभाव का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। वार्षिक संघीय मानव दुर्व्यापार रिपोर्ट (मानव दुर्व्यापार संस्थान, 2021) के अनुसार, 2020 में यौन दुर्व्यापार के 83% सक्रिय मामले ऑनलाइन प्रलोभन से जुड़े थे। उन्होंने प्रलोभन के लिए उपयोग किए जाने वाले सबसे सुविधाजनक प्लेटफार्मों का भी विश्लेषण किया। फेसबुक ने सबसे अधिक योगदान दिया, 59% यौन दुर्व्यापार भर्ती उस प्लेटफॉर्म पर हुई। इस भर्ती में पैंसठ प्रतिशत बच्चे शामिल थे। तस्करों के लिए दूसरा सबसे सुविधाजनक प्लेटफॉर्म इंस्टाग्राम था, जिसकी हिस्सेदारी 14% थी, उसके बाद स्नैपचैट था, जिसकी हिस्सेदारी 8% थी। दिलचस्प बात यह है कि ये ऐसे प्लेटफॉर्म हैं जो किशोरों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं।

हालाँकि यह अध्ययन अमेरिकी चुनावों से संबंधित है, फिर भी सोशल मीडिया पर लोगों के भरोसे से जुड़ी एक बात स्पष्ट करने के लिए इसका उल्लेख यहाँ करना उचित होगा। बज़फीड ने फ़ेसबुक के आंकड़ों का विश्लेषण करके यह मापा कि कितने लोग फ़र्ज़ी ख़बरों और असली ख़बरों पर विश्वास करते हैं। इसने फ़ेसबुक पर शीर्ष 20 चुनावी ख़बरों का आकलन किया। इसमें पाया गया कि "फ़र्ज़ी ख़बरों" को 8.7 मिलियन बार प्रतिक्रियाएँ मिलीं, जबकि "सच्ची" मुख्यधारा की ख़बरों को केवल 7.3 मिलियन बार प्रतिक्रियाएँ मिलीं (सिल्वरमैन, 2016)। "प्रतिबद्धता" से तात्पर्य प्लेटफ़ॉर्म पर क्लिक-थ्रू, लाइक, शेयर, प्रतिक्रियाओं, टिप्पणियों और अन्य इंटरैक्शन के योग से था।

डिजिटल दुनिया में 'ऑनलाइन ग्रूमिंग' या 'साइबर ग्रूमिंग' की एक अवधारणा है। पीड़ितों को पहले फँसाया जाता है और फिर भर्ती किया जाता है। साइबर सुरक्षा प्राधिकरण (सीएसए, 2025) द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, "साइबर ग्रूमिंग तब होती है जब कोई व्यक्ति (अक्सर एक वयस्क) किसी बच्चे से ऑनलाइन दोस्ती करता है और भविष्य में यौन शोषण, यौन शोषण या दुर्व्यापार के इरादे से उसके साथ भावनात्मक संबंध बनाता है।" आमतौर पर, दो स्थितियों में एक पीड़ित फँसता है: या तो लालच के कारण या डर के कारण। यहाँ लालच का अर्थ है कुछ पाने की इच्छा - यह एक बेहतर जीवन, एक उपयुक्त और प्यार करने वाला साथी, या कुछ भी हो सकता है। डर का अर्थ है नुकसान पहुँचाने की धमकी; यह किसी अवांछित चीज़ को उजागर करने के रूप में हो सकता है, जैसे कुछ तस्वीरें या वीडियो, या शरीर या संपत्ति को खतरा। इस प्रक्रिया में, धोखेबाज़ तस्कर एक भोले-भाले शिकार के लिए स्वीकार्य और विश्वसनीय स्थिति बनाने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाता है। इनमें वॉयस क्लोनिंग, चेहरा बनाना, और बहुत कुछ शामिल हो सकता है।

यह समझना ज़रूरी है कि डिजिटल भर्ती सिर्फ़ यौन शोषण के लिए ही नहीं होती। जबरन मज़दूरी, अंग प्रत्यारोपण, गोद लेने या किसी भी तरह की मानव दुर्व्यापार के लिए भी भर्ती की जाती है। सोशल मीडिया के ज़रिए भर्ती होने के बाद, कई भारतीयों को बर्मा (म्यांमार) में स्कैम सेंटर चलाने के लिए फँसाया गया (मुरली, 2025)। उन्हें आकर्षक वेतन और स्थिर नौकरियों का लालच दिया गया और फिर उन्हें अवैध गतिविधियों में शामिल होने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें कैद में यातनाएँ दी गईं। जिन जगहों पर उन्हें रहने और काम करने के लिए मजबूर किया जाता है, वे जेल जैसे परिसर हैं। लाओस, कंबोडिया और म्यांमार में ऐसी जगहें तेज़ी से फैल रही हैं। यह जबरन मज़दूरी दुर्व्यापार के लिए सीमा पार भर्ती का एक उदाहरण है।

साइबरस्पेस में पीड़ितों के लिए मुख्य रूप से तीन जाल कारक हैं जो उन्हें असुरक्षित बनाते हैं। ये '3-ए' कारक हैं। पहला 'ए' 'अलगाव' है। यह वह नकारात्मक कारक है जिसके कारण पीड़ित अपने स्थान पर अलग-थलग महसूस करता है। यह सामाजिक, आर्थिक या किसी भी प्रकार का कारक हो सकता है जो अलगाव की भावना को ट्रिगर करता है। यहां तक कि गैर-मान्यता, गैर-प्रशंसा, या जो मिलना चाहिए वह न मिलने की भावना भी अलगाव की भावना को बढ़ा सकती है। फिर संभावित पीड़ित सोशल मीडिया के माध्यम से सार्वजनिक डोमेन में असंतोष की भावना साझा करना शुरू कर देता है। एक पीड़ित जो चाहता है वह ये '4डी और ई' हैं, यानी, विध्रुवीकरण, विस्तरीकरण, विपीड़न, विकलंक तस्कर संभावित शिकार से बातचीत शुरू करता है और उसकी आकांक्षाओं को हवा देता है, उसे इस हद तक ले जाता है कि वह असुरक्षित व्यक्ति खुद को ज़रूरत से ज़्यादा आंकने लगता है। उन्हें दिखाई गई दुनिया एक अति-वास्तविक

स्थिति होती है। यही वह समय होता है जब तीसरा 'ए', यानी 'महत्वाकांक्षा', आकार लेती है: जीवन में कुछ हासिल करने और आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा। यह प्यार में, आर्थिक रूप से, हैसियत में, या किसी अलग, बेहतर दुनिया के संपर्क में आने से हो सकती है।

समझने योग्य एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जैसे-जैसे डिजिटल स्पेस भौगोलिक सीमाओं को पार करता है, तस्कर राज्य और देश की सीमाओं के पार भी पीड़ितों की तलाश करते हैं। मानव दुर्व्यापार एक संगठित अपराध है; इसलिए, उनका नेटवर्क सभी प्रकार की सीमाओं से परे है। उनके लिए, एकमात्र हित पीड़ित का शोषण करना है। यही कारण है कि मानव दुर्व्यापार, नशीले पदार्थों और हथियारों के दुर्व्यापार के साथ, तीन सबसे बड़े संगठित अपराधों में से एक है। नागरिकों को साइबरस्पेस के जाल में फंसने से बचाने के लिए, डिजिटल उपयोग के बारे में क्या करें और क्या न करें, इस बारे में अधिक से अधिक जानकारी साझा की जानी चाहिए। डिजिटल स्पेस के उचित उपयोग पर ज्ञान का प्रसार और पहुंच दूर-दूर तक होनी चाहिए, यहाँ तक कि ग्रामीण भारत को भी शामिल करना चाहिए। हमें यह स्वीकार करना होगा कि 65% नागरिक अभी भी ग्रामीण भारत में रहते हैं। साथ ही, यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि केवल युवा ही डिजिटल स्पेस ब्राउज़ नहीं कर रहे हैं, इस जागरूकता अभियान में सभी उम्र के लोगों को शामिल किया जाना चाहिए।

संदर्भ:

CSA (2025). Cyber Grooming. Accessed on 27.10.2025 at https://www.csa.gov.gh/cyber_grooming.php

Datareportal, (2025). Digital 2025: India. Accessed on 26.10.2025 at https://datareportal.com/reports/digital-2025-india

Human Trafficking Institute, (2021).Annual Report, 2021. Accessed on 27.10.2025 at https://traffickinginstitute.org/wp-content/uploads/2022/05/HTI-2021-Annual-Report-Web.pdf

Morris, J. (2020). Simulacra in the Age of Social Media: Baudrillard as the Prophet of Fake News. Journal of Communication Inquiry, Sage Journals. Volume 45, Issue 4. Accessed on 27.10.2025 at https://doi.org/10.1177/0196859920977154

Murali, K. (2025) Indians trapped in Myanmar's cyber scam nightmare. Accessed on 26.10.2025 at https://www.dw.com/en/indians-trapped-in-myanmars-cyber-scam-

nightmare/a-71822893

Silverman C. (2016). This analysis shows how viral fake election news stories outperformed real news on Facebook. Accessed on 25.10.2025 at

https://www.buzzfeednews.com/article/craigsilverman/viral-fake-election-news-outperformed-real-news-on-facebook

*****

रैगिंग मुक्त कैम्पस ही 'सृजनात्मक' हो सकता है

डॉ. धनंजय चोपड़ा*

टेक्नोलॉजी के बलबूते लगातार बदलती दुनिया में अब यह जरूरी हो गया है कि उच्च शिक्षण संस्थानों के कैम्पस पहले से कहीं अधिक 'क्रिएटिव यानी सृजनात्मक कैम्पस' के रूप में विकसित किए जाएं। दरअसल बदलाव के इस दौर में यह माना जा रहा है कि टेक्नोलॉजी के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए विद्यार्थियों के भीतर की सृजन क्षमता को मजबूत करना होगा और इसके लिए सृजनात्मक और समावेशी परिवेश और उससे जुड़ी परस्पर सहयोग पर आधारित शैक्षिक परवरिश यानी करिकुलम का सृजन करना होगा यानी 'क्रिएटिव कैम्पस' की अवधारणा को साकार करना होगा। और, यह तभी हो सकता है जब सभी स्तरों के विद्यार्थियों के बीच पारस्परिक सद्भाव व सहचर्य की भावना विकसित हो सके। इसके लिए जरूरी है कि हमारे कैम्पस रैगिंग मुक्त हों और हम संवेदना से लैस ऐसे विद्यार्थियों को तैयार करें, जो न केवल रैगिंग के दौरान होने वाले मानव अधिकारों के हनन के प्रति पहले से कहीं अधिक सतर्क हों, बल्कि सचेत रहकर दूसरों को भी जागरूक कर सकें। यह कहने में कतई संकोच नहीं होना चाहिए कि बहुतेरे प्रयासों और उपायों के बावजूद हम अपने उच्च शिक्षण संस्थानों को पूरी तरह रैगिंग मुक्त नहीं कर पा रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2001 में रैगिंग को परिभाषित करते हुए कहा था कि यदि शिक्षण संस्थानों में कोई भी विद्यार्थी या विद्यार्थियों के समूह किसी अन्य विद्यार्थी या विद्यार्थियों के समूह के प्रति अभद्र आचरण करता है अथवा उसके साथ

*इलाहाबाद विश्वविद्यालय के मीडिया अध्ययन केन्द्र में पाठ्यक्रम समन्वयक

अनुचित तरीके से पेश आता है या फिर ऐसी गतिविधियां, जो नए या जूनियर विद्यार्थियों को परेशान करती हैं, उनमें किसी भी तरह का भय उत्पन्न करती हैं, उन्हें मनोवैज्ञानिक नुकसान पहुंचाती हैं, उन्हें किसी भी तरह की शर्मिंदगी का एहसास कराती है, जिनसे नए या जूनियर विद्यार्थियों के शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, रैगिंग माना जाएगा। रैगिंग के अंतर्गत वे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, लैंगिक या मौखिक दुर्व्यवहार भी रखे गए हैं, जिनसे अवसाद, चिंता और कभी-कभी आत्महत्या जैसे प्रतिकूल प्रभाव भी सामने आते हैं। सच यह है कि रैगिंग से विद्यार्थी के आत्म सम्मान, मानवीय गरिमा, जीवन जीने की लालसा और शैक्षणिक प्रदर्शन के साथ कैरियर की बेहतर संभावनाओं को गंभीर नुकसान पहुंचता है। कह तो यह भी सकते हैं कि रैगिंग सीधे-सीधे मानव अधिकार का हनन है।

वास्तव में मानव अधिकार वे मूलभूत अधिकार और स्वतंत्रताएं हैं, जो दुनिया के हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त हैं। रैगिंग से किसी भी विद्यार्थी की न केवल गरिमा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सुरक्षित वातावरण की उपलब्धता के अधिकार जैसे मौलिक मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है, बल्कि पीड़ितों को शारीरिक चोटें, भावनात्मक घाव और अक्सर गंभीर मनोवैज्ञानिक आघात सहना पड़ता है, जिससे कभी-कभी आत्महत्या तक की स्थिति आ जाती है। यही वे तथ्य हैं जो रैगिंग को एक गंभीर मानव अधिकार उल्लंघन के रूप में पहचानने और उसका समाधान करने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। और, यही वजह है कि शिक्षा मंत्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की मंशा के अनुरूप दीक्षा आरंभ से पहले ही शिक्षण, संस्थानों में प्रवेश के समय विद्यार्थी और उनके अभिभावकों से रैगिंग में शामिल न होने का शपथ पत्र लिए जाने की व्यवस्था है। यह एक अलग विषय है कि शपथ पत्र देने के बावजूद भी बहुत से विद्यार्थी अपने को जाने-अनजाने रैगिंग में लिप्त कर लेते हैं।

सूचना के अधिकार के तहत मांगी गई जानकारी के आधार पर मीडिया में प्रकाशित खबरों में बताया गया है कि वर्ष 2012 से 2023 तक देश में 78 विद्यार्थियों की मृत्यु का कारण रैगिंग बनी थी। इस दौरान यूजीसी की रैगिंग हेल्पलाइन पर 8000 से अधिक शिकायतें दर्ज की गई थीं। इनमें सर्वाधिक शिकायतें उत्तर प्रदेश से मिली हैं। इसके बाद क्रमशः मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार और महाराष्ट्र से मिलने वाली शिकायतें शामिल हैं। आंकड़ों पर विश्वास करें तो 2012 से 2022 तक रैगिंग की शिकायत में 208 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। रैगिंग से होने वाली कथित मौतों का आंकड़ा सबसे अधिक महाराष्ट्र का है, फिर उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश का स्थान आता है।

रैगिंग उन्मूलन से संबंधित अब तक कई समितियां गठित की जा चुकी हैं, जिनमें राघवन समिति (2007) की चर्चा सबसे अधिक होती है। सीबीआई के पूर्व निदेशक आर.के. राघवन की अध्यक्षता में गठित इसी समित की सिफारिशों को बाद में वर्ष 2009 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा औपचारिक रूप दिया गया। इस समिति ने सुझाव दिया था कि विश्वविद्यालय, कॉलेज और इनके विषयगत विभागों के स्तर पर रैगिंग विरोधी समितियाँ बनाई जाएं, छात्रावासों और शैक्षिक परिसरों में अचानक छापे और निरीक्षण करने के लिए रैगिंग विरोधी दस्ते बनाए जाएं, छात्रों और उनके अभिभावकों के लिए प्रवेश के समय शपथ पत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य किया जाए, जिसमें रैगिंग में शामिल न होने का वचन दिया गया हो आदि के साथ रैगिंग के उन्मूलन के प्रति जागरूकता लाने के लिए व्यापक प्रचार-प्रसार करने, दोषियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई करने, संस्थाओं की जवाबदेही तय करने और स्कूली स्तर से पाठ्यक्रम में मानव अधिकार के तहत रैगिंग को एक विषय के रूप में जोड़ने की पहल करने की बात भी कही गई थी। इन सिफारिशों को लेकर यूजीसी ने जो मसौदा तैयार किया है, उसमें न केवल रैगिंग का दंडनीय अपराध मानकर दोषियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की बात शामिल है, बल्कि संस्थानों के खिलाफ भी सख्त कदम उठाने का भी प्रावधान है। इस मसौदे पर अभी और भी सुझाव एकत्र किये जा रहे हैं, ताकि इन्हें अधिक व्यापक रूप दिया जा सके।

वास्तव में विगत बीस वर्षों में उच्चतम न्यायालय ने कई बार रैगिंग के मामलों पर सुनवाई करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को कई महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश दिये हैं और हर बार यही कहा है कि यूजीसी उच्च शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों की रैगिंग पर विशेष ध्यान देते हुए लगातार बढ़ती आत्महत्याओं को रोकने के लिए कदम उठाए। हाल ही में 15 सितंबर 2025 को रैगिंग एक मामले की सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) को निर्देश दिया कि वह मसौदा नियम तैयार करते समय उच्च शिक्षण संस्थानों में छात्रों की आत्महत्या को रोकने के लिए रैगिंग, यौन उत्पीड़न और जाति, लिंग, दिव्यांगता तथा अन्य पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव से निपटने के सुझावों पर विचार करे। न्यायमूर्ति सूर्यकांत और न्यायमूर्ति जॉयमाल्या बागची की पीठ ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से दो महीने के भीतर सुझावों पर विचार करने को कहा है। बहरहाल सुनवाई के दौरान केंद्र सरकार की ओर से उपस्थित सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने बताया कि मसौदा नियम प्रकाशित किए गए थे और एक विशेषज्ञ समिति ने प्राप्त 300 से अधिक आपत्तियों की पड़ताल की थी। उन्होंने कहा, विशेषज्ञ समिति ने आपत्तियों की पड़ताल के बाद यूजीसी से मसौदा नियमों में कुछ संशोधन करने को कहा है। ऐसे में एक समाचार पत्र से बात करते हुए फरवरी 2025 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यूजीसी के पूर्व अध्यक्ष सुखदेव थोराट का यह कहना मायने रखता है कि वर्तमान में 40000 से अधिक कॉलेज और 2000 से अधिक विश्वविद्यालय तथा कई स्वतंत्र निजी शिक्षण संस्थान हैं। यह विशाल परिदृश्य

पूरी तरह से यूजीसी के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं हैं। इसलिए रैगिंग का समाधान, नियमों को पूरी तरह से लागू करने में ही निहित है। श्री थोराट ने बताया कि एंटी रैगिंग नियम कानूनी रूप से बाध्यकारी नियम हैं, जिन्हें सुप्रीम कोर्ट ने अनिवार्य किया है और शिक्षा मंत्रालय तथा यूजीसी ने अधिनियमित किया है।

यहां यह भी जानना जरूरी है कि तमाम उपायों के साथ-साथ कानून भी रैगिंग के आरोपियों को सजा देने की व्यवस्था रखता है। भारतीय न्याय संहिता में रैगिंग के लिए अलग से भले ही कोई प्रवधान न हो, लेकिन इसकी विभिन्न धाराओं के अंतर्गत दोषियों पर मुकदमा चलाया जा सकता है। मसलन धारा 329(1) किसी को मार्ग में या उसके गंतव्य तक जाने में गलत तरीके से रोकने, धारा 329(2) किसी को गलत तरीके से बंधक बनाने, धारा 351(2) किसी को आपराधिक धमकी देने, धारा 115(1) किसी को शारीरिक नुकसान पहुँचाने, धारा 74 किसी के प्रति यौन दुराचार करने के लिए हमला या आपराधिक बल का प्रयोग करने और धारा 108 रैगिंग के कारण होने वाली आत्महत्या पर अपराधियों को आत्महत्या के लिए उकसाने का आरोप लगाकर दण्ड देने की व्यवस्था देती है। रैगिंग के मानव अधिकार पक्ष को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भी समय-समय पर पहल करता रहा है। 28 अगस्त 2025 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने उच्च शिक्षा संस्थानों में 'रैगिंग के पुनः परीक्षण, जागरूकता, जवाबदेही और कार्रवाई के माध्यम से सुरक्षित परिसरों का निर्माण' विषय पर खुली परिचर्चा का आयोजन किया था। परिचर्चा में आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री वी. रामसुब्रमण्यन ने इस बात पर चिंता जाहिर की थी कि 2001 के दिशा निर्देश, आर.के. राघवन समिति, 2009 के यूजीसी विनियम जैसे कानूनों, विधानों, समितियों और विनियमों की प्रचुरता के बावजूद इनका प्रवर्तन एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। इस परिचर्चा के बाद जो सुझाव आए थे, उसमें कहा गया था कि प्रत्येक संस्थान की वेबसाइट पर यूजीसी की 24x7 एंटी रैगिंग हेल्पलाइन प्रदर्शित की जाए, पुलिस को तत्काल अनिवार्य रूप से सूचित किया जाए, रैगिंग की गुमनाम शिकायतों को प्रोत्साहित किया जाए, रिपोर्ट दर्ज होने के बाद पीड़ितों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए, नियमित ऑडिट, औचक निरीक्षण, सीसीटीवी निगरानी, और परिसरों में पुलिस का दौरा सुनिश्चित किया जाए, प्रशिक्षित मानसिक स्वास्थ्य पेशेवरों के साथ वेलनेस और समावेशन केंद्र स्थापित किए जाएं, रैगिंग मुक्त परिसर को सर्वोत्तम अभ्यास के रूप में मान्यता दी जाए, शिकायत मामलों में अभिभावकों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नालसा और यूजीसी के बीच सहयोग को बढ़ाया जाए आदि।

बहरहाल जब तमाम उपायों के बावजूद रैगिंग की अंतहीन पीड़ा को समाप्त करने में परेशानी आ रही है, तब तय है कि हम अपने उच्च शिक्षा के संस्थानों में क्रिएटिव कैम्पस यानी सृजनात्मक परिसर की अवधारणा को सच करके इस दिशा में सार्थक पहल

कर सकते हैं। वास्तव में जब हम विद्यार्थियों को एक ऐसा शैक्षिक वातावरण देते हैं, जो अपनी संस्कृति, बुनियादी ढाँचे और गतिविधियों के माध्यम से रचनात्मकता को बढ़ावा देता हो, ताकि वे पूरी गरिमा और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रतिभा के अनुरूप प्रदर्शन कर सकें, तभी हम रैगिंग की तरफ जाने से उन्हें रोक पाते हैं। दरअसल क्रिएटिव कैम्पस की अवधारणा में यह लक्ष्य शामिल होता है कि विद्यार्थियों को रचनात्मक, उत्पादक और समस्या-समाधान कौशल से सशक्त बनाना है, ताकि वे वास्तविक दुनिया की चुनौतियों का सामना कर सकें और साथ ही छात्र कल्याण के प्रति समर्पित और एक मजबूत परिसर पहचान को बढ़ावा दे सकें। क्रिएटिव कैम्पस की अवधारणा यह भी स्वीकार करती है कि एक परस्पर सहयोगी, सहचर्य, संस्कारित और प्रेरक वातावरण विद्यार्थियों के कल्याण को बढ़ावा दे सकता है, जो शैक्षणिक और व्यक्तिगत विकास के लिए महत्वपूर्ण होता है और साथ ही यह रैगिंग को बढ़ावा देने वाली परिस्थितियों को हतोत्साहित करता है। यह अवधारणा दण्डात्मक उपायों से आगे बढ़कर एक सम्मानजनक, समावेशी विद्यार्थी समुदाय के निर्माण को बढ़ावा देती है। हमें यह भी याद रखना होगा कि रैगिंग विरोधी पहल के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण पहले से चली आ रही पारंपरिक और भय-आधारित चेतावनियों की तुलना में अधिक प्रभावी हो सकता है। यही वजह है कि क्रिएटिव कैम्पस में हमें सृजनात्मक जागरूकता अभियान चलाने, रैगिंग पीड़ितों को सतत सशक्त बनाने, परामर्श और सहायता केंद्रों को हमेशा सक्रिय रखने और रैगिंग रोकने के लिए छात्र-नेतृत्व वाले दस्ते तैयार करने जैसे उपाय करने चाहिए।

हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि 2047 के भारत के विजन प्लान में अर्थ शक्ति, जीवन शक्ति के साथ जिस सृजन शक्ति को स्थान दिया गया है, उसका पूरा दारोमदार विश्वविद्यालय और कॉलेजों में पढ़ाई कर रहे विद्यार्थियों को मिलने वाले परिवेश और शैक्षिक परवरिश पर ही टिका हुआ है और यह तभी संभव है जब हम सब मिलकर 'रैगिंग मुक्त सृजनात्मक कैम्पस' के स्वप्न को साकार कर सकें।

*****

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार:

नई दिशाएं

अंक: 22 (वर्ष 2025)

ISSN 0973-7588

समानी प्रपा सह वोन्नभागः।
समाने योक्ते सह वो युनज्मि।
अराः नाभिमिवाभितः।।

- अथर्ववेद-संज्ञान सूक्तम्

सभी मानव जन्म से स्वतंत्र हैं उनकी प्रतिष्ठा और अधिकार समान हैं उन्हें भगवान ने बुद्धि और अंतरात्मा प्रदान की है और उन्हें एक-दूसरे के प्रति भ्रातृभाव से व्यवहार करना चाहिए, जिस प्रकार रथ के पहिए की तारें चक्र को धुरी से जोड़ती हैं, ठीक उसी प्रकार सभी को सामरस्यपूर्वक एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए।

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स, आई.एन.ए., नई दिल्ली-110023
दूरभाष: 91-11- 24663310 • फैक्स: 91-11-24651329

adol.nhrc@nic.in www.nhrc.nic.in @India_NHRC